RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

सभी लेखकों के लिए प्रस्तुत है आईसेक्ट पब्लिकेशन की

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, वे कम्प्यूटर पर साफ-साफ अक्षरों में कागज के एक ओर टाइप की हुई पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, फ्लिपकार्ट, आईसेक्ट ऑनलाइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आईसेक्ट पब्लिकेशन, आपका पब्लिकेशन

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011, फोन- 0755-4923952, मो. 8818883165, 9582623368
- अध्यक्ष, वनमाली सृजनपीठ : 25/ए, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल-462011 फोन- 0755-4923952, मो. 9425014166,
- E-mail : aisectpublications@aisect.org

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त-प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

बारह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 142 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 12 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 142 ■ जनवरी 2020 ■ ₹ 150

अभिमुख : रमेश दवे

अनन्तिम : मुकेश वर्मा

मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य

रेखांकित : रोहित कौशिक की कविताएँ

चयन : निरंजन श्रोत्रिय

भरतचंद्र शर्मा की कहानी : बंद मुट्ठी

कविताएँ : रामकिशोर मेहता, ओम ठाकुर, मधु सक्सेना, शिव चौरसिया

एकाग्र

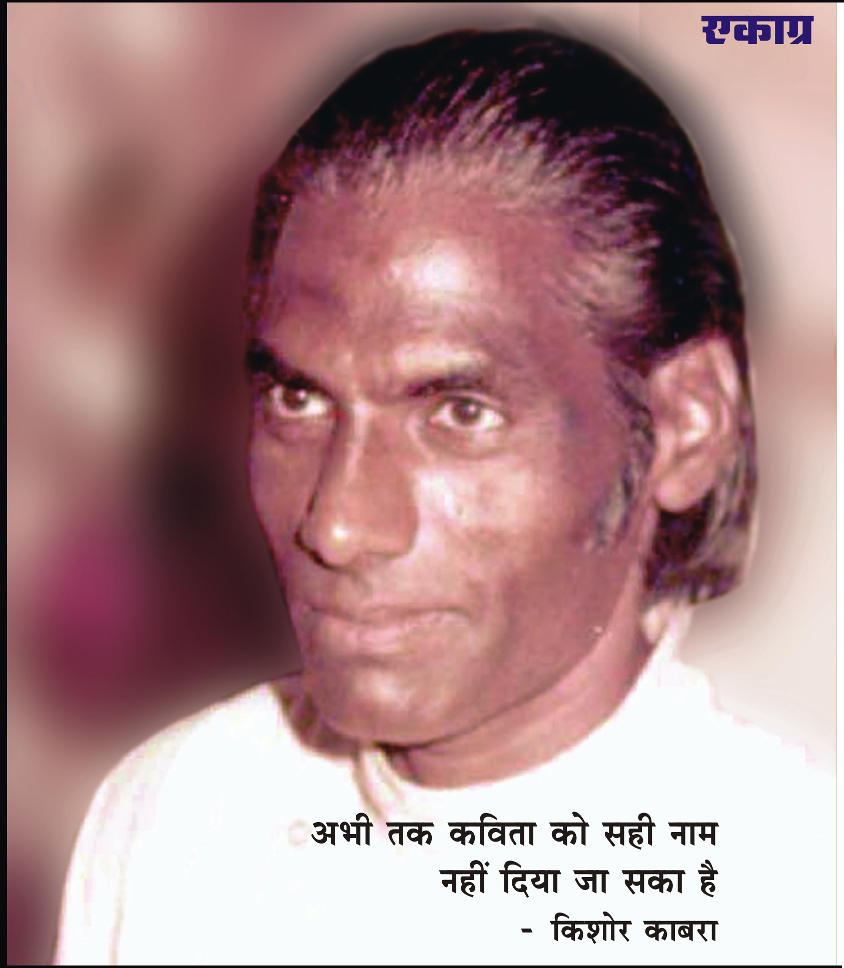

अभी तक कविता को सही नाम नहीं दिया जा सका है
- किशोर काबरा

सरोकार

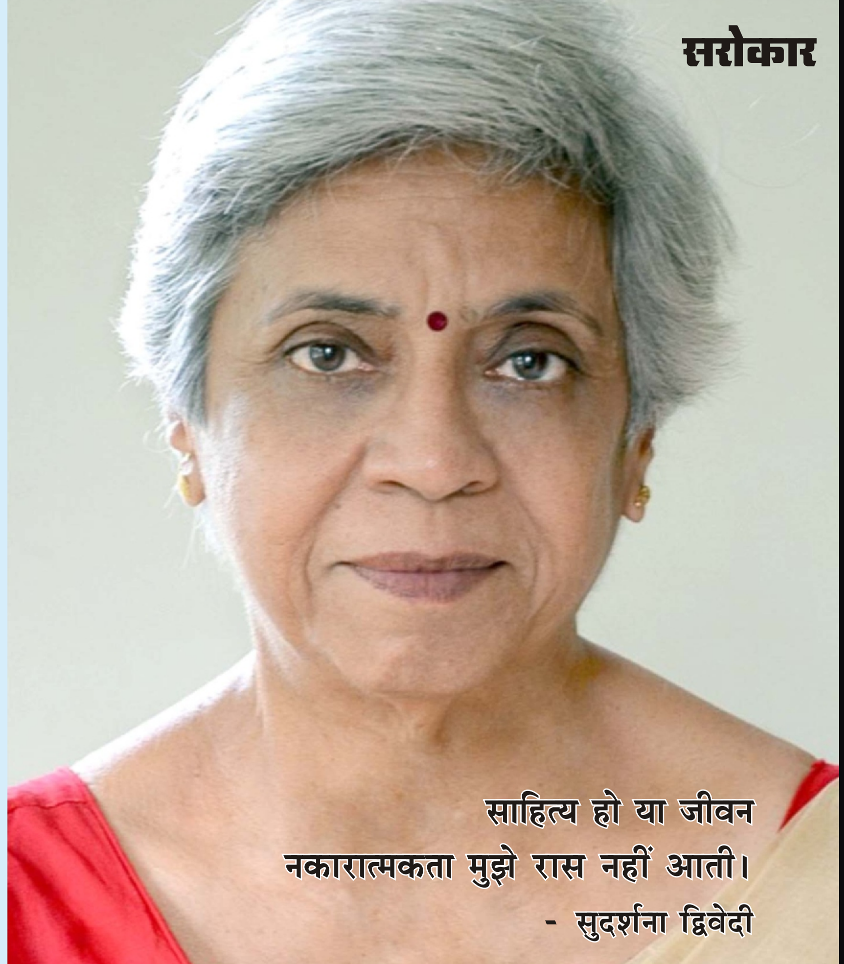

साहित्य हो या जीवन नकारात्मकता मुझे रास नहीं आती।
- सुदर्शना द्विवेदी

कथाराग - 18

(कहानी केंद्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ)

इस बार संतोष चौबे की लंबी कहानी 'सतह पर तैरती उदासी'

चयन : मुकेश वर्मा

लघुकथाएँ : प्रतापसिंह सोढ़ी, शोभा जैन

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल, चिट्ठी-पत्री

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 12 ■ अंक 10 ■ पूर्णांक 142 ■ जनवरी 2020 ■ रू. 150/-

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई),
सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन®
जनवरी -2020

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : ओ राष्ट्र के कर्णधार! : मुरलीधर चाँदनीवाला : 05

अभिमुख : तीसरे दशक से उम्मीद : रमेश दवे : 06

मेरा नमन : संकल्पो से भरा नया साल-2020 : अजय भट्टाचार्य : 71

एकाग्र

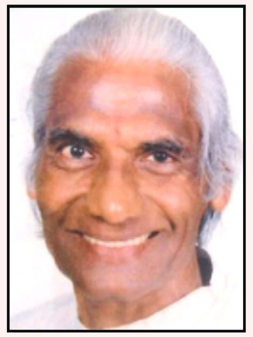

किशोर काबरा

परिचय : किशोर काबरा : 08

आत्मकथ्य : जरूरत है एक कविता की : किशोर काबरा : 09

किशोर काबरा के गीत, ग़ज़ल और दोहे : 10

शाश्वत एवं समकालीन......: भगवानदास जैन : 12

साक्षात्कार : किशोर काबरा से मधु प्रसाद की बातचीत : 15

सरोकार

सुदर्शना द्विवेदी

परिचय : सुदर्शना द्विवेदी : 19

आत्मकथ्य : सुदर्शना द्विवेदी : 19

कहानी : पहेली : सुदर्शना द्विवेदी : 20

सुदर्शना द्विवेदी : जैसा मैंने जाना 23

सुदर्शना द्विवेदी से निर्मला डोसी की बातचीत : 24

कहानी : बंधी मुट्ठी : भरतचंद्र शर्मा : 32

रेखांकित : रोहित कौशिक की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 39

लघुकथाएँ : प्रतापसिंह सोढ़ी, शोभा जैन : 44

कथाराग-18

(समावर्तन के अधबीच कहानी केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ)

कथाराग का अठारहवां आलाप : मुकेश वर्मा

संतोष चौबे की लम्बी कहानी : सतह पर तैरती उदासी (45-58)

कविताएँ : रामकिशोर मेहता, ओम ठाकुर, मधु शुक्ला, शिव चौरसिया : 59

वीक्षा : रमेश दवे, बी.एल.आच्छा, भालचंद्र जोशी, पुरुषोत्तम दुबे : 61

साहित्यिक हलचल : 67, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे

प्रथम पृष्ठ

ऋग्वेद में अध्यात्म के सूत्रों से आर्य सभ्यता की बुनावट होती दिखाई देती है। उसके समानान्तर अनार्यों, दस्युओं, पणियों के साथ वृत्र और शम्बर को परास्त करने के लिये युद्ध की हलचल भी सुनाई देती है। इन्द्र एक साथ युद्ध का नायक भी है, संग्राम में विजय दिलाने वाला पुरोहित भी है। वह कई बार राष्ट्र के उस कर्णधार के रूप में भी दिखाई देता है, जो हमारी समृद्ध और विजयशील आत्मा का स्वरूप है। प्रथम मंडल के इस सूक्त में ऋषि राष्ट्र के कर्णधार से आह्वान् करते हुए जो अपेक्षाएँ करता है, वे आज भी प्रासंगिक हैं। सूक्त में पन्द्रह ऋचाएँ हैं, किन्तु यहाँ क्रमश: 8, 9, 10, 11, 12 कुल पाँच ऋचाएँ ही ली गई हैं।

ओ राष्ट्र के कर्णधार!

वि जानीह्यार्यान् च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन।।

ऋग्वेद.1.51.8

ओ राष्ट्र के कर्णधार!
तुम उन आर्यों की पहचान करो,
जो युद्ध के शिल्पकार हैं।
उन दस्युओं को चिह्नांकित करो,
जो विध्वंस के अभ्यास में
अहोरात्र लीन हैं।
दंड तुम्हारे हाथ में है,
भृकुटि उन पर तानो
जो राष्ट्रयज्ञ में विघ्न डालने के
षड्यंत्र में लगे हैं।
तुम समर्थ हो,
और राष्ट्रभक्तों के आदर्श हो।
मानसभवन में आर्यजन
तुम्हारा प्रशस्तिगान करने लगें,
तो समझ लो तुमने
राजधर्म चरितार्थ कर लिया।।1।।

ओ राष्ट्र के कर्णधार!
उनकी रक्षा करना,
जो मातृभूमि की सेवा का व्रत ले चुके।
उन्हें नष्ट कर देना,
जो बार-बार व्रत भंग कर देते।
ऊँचा उठाना उन्हें जिन्होंने
विनियोग किया जीवन अपना
बलिवेदी पर।
बढ़ते हुए राष्ट्र को और बढ़ाना,
शत्रुओं के संहार का जो संकल्प
जागा तुम्हारे मन में,
उसे जीवित रखना सदा के लिये।।2।।

ओ राष्ट्र के कर्णधार!
तुम सर्वलोकमंगल के लिये हो।
साहस दिखाना,
अपने बल पर हिला देना
इस धरती को, आकाश को।
तुम हम सब लोगों का मन हो,
इस मन के घोड़े दौड़ा देना
यश की पताकाओं के साथ
दूर दिगन्त में।।3।।

ओ राष्ट्र के कर्णधार!
तुम लोकमंगल का वह काव्य हो,
जिसमें हम सब डूबना चाहते हैं।
कुटिल रास्तों को शून्य में छोड़ आओ,
अपने तेज से भर दो
इस राष्ट्र के सुंदर सपनों को,
दुश्मनों के दुर्ग, नगर, सब ठिकाने
काँप उठें तुम्हारी हुंकार पर।।4।।

ओ राष्ट्र के कर्णधार!
हम जीत कर लाना चाहते हैं
विजय का उल्लास,
अपने रथ पर चढ़कर
विजय हेतु प्रस्थान करो।
तुम्हारे प्रयत्न ही फहराएंगे पताका,
तुम्हारा तप ही
लिखेगा विजय की समरगाथा।।5।। स

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

अभिमुख

इक्कीसवीं सदी-तीसरे दशक से उम्मीद

(नव वर्ष की शुभकामनाएँ)

रमेश दवे

शताब्दियाँ बीत बीत कर स्मृति हो जाती हैं और स्मृति को स्मृति बनाए रखने के लिए इतिहास जन्म लेता है। ग्रेजमा मोजेस का यहाँ एक उद्धरण याद आता है। वे कहती हैं ''स्मृति हमारे मन में रेकार्ड किया हुआ इतिहास है।'' कितनी विचित्र होती है स्मृति और उम्मीद या आशा एक अतीत में झांकती है तो दूसरी भविष्य देखती हैं। देखते ही देखते 21वीं शताब्दी के दो दशक बीत गए। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हुआ था और चौथे दशक में पुनः द्वितीय विश्वयुद्ध पैदा कर दिया गया। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ हमारी इस सदी के दो दशकों में। बीसवीं सदी के छठवें, सातवें दशक में अफ्रीका, एशिया और लेटिन अमेरिका के अनेक देश स्वतंत्र हो गए। इस सदी में स्वतंत्रता का अभी तक कोई संघर्ष तो दिखाई नहीं दे रहा लेकिन आतंकवाद और सीमाई तनावों ने अघोषित और छद्म युद्धों का रूप अवश्य ले लिया।

जहाँ तक साहित्य और वह भी हिन्दी साहित्य का प्रश्न है, इन दो दशकों में हिन्दी में किसी बड़े साहित्यकार का अभ्युदय नहीं हुआ। बीसवीं सदी ने प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, प्रेमचंद जैसे कालजयी साहित्यकार दिए, हिन्दी भाषा ने उत्कर्ष के शिखर स्पर्श किए और हिन्दी की आधुनिक आलोचना में रामचंद्र शुक्ल से लेकर रामविलास शर्मा और नामवर सिंह ने एसे मानदण्ड रच दिए कि इस सदी के इन दो दशकों में किसी समालोचक में अपने पूर्वजों से आगे जाने की संभावना प्रतीत नहीं होती। शायद सदी के शेष वर्षों में किसी महान साहित्यकार और समालोचक जन्म ले ले और यह कहा जा सके कि हिन्दी समालोचना ने अब ल्यूकाच, लीविस, स्पेण्डर या फ्रांस के मलार्मे, पॉल वेलरी या प्रगतिवादी फ्रेडरिक जेम्सन से आगे जाने की क्षमता प्रकट कर हिन्दी साहित्य को विश्व-पटल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। माना कि हमारे पूरे भारतीय साहित्य में अभी न कोई देरिदा है, न रोरटी, न ल्योतार, न उत्तर आधुनिकता के पश्चिमी सूत्रधार, बावजूद इसके हम कह सकते हैं कि हमारा वाङ्मय और हमारा काव्य-शास्त्र एवं नाट्य-शास्त्र आज भी प्रासंगिक हैं और पूरे संसार के सामने छाती ठोक कर खड़ा है। क्या पाणिनी, पतंजलि, कात्यायन से बड़ा कोई पश्चिमी ब्लूमफील्ड या चाम्सकी ऐसा हुआ जो भारतीय व्याकरण के पिता और पितामहों को चुनौती दे सका। सच तो यह है कि ब्लूमफील्ड और चाम्सकी ने भी भारतीय वैयाकरणों को सलाम किया।

अपने पूर्वजों की गौरव-गाथा पढ़ने-सुनने में अच्छी तो लगती है लेकिन वह हमें हमारे वर्तमान में खड़ाकर पूछती है कि हमने ऐसा क्या किया जो पूर्वजों के अवदान के पार जाता हो? महान चीनी दार्शनिक कंफ्यूशस कहता था -''अतीत का अध्ययन करो, उसे जानो, अगर आप भविष्य को दैवीय बनाना चाहते हो'' हमारे आज का समाज तो अतीत में बुर्जईपन देखता है, भारतीयता को साम्प्रदायिक मानता है जो प्रगतिशीलता के मंच पर साथ नहीं बैठता, वह न तो प्रतिभावान होता है, न पंथ-निरपेक्ष, न प्रगतिशील, फिर चाहे वह व्यक्ति कितना भी उदार, उदात्त, तटस्थ और साहित्य का अच्छा पाठक ही क्यों न हो। बौद्धिकों ने अपने अपने खेमे खड़े कर लिए हैं जिनमें केवल वे ही बौद्धिक हैं जो खेमों में खड़े हैं, शेष सब या तो मीडियाकर या दोयम दरजे के हैं या साम्प्रदायिक। जो प्रगतिशील हैं - माना कि वे पढ़ते-लिखते, बहस-विमर्श करते और प्रतिबद्ध निष्ठा के साहित्यकार हैं, मगर उनके खेमे में किसी व्यक्ति का प्रवेश ऐसा लगता है जैसे किसी प्लेटो के नोबेल रिपब्लिक में कोई प्रतिक्रियावादी घुस गया है। वे उस व्यक्ति का मजाक उड़ाते हैं, तंज कसते हैं और उसे उपेक्षा के कूड़ेदान का कचरा समझते हैं। सच तो यह है कि ऐसे बौद्धिक भी नकली बौद्धिक ही हैं - वे भी तो इन तीन शब्दों से बँधे - अंधविश्वासों के बन्दी हैं - लक (भाग्य), लस्ट-(वासना) और लायल्टी (वफादारी)। इन तीनों शब्दों का वे सरकारी तंत्र में इस्तेमाल कर पद, प्रतिष्ठा और पैसों की क्या सतत प्रतियोगिता नहीं करते? खैर, जो है, वह रहेगा, रहना भी चाहिए आगे बढ़ा जाए।

नेहरू और नवम्बर

नवम्बर में तीन स्मृतियों ने आकार लिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू को उसी तरह नहीं भुलाया जा सकता, जिस प्रकार गांधी, विनोबा और जय प्रकाश नारायण को नहीं भुलाया जा सकता। गांधी को तो हमने स्मृति-पुरूष बना कर जन जन में जीवित अवश्य रखा है लेकिन नेहरू को नकारने के बावजूद वे हमारी आधुनिकता के सोच में आज भी पूरे कद के साथ खड़े हैं। क्या कोई भी सरकार उन्हें समाप्त कर सकी? नेहरू के बाद कितने नए बाँध बँधे, कितने बड़े कारखाने खड़े हुए, रेलमार्गों, हवाई मार्गों का कितना विकास हुआ और बच्चों के चाचा नेहरू के समय के बच्चे आज इसरो और नासा में नेहरू समय को कायम रखे हुए हैं तो क्या नेहरू का होना और बने रहना निरर्थक है? नेहरू एक बौद्धिक व्यक्तित्व का नाम था। वे गांधी की तरह के स्वदेशी भले ही न हों, मगर प्रधानमंत्री के संपूर्ण कार्यकाल में उन्होंने खादी ही पहनी, चरखे पर सूत भी काता और शांति अहिंसा का गांधीपाठ सदैव याद रखा। इसीलिए तो गीता और गौतम उनके जीवन के अभिन्न पाठ थे। पंचशील के नाम पर जो विश्व शांति की कल्पना नेहरू ने की थी, उसमें चीन ने भले ही धोखा दे दिया, लेकिन नेहरू के व्यक्तित्व की आभा सारी दुनिया में न होती तो अमेरिका चीन के विरूद्ध अपना छठवाँ बेड़ा नहीं उतारता। नेहरू ने जो डिस्कवरी आफ इंडिया, ग्लिम्पसेस आफ हिस्ट्री, आत्मकथा और बंच आफ लेटर्स जैसी विश्व विख्यात रचनाएं कीं, क्या देश के किसी प्रधानमंत्री ने वैसा काम किया? इसलिए जब नेहरू थे तब भी हम नेहरू समय में थे और आज भी हम नेहरू समय में ही है। दुनिया में ऐसा कोई घराना नहीं है जिसने तीन प्रधानमंत्री दिए हों और उनमें से भी दो देश की एकता की विरासत पर शहीद हो गए। नेहरू की दृष्टि आधुनिका थी लेकिन दिल भारतीय संस्कृति से बना था। नेहरू के बाद लेखक प्रधानमंत्री हुए ही कितने? लाल बहादुर शास्त्री हमारी कृषि चेतना के प्रतीक थे, इन्दिरा जी साहस और शौर्य की प्रतीक थीं, विश्वनाथ प्रतापसिंह और अटल बिहारी वाजपेयी कवि थे, गुजराल लेखक थे, मगर क्या इनमें से एक भी नेहरू के लेखक के कद का था। गांधी ने जिस दूरदर्शिता से नेहरू को अपना उत्तराधिकारी माना था, भले ही नेहरू को तत्कालीन स्थिति में गांधी, ठीक नहीं लगे पर नेहरू का मानस तो गांधी मानस ही बना रहा।

विश्वरंग और रवीन्द्रनाथ

'समावर्तन' एक संपूर्ण अंक, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टेगौर पर निकाल चुका है। भोपाल के रवीन्द्रनाथ टेगौर विश्वविद्यालय ने जिस प्रकार का आयोजन किया, उससे लगा, हिन्दी को विश्व रंग के जरिए विश्व-संग करने का वह सबसे बड़ा माध्यम था। एक अदभुत समारोह भारतीय मनीषा में हिन्दी की उपस्थिति और अस्मिता का महारंग और तीस देशों के प्रतिनिधियों के साथ चार हजार सहभागियों का अनवरत , अटूट, साहित्यक सम्पर्क एवं विमर्श, संगीत नृत्य की इन्द्रधनुषी छटा और आयोजकों का ऐसा उत्साह जैसा विश्वरंग उनका ही अंतरंग है। इस सात दिवसीय आयोजन ने संसार के सामने हिन्दी भाषा और साहित्य का एक ऐसा रास्ता खोला है जिस पर चल कर देश विदेश के रचनाकार एवं पाठक हिन्दी को एक ऐसी भाषा के रूप में देख सकें जिसने आजादी के 70-72 वर्ष में ही हिन्दी का विश्वरंग रच दिया। कुछ पूर्वाग्रही असंतुष्टों ने एक बड़े समारोह को अपनी अनुपस्थिति से छोटा करने का प्रयत्न तो अवश्य किया लेकिन समय को भी क्या मुटठी में बंद किया जा सकता है? ऐसा समय न जाने कब आएगा, जब हम विचारधाराओं की पगड़ी पहन कर अच्छे कार्य को बुरा बताने के आरोपी स्वभाव से मुक्त होंगे? साहित्यकार जिस महानता का रूपक है, उस रूपक के रूप की रक्षा तो सबको मिल करनी होगी। साहित्य के संसार में न कोई साम्प्रदायिक होता है, न प्रतिबद्ध न प्रतिक्रियावादी। सब सर्जक होते हैं, सब विचारक होते हैं औ सब सदभाव के मार्ग के पथिक होते हैं। इस भावना को उदारता के साथ विकसित करना होगा। खैर, जो नहीं होना चाहिए था, वह हुआ, मगर जो हुआ वह इतना भव्य और दिव्य था कि उसके लिए विश्वविद्यालय, विश्वरंग के सहयोगी, सहभागी और वनमाली सृजन पीठ, विश्व कला केन्द्र सब बधाई के पात्र हैं।

जनवरी 2020 शुरू हो गया। इस मास में हमारा गणतंत्र दिवस तो है ही साथ ही गांधी   की 30 जनवरी को पुण्यतिथि और शहीद दिवस भी है। गांधी के स्मरण से देश का नैतिक आत्मबल कायम रहता है। काश सारी दुनिया गांधीमय हो जाए तो दुनिया शांति और प्रेम की हवा में सांस ले सके। यह लीप इयर भी है। तमाम विरोधाभासों, कष्टों, राजनीतिक उठा पटकों के बावजुद हमारा लोकतंत्र लोकशील के आचरण से बँधा हुआ है। हमने अपने सात दशको ंसे अधिक के लोकतंत्र को लोकपुष्ट दिया है, जिस में गांधी की नैतिक ताकत है, नेहरू के आधुनिक विचार और पूरे देश की लोकतांत्रिक निष्ठा का प्रमाण। 'समावर्तन' इस अवसर पर अपने समस्त सुधी लेखकों, पाठकों, विचार- साझेदारों को पूरी कृतज्ञता के साथ शुभकामनाएँ देता है। इक्कीसवीं सदी के तीसरें दशक में साहित्यकार इस भावना से सृजन करें कि सृजन मानवीय विजन है और विचार आएँगे, जाएँगे बदलेंगे अगर सृजन सतत सदैव जारी रहेगा। देशभर के हिन्दी सर्जकों को विशेष बधाई इस कामना के साथ कि वे इस तीसरे दशक में ऐसा कुछ करे कि पूरी इक्कीसवीं सदी गर्व से भर उठे।

इस अंक में तीन महाकाव्य, तीन खण्डकाव्य सहित लगभग 80 कृतियों के लेखक कवि-अनुवादक डॉ.किशोर काबरा के जीवन वृत्त पर जहाँ एकाग्र है वहीं वरिष्ठ पत्रकार, लेखिका सुदर्शना द्विवेदी के कृतित्व और व्यक्तित्व पर 'सरोकार' स्तंभ केंद्रित है। कहानियों का स्तंभ कथाराग भी इस अंक को द्विगुणित कर रहा है। सभी पाठकों और लेखकों को पुनः बधाई। स

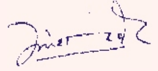

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

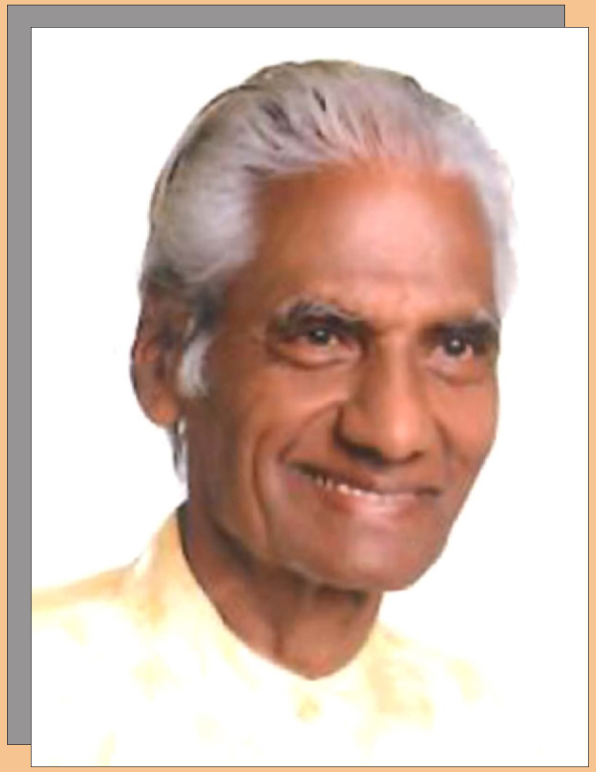

किशोर काबरा

जन्म-तिथि : 26 दिसम्बर, 1934
जन्म-स्थान : मन्दसौर (म.प्र.)
शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.
वृत्ति-प्रवृत्ति : विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में अध्यापन के बाद साहित्य-साधना और ईश-आराधना में संपूर्णतः संलग्न।
प्रकाशित साहित्य : महाकाव्य - उत्तर महाभारत, उत्तर रामायण, उत्तर भागवत। खण्डकाव्य - परिताप के पाँच क्षण, धनुषभंग, नरो वा कुंजरो वा, सतसई - किशोर सतसई। काव्य-संग्रह- जलते पनघट-बुझते मरघट, सारथी ! मेरे रथ को लौटा ले, टूटा हुआ शहर, साले की कृपा, ऋतुमती है प्यास, हाशिये की कविताएँ, मैं एक दर्पण हूँ, चंदन हो गया हूँ।
शोध-प्रबन्ध : रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार
निबन्ध-संग्रह : साहित्यिक निबंध, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन यात्रा : शब्द से निःशब्द की ओर, संवेदना और संप्रेषण
लघुकथा-संग्रह : एक चुटकी आसमान, एक टुकड़ा जमीन, बूँद-बूँद कड़वा सच
बाल-साहित्य : तितली के पंख, टिमटिम तारे, बाल रामायण, बाल कृष्णायन, आज यौवन ने पुकारा देश को, हम सब पंछी, चोर की खोज, खट्टे अंगूर, नीति की कहानियाँ, रोचक कहानियाँ, भारत दर्शन, भारत के दर्शनीय स्थल, आओ ! खेलें खेल, विज्ञान और वैज्ञानिक भाग 1-2, रोचक बाल एकांकी, सदाचार की कहानियाँ।
अनुवाद : भागवत प्रसादी, हरि का मार्ग, मुक्ता, प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति आदि 16 कृतियाँ
सम्पादन : पँखेरू पश्चिम के, बूँद-बूँद घट में, पछुवा के हस्ताक्षर, गवाक्ष
संयुक्त सम्पादन : 54 पाठ्यपुस्तकें एवं 12 अन्य कृतियाँ
अन्य उपलब्धियाँ : 40 से अधिक पुरस्कार एवं सम्मान * साहित्य मणि * साहित्य कलाश्री * राष्ट्रभाषा आचार्य * विद्यावाचस्पति, पत्रकार श्री * साहित्य श्री * काव्यप्रज्ञ * भारत साहित्य गौरव * परम सारस्वत आदि मानद उपाधियाँ
पाँच विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में खण्डकाव्य सम्मिलित * व्यक्तित्व-कृतित्व पर आधारित 20 शोध-प्रबन्ध एवं समीक्षा-ग्रंथ * लघुकथा-संग्रहों के अंग्रेजी * गुजराती एवं सिन्धी अनुवाद * पत्र-पत्रिकाओं एवं विभिन्न संचार माध्यमों द्वारा रचनाओं का प्रकाशन एवं प्रसारण * इंटरनेट पर www.Anubooti.org SJeb Kavita Kosh में परिचय-सूत्र एवं चुनी हुई कविताएँ * E-Book के रूप में 'चन्दन हो गया हूँ' (गजल-संग्रह) * 'ऋतुमती है प्यास' (गीत-संग्रह) एवं 'एक टुकड़ा जमीन' (लघुकथा-संग्रह) लिंक- UT Library.Com पर उपलब्ध।

सम्पर्क : 2, नवजीवन प्रेस कॉलोनी,
गुजरात विद्यापीठ के पीछे,
अहमदाबाद-380014 (गुजरात) मो. 9352025511

जरूरत है एक कविता की

किशोर काबरा

हमें हवा की जरूरत है, पानी की जरूरत है, भोजन की जरूरत है। हमें कपड़े की जरूरत है, मकान की जरूरत है, परिवार की जरूरत है। हमें रेल चाहिए, मोटर चाहिए, रॉकेट चाहिए और न जाने क्या-क्या, पर क्या अभी तक किसी ने यह कहा है कि हमें कविता की जरूरत है?

क्या बिना कविता के जिया जा सकता है?

आदि मानव से लेकर आज तक हमारे साथ कविता रही है। हमारी नाड़ियों में बहने वाले खून के साथ कविता रही है। हम प्रार्थना के मंत्र के साथ उठे हैं और माँ की लोरी के साथ सोए हैं। हमारे जन्म, विवाह और मरण के साथ लोकगीत गुँथे गए हैं। हमारे तीज-त्यौहार, पर्व-समारोह, धर्म-कर्म, शादी-ब्याह सभी प्राणों के स्पन्दन की तरह गीत-धारा प्रवाहित हो रही है।

किसी राम के चरित्र को उजागर करने के लिए एक वाल्मीकि चाहिए, एक तुलसी चाहिए। किसी पृथ्वीराज चौहान को 'मत चूको चौहान' कहने के लिए एक चन्द वरदायी चाहिए। शिवजी और छत्रसाल को एक भूषण चाहिए, जयसिंह को बिहारी चाहिए। वस्तुतः कवि को राज्याश्रय नहीं, राजा को कविताश्रय चाहिए, समाज एवं व्यक्ति को कवि का सहारा चाहिए। जनता की बिगड़ी मानसिकता पर चाबुक लगाने के लिए कबीर चाहिए और घावों पर मरहम लगाने के लिए मीरा चाहिए। देश को आजादी की लड़ाई में 'वंदे मातरम्' चाहिए, आजादी के बाद 'जन-गण-मन' चाहिए।

सच्ची कविता प्रसव-पीड़ा की तरह उभरती है और कागज पर जन्म लेती है। गजल के लिए तो यही कहा जाता है कि वह जिन्दगी में एक बार जन्म लेती है। अरबी भाषा में 'गिजाला' एक छोटे हिरण को कहते हैं, जो शिकारी के बाण से घायल होकर मरते समय अपने गले से घरघराघट की विशेष आवाज निकालता है। यही गजल है अर्थात् मरते समय की गई अन्तिम आवाज की तरह कविता भी ऊँची एवं पवित्र चीज मानी जाती है।

सच्ची कविता की पहली शर्त यह है कि हमें उसका कोई भार नहीं लगता, उसी तरह जिस तरह पंछी अपने पैरों से आकाश में स्वच्छंद विचरण करता है, उसे पंखों का वजन नहीं लगता, उलटे पंख ही उसका वजन उठाते हैं। सच्ची कविता भी हमारे सुख-दुख, राग-विराग, मिलन-बिछोह, हास-रुदन का भार उठाती है। सच्ची कविता व्यक्ति के जीवन के विषय में सब कुछ कह जाती है, उसकी सोई स्मृतियों को एक गहरा गरम-गरम चुम्बन दे जाती है, इसीलिए ऐसी कविता को वादों के घेरे में नहीं बाँधा जा सकता। हर वाद इस चपल बालिका को बाँधने के लिए यशोदा की रस्सी की तरह दो अंगुल छोटा पड़ जाता है।

जब कविता कला-विशेष बन जाती है तो कुछ कवि, कुछ मंच, कुछ समीक्षक, कुछ आचार्य उसके पाठक और श्रोता हो जाते हैं और पोखर में बंद जीवन की धारा सड़-सड़कर सूख जाती है। कविता जब कविता के लिए नहीं की जाती, मात्र कला के लिए की जाती है, तब तालाब बनते हैं। कविता को धारा बनना है, तो उसे गोमुख से अपना पानी लेना पड़ेगा। जीवन के बिखराव को समेटने के लिए उसे एक घुटा दर्द अपने अपने कलकल के साथ सँजोना पड़ेगा। वाद उसके लिए हैं, वह वाद के लिए नहीं है।

आज कविता का संक्रमण-काल चल रहा है। नई कविता से अकविता तक और जनवादी कविता से लेकर प्रयोगवादी कविता तक आप कुछ भी लिख सकते हैं। पुराने छायावाद को नए करिश्मे के साथ पेश करना है तो नवगीत आपकी मदद करेगा, पुराने प्रगतिवाद को नए तेवर से खींच कर लाना है तो गजल और तेवरियाँ तैयार हैं। आप राम की शक्ति पूजा की तरह लम्बी कविता भी लिख सकते हैं और चुटकुले की तरह क्षणिका भी। इस समय कविता चौराहे पर खड़ी है। अब चाहे इसे आठवें दशक की कविता कहो चाहे नवें दशक की, अथवा मुक्तिबोध और धूमिल के बाद की। अभी तक कविता को सही नाम नहीं दिया जा सका है।

सही बात क्या है? आज कविता प्रयोग के नाम पर दुरूहत होती जा रही है। अब वह शब्द-विलास मात्र रह गई है। उसमें शहरों और गाँवों के चित्र तो है, पर चित्र में जीता-जागता कोई आदमी नहीं है। यह स्थिति केवल हिन्दी कविता की ही नहीं है, पूरे विश्व-कविता-बाजार में मंदी का भाव चल रहा है।

कविता मरी नहीं है, भटक गई है। वह जीवन के संगीत के स्थान पर शब्दों की दार्शनिक व्याख्या मात्र बनकर रह गई है। आज जरूरत है एक सच्ची कविता की, पूरे ईमानदार सोच की, बिना वादों के घेरे में बँधे एक कवि की, एक समर्पित कवि की। स

जब कविता कला-विशेष बन जाती है तो कुछ कवि, कुछ मंच, कुछ समीक्षक, कुछ आचार्य उसके पाठक और श्रोता हो जाते हैं और पोखर में बंद जीवन की धारा सड़-सड़कर सूख जाती है। कविता जब कविता के लिए नहीं की जाती, मात्र कला के लिए की जाती है, तब तालाब बनते हैं। कविता को धारा बनना है, तो उसे गोमुख से अपना पानी लेना पड़ेगा। जीवन के बिखराव को समेटने के लिए उसे एक घुटा दर्द अपने अपने कलकल के साथ सँजोना पड़ेगा। वाद उसके लिए हैं, वह वाद के लिए नहीं है।

किशोर काबरा के गीत, गजल और दोहे

पाँच गीत

मन का महाजन तुला ही नहीं

तन के तट पर मिले हम कई बार, पर-
द्वार मन का अभी तक खुला ही नहीं
डूबकर गल गए हैं हिमालय, मगर
जल के सीने में इक बुलबुला ही नहीं
जिंदगी की बिछी सर्प-सी धार पर
अश्रु के साथ ही कहकहे बह गए
होंठ ऐसे सिये शर्म की डोर से,
बोल दो ये, मगर अनकहे रह गए
सैर करके चमन की मिला क्या हमें
रंग कलियों का अब तक घुला ही नहीं
चंदनी छन्द बोकर निरे कागजी
किसकी कविता की खुशबू मिली आज तक
इस दुनिया की रंगीन गलियों तले-
बेवफाई की बदबू मिली आज तक
लाख तारों के बदले भरी उम्र में
मेरा मन का महाजन तुला ही नहीं
मरमरी जिस्म को गर्म साँसें मिलीं
पर धड़कता हुआ दिल कहाँ खो गया
चाँद-सा चेहरा झिलमिलाया, मगर-
गाल का खुशनुमा तिल कहाँ खो गया
आँख की राह सावन बहे उम्र भर,
दाग चुनरी का अब तक धुला ही नहीं

सुधियों के गाँव

घुटे-घुटे परिचय का जहरीला दंश,
हरी नागफनियों का निगल गया वंश।

स्मृतियों के चौखट पर
अलसाया द्वार।
गुमसुम एकाकीपन
खोलता किवार।
विभ्रम की लहरों पर बिखर गया हंस।

शैवाली बाँहों के,
भागते त्रिकोण।
विस्मय के चेहरे पर
सिमट गया मौन।
उखड़ गया स्वागत का सपनीला अंश।

चिन्तन के तट पर है
सुधियों के गाँव।
मंजिल की डाली पर
गदराए पाँव।
सिहरन-सा गोकुल पर फैल गया कंस।

अलसी का अलसाया पोर-पोर

चंदा की चिड़िया ने
किरणों के तिनकों से
घोंसला बनाया जामुनिया की डाली पर।

कोयलिया बहक गई निमिया के गाँव-गाँव,
पायलिया चहक गई छिमिया के पाँव-पाँव।
खेत के सिवाने पर, गली के मुहाने पर,
झूठी अफवाहों-सा फैल गया काँव-काँव।

अम्बुआ के झुरमुट में बतियाते बरगद ने,
हलकी-सी गाली दी दुनिया को ताली पर।
शरमीली सरसों का पियराया छोर-छोर,
निंदियाती अलसी का अलसाया पोर-पोर।
गदराई रातों में, कजरारी आँखों में,
माला के मनके सब बिखर गए ठौर-ठौर।

कथियाए हाथों पर,मिसियाए दाँतों पर,
पनवाड़ी बहक गया चुनिया की लाली पर।

बिखर गया पँखुरी सा दिन

बिखर गया पँखुरी सा दिन
फूल गई सेमल-सी रात।

पूरब में अंकुराया चाँद
जाग गई
सपनों की माँद।
आ धमका कमरे के बीच
अँधियारा
खिड़की को फाँद।

होठों पर आ बैठा मौन
बंद हुई सूरज की बात।

अभिलाषा ढूँढरही ठाँव,
आँसू के
फिसल गए पाँव।
पलकों पर आ बैठी उँघ,
बरगद में
उलझ गया काँव।

निंदिया के घर आई आज
तारों की झिलमिल बारात।
फुनगी पर बैठ गया छंद,
कलियों के
द्वार हुए बंद।
पछुवा के हाथों को थाम
डोल रहा
पागल मकुरंद।

सिमट गई निमिया की देह
सिहर गया पीपल का पात।

ठहर गये क्षण के संदर्भ

ठहर गये क्षण के संदर्भ,
ठिठक गई आँख की इकाइयाँ।

पश्चिम का आदिम अहसास
लील गया
पुरवा के बदराए शंख,
सपनीले नीड़ों की आस
कुतर गई पंछी के विस्फारित पंख।
ताड़ हुई तिल की परछाइयाँ।

मरूथल का शंकित बिखराव
उग आया
मौन पहन शीशे के पाँव।
पंक्तिबद्ध खोखले पड़ाव
कोलाहल ओढ़चले होरी के गाँव।
पर्वत से बतियाती खाइयाँ।

टुकड़ों में बँटी-बँटी बात
संशय बन
चमक रही स्वीकृति के बीच,
दुहराती बैरन बरसात
झिंगुराए बरगद की झंकृति के बीच।

दो ग़ज़लें

खून की हर बूंद

छू लिया तुमने तो मेरी आँख पुरनम हो गई
आँसुओं के साथ पूरी रात शबनम हो गई

खुशबुओं का एक झोंका चमन में ज्यों ही बहा
पत्तियाँ लहरा गईं, हर डाल परचम हो गई

गीत को भर कर गजल में पी गया हूँ इस तरह
होंठ से निकली हुई हर बात सरगम हो गई

सात डग ही तो भरे थे साथ में लेकर तुम्हें
किन्तु हरदम के लिए यह राह हमदम हो गई

घाव पर ही लग रहे थे घाव मेरे इस तरह
खून की हर बूँद अपने-आप मरहम हो गई।

अदालत पर उतर आए

मुझे जर्रा समझ पहले हिकारत पर उतर आए
उठा जब आसमाँ पे तो इबादत पर उतर आए

पसीना, खून, आँसू, दूध सब कुछ ले लिया हमसे
कि जल की बूँद माँगी तो तिबारत पर उतर आए

तुम्हारे वास्ते सिर काटकर तकिया बनाया पर
ये तकिया गड़ रहा - तुम इस शिकायत पर उतर आए

जवानी होम दी जिनके भरण में और पोषण में
वही बेटे बुढ़ापे में बगावत पर उतर आए

भरोसा था कि आखिर ये मुझे माफी मिलेगी ही
मगर मेरे खुदा, तुम भी अदालत पर उतर आए।

कुछ दोहे

बरगद जैसी देह हो, पीपल जैसे प्राण।
तुलसी जैसी बुद्धि हो, तो जीवित निर्वाण ।।1।।

उलझ गया संसार में, कैसे पाऊँ छोर।
सुलझा दो इस गाँठ को मेरे नन्दकिशोर।।2।।

मन-दर्पण में झाँककर देख अरे चितचोर।
तू भी नन्दकिशोर औ, मैं भी नन्दकिशोर।

आसन भोजन, दो वसन, कागज-कलम-दवात।
इतना कवि को मिल गया, मत पूछो कुछ बात।

तुम उतने सीधे लगे, जितने सीधे बाँस।
पोर-पोर में गाँठ है, रोम-रोम में फाँस।

पैरों में धरती पहन, सिर पर नभ का भार।
जीवन की इस धूप में भटक रहा हूँ यार।

तुम कहते दीवार ने, बाँट दिया परिवार।
अरे, यही दीवार तो, साझे का आधार।

गीत लिखे, गजलें लिखी, लिखे छन्द-स्वछन्द।
जब मैंने खुद को लिखा, कलम हो गई बन्द। स

सम्पतियाँ एवं आशीर्वचन

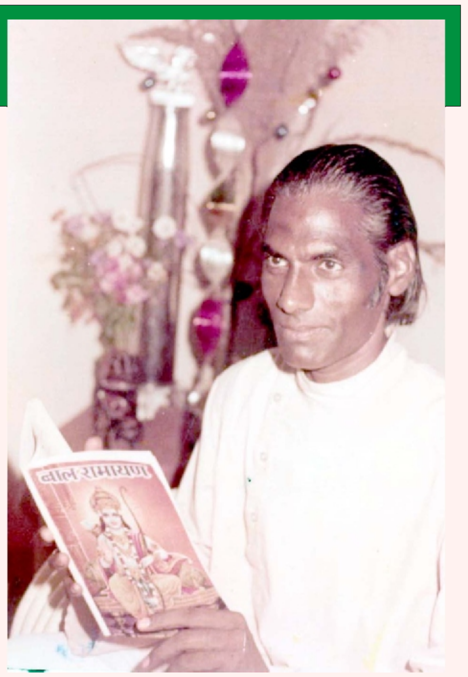

किशोर काबरा ने पूरे हिन्दी जगत् में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इनकी मिथकीय कविताएँ, बिम्बात्मक, सुगम, भावभीनी और विचारोत्तेजक हैं। 'धनुषभंग' इसका प्रमाण है।

* डॉ. हरिवंशराय 'बच्चन'

आपने भविष्य के परिताप को बहुत कौशल से छुआ है। वस्तुतः किसी की शक्ति ही उसकी दुर्बलता हो जाती है। आपने उसे मर्मस्पर्शी ढ़ंग से अंकित किया है। बधाई।

* डॉ. विद्यानिवास मिश्र

आपकी पुस्तक पढ़ी 'दर्द का घोंसला' में आपने कितना दर्द सहा होगा ?

* विष्णु प्रभाकर

'उत्तर महाभारत' तो पूर्णतः मनोवैज्ञानिक कृति प्रतीत होती है।

* डॉ. कुमार विमल

आपकी कविताएँ बहुत प्रिय हैं। सहज, सरल अभिव्यक्ति में आप दक्ष हैं।

* केदारनाथ अग्रवाल

इंसानी मोहब्बत और जागृति के संकल्प से भरपूर आपकी काव्य-साधना एक अनुकरणीय उपलब्धि है।

* दिनकर सोनवलकर

मैं पूरी ईमानदारी और सदाकत के साथ यह हल्फिया बयान दे रहा हूँ कि मैंने जब-जब भी जहाँ-जहाँ पढ़ा, तब-तब मेरी चेतना के व्योम पटल पर आपकी अर्थवती शब्दप्रज्ञा ने अपनी विद्युन्मयी आलोक रेखाओं से रंग पर्व की भूमिकाएँ रची हैं।

* देवेन्द्रनाथ शर्मा 'इन्द्र'

आपकी कवित्व शक्ति का मैं कायल हूँ। आपके काव्य में मैंने एक विलक्षण तल्लीनता देखी, जो प्रसंगों को उठाकर उनके सम्पूर्ण निर्वाह तक कहीं शिथिल नहीं होती।

* डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर

'टूटा हुआ शहर' के माध्यम से एक गंभीर और शब्दों के प्रति समर्पित रचनाकार को अपने इतने निकट पाकर प्रसन्नता हुई है।

* डॉ. प्रमोद त्रिवेदी

काबरा कविता के मूर्तिमत्त रूप हैं- यह सही कहा है साहित्य पारिजात ने।

* चन्द्रसेन 'विराट'

आपकी आराधना संपूर्ण देश में अगरू गंध बनकर फैल रही है। डॉ.सुमन जी के हाथों आपकी पुस्तक 'उत्तर रामायण' का लोकार्पण जीवन की अनमोल घटना है।

* डॉ.पवनकुमार मिश्र

शाश्वत एवं समकालीन चेतना के यशस्वी साहित्यकार डॉ. किशोर काबरा

भगवानदास जैन

साठोत्तरी हिन्दी-कविता के शीर्षस्थ हस्ताक्षरों में डॉ. किशोर काबरा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि एवं पश्चिमांचल के गौरव हैं। काबरा जी मूलतः कवि हैं, साथ ही निबन्धकार, आलोचक, कहानीकार, शब्द-चित्रकार, अनुवादक एवं सम्पादक भी हैं। आपकी गद्य-प्रतिभा लघुकथाओं से साहित्यिक निबन्धों और शोध-प्रबंध तक तथा आपकी काव्य-साधना क्षणिकाओं-मुक्तकों और प्रबन्ध-काव्यों तक व्याप्त है। आपका कवित्व कवि-सम्मेलनों के श्रोताओं से लेकर पाठकों की हृदयभूमि तक प्रतिष्ठित है।

रस-परिपाक, गुण-गरिमा, लाक्षणिक प्रयोग, बिम्ब-योजना एवं प्रतीक-विधान आदि की दृष्टि से काबरा जी की कविता समृद्ध है। व्यंग्य तो उनकी कविता का प्राण-तत्त्व है। काबरा जी की कविता की केन्द्रवर्ती विशेषता है उनका मानवतावादी दृष्टिकोण और मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उनकी निरन्तर चिन्ता। यही कारण है कि वे अपनी कविता के लिए कथ्य चाहे सुदूर अतीत के पुराख्यानों से ढूँढ़कर लाते हों या अपने आसपास के परिवेश से ग्रहण करते हों, किन्तु उसके केन्द्र में तो मनुष्य ही रहता है। आज के मानव की समस्याओं को पूरी ईमानदारी और निष्ठा से रूपायित करना वे अपनी रचनाधर्मिता और अपना युगधर्म स्वीकार करते हैं।

कविवर काबरा जी की कविता-विषयक अपनी कतिपय मौलिक मान्यताएँ हैं। वे लिखते हैं *''आज कविता श्रोता से, पाठक से या यों कहिए कि जीवन से दूर हो गई है। कविता जब कविता के लिए की जाती है, तब तालाब बनते हैं, कविता जब जीवन के लिए की जाती है, तब धारा बनती है। आदिकाल से आज तक हमारी धड़कन के साथ कविता रही है, हमारी नाड़ियों में बहनेवाले खून के साथ कविता रही है। सच्ची कविता की पहली शर्त यह रही है कि हमें उसका कोई भार नहीं लगता।''* (साहित्यिक निबंध, डॉ. किशोर काबरा, पृ.41-42)

मध्यप्रदेश के मालव-अंचल में रचे-बसे मन्दसौर नगर की काली मिट्टी किशोर काबरा की जन्मभूमि है। 26 दिसम्बर, 1934 को 'नन्दकिशोर' नाम के बालक ने काबरा परिवार में जन्म लिया। इसी बालक ने 'किशोर काबरा' के नाम से हिन्दी-भाषा साहित्य में एम.ए., पी-एच.डी. और साहित्यरत्न की पदवियाँ प्राप्त कीं। स्नातकोत्तर अध्यापक एवं उपाचार्य पद पर वर्षों तक रहने के बाद आपने स्वैच्छिक त्यागपत्र दे दिया और एकांत एवं अनन्य भाव से साहित्य-साधना में प्रवृत्त हो गए। शिल्प, कथ्य एवं विधा की दृष्टि से विपुल साहित्य की रचना करनेवाले काबरा जी को देश के कोने-कोने से कई साहित्यिक संस्थानों द्वारा समादृत एवं पुरस्कृत किया गया है। साहित्यकला श्री, साहित्य शिरोमणि, साहित्य श्री, पत्रकार श्री, विद्यावाचस्पति जैसी मानद पदवियों से आप समलंकृत हैं। निःसंदेह डॉ. किशोर काबरा सच्चे अर्थों में सारस्वत हैं और माँ भारती के अनुपम कण्ठहार हैं।

डॉ. किशोर काबरा की काव्य-साधना आज तीन दशकों की सुदीर्घ यात्रा पूरी करने के बाद भी अखण्ड रूप में चल रही है। उनके साहित्य को निम्नलिखित विभागों में बाँटा जा सकता है :

* महाकाव्य : उत्तर महाभारत (1990), उत्तर रामायण (1994), उत्तर भागवत (2004)।
* खण्डकाव्य : परिताप के पाँच क्षण (1979), धनुषभंग (1982), नरो वा कुंजरो वा (1984)।
* काव्य-संग्रह : जलते पनघट : बुझते मरघट (1972), साले की कृपा (1975), सारथी, मेरे रथ को लौटा ले (1976), टूटा हुआ शहर (1983), ऋतुमती है प्यास (1990), हाशिये की कविताएँ (1995), मैं एक दर्पण हूँ (1996), चन्दन हो गया हूँ (1999)।
* सतसई : किशोर सतसई (1997)।
* शोध-प्रबंध : रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार (1975)।
* निबंध-संग्रह : साहित्यिक निबन्ध (19947), यात्रा : शब्दसे निःशब्द की ओर (2011)।
* लघुकथा-संग्रह : एक चुटकी आसमान (1986), एक टुकड़ा जमीन (1991), बूँद-बूँद कड़वा सच (1997)।
* बालसाहित्य : तितली के पंख (1992), टिमटिम तारे (1995), बाल रामायण (1972), बालकृष्णायन (1979), आज यौवन ने पुकारा देश हो (1985), हम सब पंछी (1992), खट्टे अंगूर (1994)।
* संपादन, सह-संपादन एवं अनुवाद : लगभग 60 पुस्तकें।

श्री काबरा-प्रणीत *''उत्तर महाभारत''* एक गरिमामण्डित प्रबन्ध-कृति है। कलात्मकता, भाव-सौन्दर्य, युगबोध एवं गहन जीवन-दृष्टि का सन्निवेश ही इसकी अपनी गरिमा है, अतः इसे महाकाव्य की संज्ञा देना मेरी दृष्टि से असमीचीन न होगा। ''उत्तर महाभारत'' का उपजीव्य भी महाभारत के 17वें और 18वें पर्व का आख्यान है। इसकी कथा सात सर्गों में विभक्त है। महाभारत के 18 दिवसीय विध्वंसकारी युद्ध के अनंतर अवशिष्ट पाँच पाण्डवों के हिमालय-प्रस्थान की कथा, काव्य, दर्शन और मनोविज्ञान के त्रिवेणी-संगम पर कही गई है। कवि ने *'उत्तर महाभारत'* में अतीत के बीजों को वर्तमान की भूमि पर भविष्य के लिए बोने का प्रयास किया है। प्रत्येक पाण्डव एक तटस्थ दार्शनिक की भाँति महाप्रयाण की बेला में अपने पूर्व-कृत कर्मों का पर्यवेक्षण करता है। पाण्डवों के आत्मालोचन का यह अंश कवि की नितान्त मौलिक उद्भावना है। एक ओर जैसा कि स्वयं कवि का कथन है ''उत्तर महाभारत अर्थात् षट्विकारों के शमन और षडदर्शन की प्राप्ति का बिम्बात्मक आख्यान है। वस्तुतः यह छह व्यक्तियों के स्वभाव-वैचित्र्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।''

''उत्तर रामायण'' भी पाँच सर्गों में विभक्त महाकाव्य स्तर का गरिमायुक्त प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें कवि ने रामकथा से सम्बन्धित कुछ शाश्वत प्रश्नों के समाधान खोजने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है। कवि ने अपनी प्रासादिक एवं प्रवाहयुक्त भाषा-शैली में इस महाकाव्य की रचना की है। निश्चय ही *''उत्तर रामायण''* में रूपायित रामकथा न तो आक्षेप-कथा है, न क्षेपक-कथा है और न ही कोई कलंक कथा है। यह तो निःसंदेह सीता-राम की गौरव-गाथा का युग-सापेक्ष पुनर्मूल्यांकन है। स्वयं कवि के मतानुसार ''यह मानव की पूर्णता-यात्रा में विश्व-इतिहास के सबसे बड़े त्याग, बलिदान एवं तिरोहित होने की संघर्षपूर्ण और उतार-चढ़ाव वाली तथा मानव-मन के कई योगों से भरी परीक्षा-कथा है।''

डॉ. काबरा के तीसरे महाकाव्य *''उत्तर भागवत''* का प्रमुख आधार ग्रन्थ महर्षि वेदव्यास प्रणीत 'श्रीमद्भागवत' है। स्पष्ट ही इसके काव्य-नायक श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण के बहुआयामी जीवन के उपसंहार से प्रारंभ होकर उनके विगत जीवन के समस्त घटना फलक को अपने में समेटे हुए ''उत्तर भागवत'' की कथा नौ सर्गों में निबद्ध की गई है। यह कथाधारा कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र को नवधा भक्ति के नौ अंगों को पूर्वपीठिका बनाकर पुनः अपने मूल स्थान पर लौट आती है।

डॉ. किशोर काबरा प्रबंध-चेतना के सशक्त कवि हैं। इनके छहों प्रबंध -काव्य हिन्दी-जगत् में पर्याप्त चर्चित-समादृत एवं पुरस्कृत हुए हैं। सभी प्रबंध-काव्यों में कवि की सूक्ष्म काव्य-दृष्टि एवं गम्भीर मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के दर्शन होते हैं। डॉ. घनश्याम अग्रवाल ने यथार्थ ही लिखा है कि ''डॉ. धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, दुष्यन्तकुमार के साथ ही डॉ. काबरा का नाम इन प्रबंध-काव्यों के संदर्भ में आदर के साथ लिया जा

सकता है। वे निश्चय ही आधुनिक काल के आठवें दशक के उत्तम प्रबंध कवि हैं। (डॉ. किशोर काबरा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 49)

डॉ. काबरा-रचित खंडकाव्य *''परिताप के पाँच क्षण''* महाभारत के अमर पात्र भीष्म पितामह के मनस्ताप एवं परिताप पर आधारित है। कवि ने प्रस्तुत खंडकाव्य में आजीवन अविवाहित रहने की भीष्म प्रतिज्ञा का पुनर्मूल्यांकन तो किया ही है, साथ ही मनोवैज्ञानिक सत्य के प्रकाश में उनके परंपरागत उज्ज्वल चरित्र पर एक जबर्दस्त प्रश्न-चिह्न भी लगा दिया है। महाभारत युद्ध के अनंतर कुरुक्षेत्र की रणभूमि में शरशैया पर लेटे हुए मुमुर्षु भीष्म पितामह असह्य मनस्ताप से आक्रांत हैं और अनेक अन्तर्विरोधों के बीच तड़प रहे हैं। उनके लिए जीवन पाप और मरण अभिशाप हो गया है। आखिर ऐसा क्यों ? इसलिए कि भीष्म ने अपने रुग्ण और क्षतवीर्य सौतेले भाई विचित्रवीर्य के लिए काशीराज की तीनों राजकुमारियों (अंबालिका, अम्बिका और अम्बा) का अपहरण करकेभारी अदूरदर्शिता का परिचय दिया था। इनमें से दो को क्रमशः प्राप्त हुए पाण्डुरोगग्रस्त पुत्र और अन्धा पुत्र। कहीं की न रही तो केवल अम्बा। भीष्म ने उसे अपनी प्रतिज्ञा के बहाने ठुकरा दिया, फलस्वरूप वह आजीवन प्रणय और प्रतिशोध की आग में जलती रही। भीष्म को भी अम्बा के प्रति अन्याय का भीषण परिताप है। भीष्म के इसी परिताप के माध्यम से कवि ने एक और उपेक्षित नारी अम्बा का उद्धार किया है।

डॉ. काबरा प्रणीत खंडकाव्य *''धनुष-भंग''* का प्रेरणास्रोत रामायण है। 'धनुष-भंग' का संपूर्ण कथानक पाँच विस्फोटों, किंवा पाँच सर्गों में विभक्त है। एक युगद्रष्टा कवि के अनुरूप काबरा जी ने प्रस्तुत खंडकाव्य में रामायण की एक सूक्ष्म मिथकीय परिकल्पना के सहारे युग-बोध का सन्निवेश किया है। श्रीराम का वरण करने के लिए सीता अपने हाथों में वरमाला लिए खड़ी है। सीता के पलक झपकने के केवल एक क्षण को कवि ने व्यापक युग-सन्दर्भों में देखा है। पिछली इक्कीस पीढ़ियों से चलने वाली धनुष और हल की कहानी को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करना ही इस खंडकाव्य का उद्देश्य है।

कविवर काबरा जी के खंडकाव्य *''नरो वा कुंजरो वा''* का उत्स भी महाभारत की कथा में मिलता है। इस खंडकाव्य के नायक द्रोणाचार्य हैं। ये वे द्रोण हैं, जिन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा को दूध के स्थान पर आटा घोल-घोल कर पिलाया था। उसी अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनते ही द्रोण उच्छिन्न वृक्ष की तरह धराशायी हो गए, क्योंकि नर-कुंजर की अनिश्चात्मक मनोदशा में वे पुत्र-वियोग का आघात सह न सके। कवि के सम्मुख द्रोण का व्यक्तित्व एक प्रश्न के रूप में टिका हुआ था। *''नरो वा कुंजरो वा''* खंडकाव्य से अर्द्धसत्य पर टिके हुए द्रोणाचार्य के जीवन-दर्शन की वह प्रतीक कथा है, जो दूध के मुहाने से प्रारंभ होकर रक्त के महासागर पर समाप्त हो जाती है।

''जलते पनघट : बुझते मरघट'' डॉ. काबरा की इक्यावन कविताओं का संकलन है। इसमें कुछ कविताएँ मुक्तछंद में भी लिखी गई है। कविताओं में कवि के कटु-मधुर अनभवों की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती है। आधुनिकता के नाम पर समाज और देश में व्याप्त प्रवंचना, कुण्ठा और अनास्था के बावजूद इन कविताओं में कवि ने

आस्था और विश्वास के गीत गाए हैं।

"सारथि, मेरे रथ को लौटा ले" में कवि का कवित्व तीन धुरियों अर्थात् कविता, गीत और गजल के तीन रंगों में अभिव्यक्त हुआ है। इस संकलन की कविताओं का परिदृश्य अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है, जिसमें धर्म, समाज, राजनीति, जीवन साहित्य आदि में व्याप्त कुत्साओं और अनिष्टों की स्पष्ट विकृति परिलक्षित होती है। संग्रह की लम्बी कविता "सारथी मेरे रथ को लौटा ले" आधुनिक-बोध से अनुप्राणित एक सशक्त और उल्लेखनीय कविता है।

"टूटा हुआ शहर" की कविताओं में कवि की बलवत्तर अनुभूतियों एवं प्रौढ़भाषा-शिल्प के दर्शन होते हैं। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के प्रति कवि का दायित्वबोध यहाँ और भी तीव्र रूप में व्यक्त हुआ है। जीवन के कारागार में कैद आज के आदमी की तस्वीर को कवि ने कितने मर्मस्पर्शी रूप में अंकित किया है : *"मैं एक/निचुड़े हुए कपड़े की तरह/बरामदे के किसी कोने में अलगनी पर/टाँग दिया गया हूँ।"* (राख की पर्त दर पर्त, पृ.11)

शहर की विषाक्त सभ्यता और उसमें सराबोर नागरिकों के प्रति कवि का यह चुटीला व्यंग्य देखिए और अज्ञेयजी की "साँप" शीर्षक कविता का स्मरण कीजिए : *"अच्छा है तुम्हारा नगर, / अच्छे हैं नागरिक, / एक बात बताओ दोस्त, / यह नागरिक 'नाग' से ही बना है न?"* (नागरिक पृ. 21)

'ऋतुमती है प्यास' विशुद्ध गीत संग्रह है, जिसमें उपमालंकार एवं लाक्षणिक प्रयोगों से अलंकृत प्रकृति का चित्रोपम एवं बिम्बात्मक चित्रण देखते ही बनता है।

"हाशिये की कविताएँ" काव्य-संकलन को प्रबन्धकार डॉ. काबरा के कवि-कर्म का उपोत्पाद कहा जा सकता है। इसमें कवि की 301 क्षणिकाएँ ग्रन्थस्थ हैं, जो वस्तुतः प्रबन्ध-रचना के दौरान कवि के हृदय में उत्पन्न समसामयिक बोध से सम्बन्धित चिन्तन-कणिकाएँ हैं।

"किशोर सतसई" 707 दोहों का संग्रह है। संस्कृत और प्राकृत को छोड़ भी दें तो हिन्दी में मध्ययुग से लेकर आजतक सतसई की एक अक्षुण्ण परम्परा दृष्टिगत होती है। 'किशोर सतसई' उसी सुदीर्घ परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। काबरा जी दोहा छंद की शक्ति से सुपरिचित हैं। नई पीढ़ी की नियति का इससे सहज, सुंदर और संक्षिप्त किन्तु पूर्ण चित्र और क्या होगा? देखिए-

"मन पीड़ित है, आँखें सजल, किन्तु होठ पर हास्य।
इस पीढ़ी के भाग्य का लिखा नियति ने भाष्य ।।"

"सतसई" के सात सोपानों में मानों कवि ने जगज्जीवन-सम्बन्धी अपना विराट् अनुभव व्यक्त कर दिया है। दोहा जैसा प्राचीन छंद स्वीकार करके उसमें कथ्य और शिल्प का नावीन्य संपूर्ण अर्थ-गौरव के साथ सँजो पाना डॉ. किशोर काबरा जैसे युगधर्मी एवं सिद्धहस्त कवि के ही बूते की बात है।

"मैं एक दर्पण हूँ" कवि का नवीनतम कविता-संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में भावों का टटकापन है तो व्यंग्य का चुटीलापन भी है। कविता चाहे सामाजिक बोध से अनुप्राणित हो या वैयक्तिक चेतना से संयुक्त हो, किन्तु कवि की एक गहरी जीवन-दृष्टि सर्वत्र जुड़ी रहती है। *'चन्दन हो गया हूँ'* गजल-संग्रह भी अपने विचार-वैभव एवं बिम्बविधान की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

कहा गया है कि "गद्य कवीनां निकषं वदन्ति"। पद्य के साथ-साथ गद्य में भी उसी अधिकार और क्षमता से लिखने वाले डॉ. किशोर काबरा सव्यसाची ही तो हैं। डॉ. काबरा जी गद्य-लेखन, बाल-साहित्य से लेकर निबन्धों एवं शोध-प्रबन्धों जैसे प्रौढ़साहित्य तक परिव्याप्त हैं। आपका प्रथम गद्य-ग्रंथ सन् 1975 में प्रकाशित शोध-प्रबंध *"रीतिकालीन काव्य में शब्दालंकार"* है। इस ग्रंथ में काबरा जी ने वैदिककाल से अद्यावधि शब्दालंकारों का वैज्ञानिक पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है। समूचे ग्रंथ में पदे-पदे गद्यकार डॉ. काबरा का कवित्व झाँकता दीख पड़ता है। यही बात *"साहित्यिक निबंध"* के सम्बन्ध में भी शत-प्रतिशत सही है। स्वयं काबरा जी का विधान अपने इस निबंध-संग्रह के सम्बन्ध में उद्धरणीय है- 'इसमें कवि है, कलम है, कागज है। इसमें भूमि है, भूमिका है, भौमिकता है।
इसमें ग्रंथ है, ग्रंथकार है, ग्रंथावलोकन है। इसमें जीवन है, जगत् है, जगन्नियंता है। अन्य निबंध-संग्रह भी इसी कसौटी पर खरे उतरते हैं। गद्यकार काबरा जी के गद्य-शिल्प का सर्वाधिक मनोहर रूप हमें उनकी लघुकथाओं में देखने को मिलता है। ये लघुकथाएँ वस्तुतः काबरा जी के गद्य की उस शिल्पगत चेष्टा के दर्शन कराती हैं, जिसमें उन्होंने *'एक चुटकी आसमान'* को, *'एक टुकड़ा जमीन'* को और 'बूँद-बूँद कड़वा सच' को समेटना चाहा है। आपकी कई लघुकथाएँ अपने समकालीन बोध, टटकेपन और चुटीलेपन के कारण उर्दू के सआदत हुसैन मंटों की याद दिलाती है।

डॉ. किशोर काबरा की अखण्ड काव्य-साधना ने क्षणिका से खंडकाव्य और मुक्तक से महाकाव्य तक की सफल यात्रा की है। उनकी काव्य-साधना की सफलता का यह सबसे बड़ा प्रमाण है कि हिन्दी के मूर्धन्य कवियों और सुप्रसिद्ध साहित्यकारों ने उनकी काव्य-कला की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। श्री नरेश मेहता और चन्द्रकान्त बांदिवडेकर कवि के प्रतीकों-रूपकों पर मुग्ध हैं तो सुधी समीक्षक डॉ. कुमार विमल डॉ. काबरा की प्रबन्ध-पटुता एवं मिथक-योजना पर न्योछावर हैं और मैं हैरान हूँ कि काबरा जी का अभिनंदन किन शब्दों में करूँ ? मैं तो कवि के काव्य-महोदधि में आपादमस्तक डूबकर आत्मविस्मृति की मधुर अनुभूतियों में खो गया हूँ। याद है तो महज इतना :

"खोज डाला कुल जहाँ में, कुछ पता तेरा नहीं,
जब पता तेरा लगा, तो अब पता मेरा नहीं।" स

बी-105, मंगलतीर्थ पार्क, यशोदा नगर
कैनाल के पास, मणिनगर पूर्व, अहमदाबाद-382445

'मेरे शब्द चिरायु हों, मुझे मिले विश्राम'

बहुआयामी सर्जक किशोर काबरा से मधु प्रसाद की बातचीत

व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शीर्षक अपने ग्रंथ में डॉ. घनश्याम अग्रवाल ने लिखा है, "जिसने भी मिट्टी की गंध को मूल से प्राप्त कर फुनगी तक पहुँचाया है वही काल के गाल पर तिल की तरह बच पाया है। जिसने भी संघर्षों की चुनौती को झेला है उसने अमिट के सीने पर अपनी वीणा को आँक दिया है।" डॉ. किशोर काबरा की जीवन-यात्रा एवं काव्य-चेतना पर ये शब्द शत-प्रतिशत चरितार्थ होते हैं।

मधु प्रसाद : आप शाश्वत-संवेदना एवं युग-चेतना के चतुर चितेरे हैं, आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बहु-आयामी एवं विराट रूप है। आज मैं दर्शन एवं चिंतन के प्रज्ञा पुरुष के अंदर छिपे 'व्यक्ति किशोर काबरा एवं, कवि किशोर काबरा' से परिचित होने के लिए उपस्थित हुई हूँ। कृपया पहले व्यक्ति काबरा से परिचय करवाते हुए अपने घर, आँगन एवं परिवार से हम सबको मिलवायें।

डॉ.किशोर काबरा : मधुजी मैंने अपनी 'व्यक्ति आकृति' एवं 'कवि प्रकृति' को अलग होने नहीं दिया है। मुझमें दोनों ही घुल-मिल गये हैं। मिसरी को उसकी मिठास से, दूध को उसकी धवलता से कैसे अलग करेंगी? मैं कवि पैदा हुआ हूँ और ऋषि की तरह मरना चाहता हूँ। मेरे पिता श्री प्रभुलालजी कवि थे, जुझारू थे, वे आस्थावान, सच्चे और ईमानदार इंसान थे। वे क्रोधी भी थे, जलते हुए लावे की तरह। मेरी माँ सरजू बाई एक भोली गबरू, भीरू, शांत चित्त और आशीर्वाद के मुद्रा में रहने वाली निरीह महिला थीं। माता-पिता के सभी रंग कमोबेश मुझमें आ गये। गरीबी मिली उत्तराधिकार में, सो अलग। पिता से मिली कर्मठता और कविता तथा माँ से मिली सरलता और सात्त्विकता मेरे व्यक्तित्व की अंदर-बाहर की रेखाएँ हैं।

मेरा जन्म मंदसौर में मालवा की सोंधी माटी में हुआ, माहेश्वरी जाति में पैदा हुआ, इसलिए सौजन्यपूर्ण संतुलित व्यावहारिकता मुझमे है। हाँ, भीतर से मैं ब्राह्मण हूँ जो ऋषि बनने की तैयारी कर रहा है। जीवन भर संघर्ष करता रहा, इसलिए क्षत्रिय भी हूँ। अर्थ के मामले में अभावग्रस्त रहा, नौकरी भी की, इसलिए कुछ प्रतिशत शूद्र भी हूँ, पर नौकरी छोड़ी भी है और कविता को स्वीकार किया है। मैं चारों वर्णों से ऊपर उठकर, चारों आश्रमों से ऊपर उठकर महा विश्राम कर सकूँ - यही इच्छा है, मैंने अपने एक दोहे में कहा भी है :

दो इच्छाएँ शेष हैं, बाकी सबसे त्राण।
मेरे शब्द चिरायु हों, मुझे मिले विश्राम।।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इस यात्रा का आरंभ मालवा की मिट्टी से हुआ है। अब यह बतायें कि, आपके अंदर के कवि का जन्म कब और कैसे हुआ? आपकी प्रथम कविता?

जैसा मैंने कहा, मधुजी, मैं जन्मजात कवि हूँ। मैंने कविता करना सीखा नहीं है। मेरे अंतःकरण में एक ध्वनि गूँजती रहती थी। उस समय पता नहीं लगता था कि वह क्या है? बस, सहज कविता बन जाती थी, लय और तुक मेरी मदद करते थे। जब मैं मात्र 11 वर्ष का था, तब मेरी पहली कविता छपी थी, लिखना तब से शुरू हो गया था। उस समय की काव्य-पंक्तियाँ याद आती हैं :

'गम के खारे सागर में सब जीवन के जलयान बह गये।
मौन रहें हम कब तक, अब तो धरती पर हैवान रह गये।'

या फिर

'सबको सुखी बनाने वाले, जीवन में रस भरने वाले,
स्वागत है ऋतुराज तुम्हारा, तुम पर तन-मन अर्पण सारा।'

मतलब यह कि प्रारंभ से ही दुःख-सुख दोनों मेरी कविता के उद्दीपक रहे हैं।

डॉ. साहब, बाल्यकाल जीवन का निर्माण काल होता है। बाल्यकाल की कोई स्मरणीय घटना बतायें जिसे याद करके आज भी आप रोमांचित हो उठते हों।

मेरा बचपन पीड़ाओं की राम कहानी है। दुर्बल, कमजोर डेढ़पसली का मैं, अधिक विपन्नता में डूबा परिवार, उपेक्षा करता हुआ परिवेश - इन सबने मुझे अंतर्मुखी बना दिया। जब मैं तीसरी कक्षा में था, तब एक लड़के से मेरी दोस्ती हुई, बल्कि उस लड़के ने मुझसे दोस्ती की। निर्मल, निश्छल हृदय, चेहरे पर मंद-मंद मुस्कान, ऊँचा ललाट, चमकती आँखें, हँसे तो सब दाँत मोती की माला बन जायें। उसके साथ बिताये क्षण आज भी रोमांचित करते हैं। घंटों चोंच में चोंच डाले बातें करते रहते थे। दूसरे दोस्त हमसे जलते, हमें भड़काते, बीच में दरार डालते। पर हम थे कि और गहरे दोस्त होते जाते। रामानुजदास मंत्री है उसका नाम। जो अंग्रेजी प्राध्यापक पद से अब निवृत्त हुआ है। हम दोनों की रागात्मकता इस हद तक पहुँच गई थी कि लोग उसको काबरा और मुझे मंत्री समझते थे। अगर राजानुज जैसादोस्त मुझे नहीं मिलता तो मेरे कड़वे जीवन में मिठास नहीं आती।

डॉ. साहब, आपकी मित्रता ने आपके जीवन में मिठास भर दी है और आपकी यह स्नेहपूर्ण स्मरणांजलि इस वार्तालाप में मिठास भर रही है। अब यह बतायें कि आपकी प्रेरणा का स्त्रोत क्या है? आपके प्रारंभिक वर्ष गाँव की मिट्टी की महक लिये हुए हैं। उस मिट्टी में कहाँ से आपमें सृजनात्मकता के अंकुर फूटे ? कृपया बतायें।

मधुजी, जैसा मैंने बताया मेरा जन्म तो मंदसौर में हुआ था। पारिवारिक अलगाव के कारण पिताजी दादाजी से अलग होकर पास के गाँव बड़वन और झरकन में रहने लगे। गाँव क्या थे कुछ टपरियों और झोपड़ियों के साँस लेते समूह थे। मैं कक्षा 2 तक वहीं पढ़ा था। इस बीच मुझे ताऊजी के यहाँ गोद भी

रखा गया पर उनकी कठोर उपेक्षा ने मेरे तन-मन को वितृष्णा से भर दिया। मेरे पिताजी मुझे पुनः गाँव ले आये। फसलों से लदे खेत, धान उलीचते खलिहान, सन्न-सन्न तान छेड़ते घने पेड़-पौधे, मासूमियत में नहाये, निर्दोष चेहरे, खेल भी खलेते तो ध्वन्यात्मक, लयात्मक या उच्चारण से जुड़े संभवतः कविता वहीं आँख मूँद कर हवा-पानी की प्रतीक्षा कर रही थी, फिर तो मेरा पूरा परिवार मंदसौर आ गया। मैं इसलिए पढ़पाया, क्योंकि परिवार में मेरा और कोई उपयोग नहीं था... (हँसकर) और निरुपयोगी व्यक्ति कविता न करे तो और क्या करे ?

डॉ. साहब, कविता सही पात्र तलाश कर रही थी, आप मिले तो वह धन्य हुई है। निरुपयोगिता ने आपको कवि नहीं बनाया, कविता ने ही आपको ढूँढ़ा है। डॉ. साहब आप कई शिक्षण संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। आपके कवि और शिक्षक की इस यात्रा में शिक्षक कब पीछे रह गया और कवि आगे बढ़गया? कृपया अपने शिक्षण सम्बन्धी अनुभव बतायें।

यह आपने अच्छा पूछा है मधुजी। इंटरमीडिएट के बाद पिताजी ने साफ शब्दों में कह दिया 'अपनी रोटी खुद कमाओ अब हम नहीं पढ़ा सकते।' मेरे सब दोस्त आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेजों में चले गये और मैं नौकरी तलाशने लगा। कई नौकरियाँ कीं - पहले कंबल केंद्र में 'सुपरवाइजर'। फिर मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग में शिक्षक। उस समय मैंने संकल्प किया था कि प्रतिवर्ष एक परीक्षा दूँगा, सो समय जाते साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड., पीएच.डी. हो गया। यह विद्यार्थी की यात्रा थी। शिक्षक के रूप में केंद्रीय विद्यालय के उपाचार्य के पद तक पहुँचा। पीएच.डी. करते ही संकल्प किया कि प्रतिवर्ष एक ग्रंथ प्रकाशित हो, सो वह आज तक चल रहा है। बल्कि दो ग्रंथ प्रतिवर्ष का अनुपात हो गया है। 100 पुस्तकें हो गयीं, फिर अब लगा कि नौकरी कविता पर हावी होने लगी तो मैंने उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर हमेशा के लिए अपना सम्बन्ध कविता से जोड़ दिया। आज मैं कह सकता हूँ कि यदि नौकरी नहीं छोड़ता तो गली-मोहल्ले का कवि बनकर रह जाता। बड़ी प्राप्ति के लिए बड़ा त्याग भी करना पड़ता है। नौकरी को हारना ही था। कविता को जीतना ही था।

आपने सच ही कहा डॉ. साहब, कवि एवं कविता ही इस संघर्ष में विजयी रहे। आपके लिए जीवन बेहद संघर्ष लेकर प्रस्तुत होता रहा है, आप निरंतर योद्धा की भाँति जुटे ही रहे। अंत में संघर्ष ही हारा है आप से। उस सारी कडुवाहट को आपने नीलकण्ठ की भाँति सहा और भोगा फिर भी सत्यम् , शिवम् और सुंदरम वाले कालजयी और आनंदमयी साहित्य की रचना की है। क्या माधुर्य के लिए विषपान आवश्यक है ?

मधुजी, मैंने आपसे पहले कहा है कि मेरे जीवन में यदि कटुता, उपेक्षा, विपन्नता, अभाव, अपमान आदि न आते तो मैं विद्रोही तो बन जाता, कवि नहीं। कवि तो शंकर है, जो हलाहल पीता है और जटाजूट में से गंगा की धारा देता है समाज को। मैंने भी हलाहल पिया है और उसे आक्रोश की गर्मी से पचाया है। इससे मैं स्वस्थ हो गया और भीतर रखा हुआ अमृत कलश बाहर आ गया। मैंने सूई की अगली नोक बनना पसंद नहीं किया जो घाव ही घाव किया करती है। मैं तो सूई की पिछली नोक बना, जो मरहम से घाव सिया करती है। यदि स्वयं के लिए माधुर्य चाहिए, यदि समाज के लिए माधुर्य चाहिए तो विषपान करना ही पड़ेगा। और आप ही बताइए, कवि के सिवाय विषपान और कौन करेगा? जिसके पास कविता का अमृत है, वही तो विष पचा सकता है।

विष से अमृत की यह यात्रा वाकई मार्मिक है। डॉ. साहब यह यात्रा आपको कब गुजरात ले आयी, यानी मालवा की मिट्टी की सोंधी सुगंध ने कब गुजरात की रंगभूमि का वरण किया?

मैं 33 वर्ष की उम्र में मालवा छोड़कर गुजरात की भूमि से जुड़ गया। 1968 से आज तक यानी यहाँ भी 51 वर्ष हो गये। मालवा की मिट्टी अब भी मुझको बुलाती है। वह अफीम के पुष्पों की मदिर गंध। यदा-कदा वहाँ हो आता हूँ तो तन-मन को तरोताजा करके लौट आता हूँ।

चलिए डॉ. साहब, मिट्टी से अब निर्माण की ओर चलते हैं। आपने साहित्य की लगभग हर विधा को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। आपको सबसे अधिक आनंद किस विधा के सृजन में प्राप्त हुआ है?

मैंने छांदस, अछांदस, गीत, गजल प्रबन्ध - सब लिखे हैं। मैंने शोध से लेकर समीक्षा तक और काव्य कथा से लेकर लघुकथा तक सब लिखा है। मेरा मन प्रबंध काव्य में जितना रमा है, उतना अन्य विधा में नहीं। चूँकि मेरे खंडकाव्यों, महाकाव्यों में कविता की सभी शैलियाँ, सभी उप-विधाएँ, सभी रीतियाँ और संधियाँ गूँथी हुई हैं, अत अलग से उनका अभाव जैसा नहीं लगता। वैसे मैंने कविता की सभी उपविधाओं पर स्वतंत्र रूप से भी खूब लिखा है, पर स्वांतः सुखाय और लोकहिताय की तृप्ति तो प्रबंध-चेतना से ही मिली है।

डॉ. साहब आपकी 'चंदन हो गया हूँ मैं', 'मैं दर्पण हूँ', 'ऋतुमती है प्यास' आदि में गीतों एवं गजलों की मधुरता, मादकता एवं सरलता पोर-पोर से अभिमंत्रित-सा करती है। उन गीतों में युवा हृदय की धड़कन है, रसवंती हवाओं की ताजगी है, रागात्मकता है, आपकी इस चिर नूतनता का क्या रहस्य है जरा खुल कर बतायें।

मधुजी, आपने ऐसी लोककथाएँ सुनी होंगी, जिसमें किसी सरोवर में डुबकी लगाकर जीर्ण-शीर्ण लोग जवान बन जाते हैं। ब्रह्मराक्षस, ब्रह्मऋषि, कोढ़ी कामदेव बन जाते हैं। मैं कविता में डूबकर लिखता हूँ। जिस पात्र का चित्रण करता हूँ या जिस पाठक के लिए लिखता हूँ उसमें स्वयं को डुबोकर लिखता हूँ। अतः हमेशा नया हो जाता हूँ। गीतों और गजलों में चंदनी सुवास और धड़कते दिलों की लय होती है। वैसे मैं नंदकिशोर हूँ, नंद बूढ़ा हो भी जाये, किशोर कभी बूढ़ा नहीं हो पायेगा। 'चिर नूतनता' के कुछ रहस्य और भी हैं, पर सब तो बताये नहीं जा सकते। (हँसते हुए)

आपने अब 'नंदकिशोर' की बात की है तो लगे हाथ यह भी बता दीजिए कि आपके 'नंदकिशोर' से सिर्फ 'किशोर' रह जाने के पीछे क्या रहस्य है। वैसे तो आप 'किशोरों' के भी किशोर हैं।

मधुजी, पिताजी ने मेरा नंदकिशोर रखा था। कविता ने अपना नाम चुन लिया। पहले मैं अपना नाम नंदकिशोर प्रभुलाल काबरा 'किशोर' लिखता था। फिर जैसे वृक्ष के पत्ते झड़ते हैं, वैसे मेरे नाम के सभी उपादान बिखरते रहे। अब नाम भी किशोर, उपनाम भी किशोर, स्वभाव भी किशोर और महाभाव भी किशोर। मैंने अपने एक दोहे में कहा है :

'मन दर्पण में झांक कर देख अरे, चित चोर।
तू भी नंदकिशोर हूँ, मैं भी नंदकिशोर ।।'

डॉ. साहब, आपकी नंदकिशोर से किशोर हर जाने की यात्रा पूरी हुई। अब यह बतायें कि किशोर की काव्ययात्रा के सहयात्री कौन रहे, यानी डॉ. किशोर काबरा के जीवन में किन-किन साहित्यकारों ने अमिट प्रभाव डाला?

मुझे अभावों ने ज्यादा सिखाया है मधुजी। विपत्तियों ने ज्यादा साथ दिया मेरा, इसलिए सच्चे साथी, सहयात्री तो मेरे आँसू हैं। मेरे मौन क्रंदन हैं। हाँ, श्री मदनलालजी जोशी जैसे गुरुजनों, श्री नागेश जी मेहता जैसी गुणीजनों और रामानुजदास मंत्री जैसे मेरे मित्रों ने हमेशा मुझे आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। डॉ. अंबाशंकर नागर जैसे पथ प्रदर्शकों ने भी मुझे सहारा दिया है। आचार्य रजनीश जी भी मेरे प्रेरणास्रोत रहे। मुझे अच्छे शिक्षक मिले हैं, अच्छे मित्र मिले हैं, अच्छे शिष्य मिले हैं। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, दिनकर, बच्चन आदि कवि मेरे आदर्श रहे हैं। फिर समय सबका गुरु है, सब कुछ सिखा देता है। साथ चलता भी है और साथ रुकता भी है। मैं भाग्यशाली हूँ। अच्छे परिजन, अच्छे प्रियजन मिले हैं मुझे।

'परिताप के पाँच क्षण' अद्भुत खंडकाव्य है। अंबा की व्यथा को आपने सचमुच नारी मन से देखा, परखा और भोगा है। इसलिए नारी कहीं न कहीं आपको प्रेरित करती रही है। इस अनुभूति का स्रोत कोई नारी है या नारी मन? कृपया इस पर प्रकाश डालें।

मधुजी, मेरे सभी प्रबंध-काव्यों में नारी पात्र केन्द्र में है। यह सही बात है, पर केवल उनकी ही मनोव्यथा या मनोराज्य का चित्रण करना मेरा लक्ष्य नहीं रहा है। 'उत्तर रामायण' में सीता के उदात्त चरित्र और निष्कलंक व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में राम के अनन्य विश्वास को मैंने चित्रित किया है। सीता निष्कासन ही दोनों के व्यक्तित्व की धवल रेखाओं को एक आकृति प्रदान करता है। 'उत्तर महाभारत' के पाँचों पाण्डव एवं द्रौपदी मेरे मित्र समान हैं। मैंने द्रौपदी को 'काम' का प्रतीक बनाया है जो हर व्यक्ति के मूलाधार में रहता है। इसी तरह 'धनुषभंग' और 'नरो वा कुंजरो वा' में क्रमशः सीता और द्रौपदी फिर से नये रूप ग्रहण करके उपस्थित हो जाती है। प्रत्येक प्रबंध काव्य कथ्य एवं शिल्प, प्रेरणा एवं परिणति की दृष्टि से स्वतंत्र, पर सब में पूर्वदीप्ति शैली है। संभवतः अपने ढ़ंग के ये अद्वितीय ग्रंथ हैं। हिन्दी जगत् में इनके कारण मुझे यश भी खूब मिलता है और संतोष भी।

आपने बहुत लिखा - बहुतों पर लिखा, पर जब आप पर शोध प्रबंध एवं समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी गयीं तो वह परम संतोष एवं उपलब्धि का क्षण होगा। उन क्षणों का आनंद एवं रोमांच कैसा रहा? कुछ बतायें।

मैंने शोधकार्य किया मधुजी, वहाँ तक तो ठीक है पर मुझ पर भी शोधकार्य होंगे - यह मेरे लिए कल्पनातीत था। पर शब्द का बीज व्यर्थ कभी नहीं जाता। वह देर से सही, अंकुरित होता है, पुष्पित, फलित होता है। सबसे पहले एम.फिल. कार्य, चैन्नई में 'नरो वा कुंजरो वा : परम्परा और युगबोध विषयक' हुआ। बहुत अच्छा कार्य किया सुश्री वैजयंती ने। फिर तो मराठवाड़ा वि.वि. से एक पीएच.डी. और हुई मेरे प्रबंध काव्यों के पात्रों की मनोवैज्ञानिकता को लेकर। अब तो सात शोधकार्य हो गये हैं। पाँच और हो रहे हैं। कई के शोध-प्रबंध छप भी गये हैं। इन क्षणों का आनंद एवं रोमांच इसी संतुष्टि में डूबा हुआ है कि मेरे शब्द व्यर्थ नहीं गये। उनका साधारणीकरण हो रहा है और लोक स्वीकृति मिल रही है- यही मेरे लिए रोमांच है, यही आनंद है।

सच में अपने ऊपर इतना लिखा पाकर आत्मा एक तृप्त हो ही जाती है, अच्छा, डॉ. साहब अब कुछ सम्मान एवं पुरस्कारों की बात करें। आप जैसे कलम के सिपाही का अनेक बार सम्मान हुआ है। मानद उपाधियाँ भी मिली हैं। प्रथम पुरस्कार की क्या अनुभूति रही?

मधुजी, पुरस्कार तो मुझे बचपन से ही मिले हैं। अतः कोई विशेष उत्तेजना बाद में कभी नहीं हुई। पुरस्कार या सम्मान के अवसर मिलने वाली राशि मुझे उतना आनंदित नहीं करती, जितना आनंदित पुरस्कार देने वाले व्यक्तियों की आँखों से बरसने वाली अहो भाव की निर्मल गंगाजली, पुरस्कार और सम्मान मेरी शक्ति तो बढ़ाते हैं, पर मुझे शक्ति का दुरूपयोग नहीं करने देते। ये प्रभु की असीम कृपा है मुझ पर।

आज के इन कठिन असाहित्यिक दौर में आपने वर्षों 'भाषा सेतु' पत्रिका का संपादन किया है। पत्रकारिता का कैसा अनुभव रहा?

'हिन्दी साहित्य परिषद्' की स्थापना के साथ ही त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन की परिकल्पना सबके मन में थी। मैंने 'भाषा सेतु' पत्रिका का संपादन का दायित्व अपने ऊपर लिया, क्योंकि मुझे अपने ऊपर विश्वास था। 18-18 घंटे काम करना पड़ा है। देश ही नहीं, विदेशांतर में 'भाषा सेतु' की स्तरीयता एवं गरिमा को लोग सराहने लगे। इससे और सब लाभ हुए, पर मेरी कविता को नुकसान हुआ। उन छह वर्षों में कोई बड़ा ग्रंथ भी नहीं आ पाया। 'उत्तर भागवत' महाकाव्य का कार्य बीच में रूक गया। आखिर पत्रिका के संपादन कार्य से मुक्ति लेनी पड़ी। इससे एक बात सीखी कि सृजन में संपादन अवरोध करता ही है।

एक ओर आपने पद्य की सारी विधाएँ समेटी हैं- मुक्तक से महाकाव्य तक। दूसरी ओर गद्य की समीक्षा, निबंध, शोध-प्रबंध, बाल-साहित्य, पाठ्यक्रम की पुस्तकें आदि-आदि। यह बतायें कि जीवन आपके लिए किस रूप में अधिक सार्थक एवं सजीव रहा है- गीतात्मक, चिंतनात्मक, कथात्मक या चित्रात्मक? आपने शब्द-चित्र आदि भी बनाये हैं। कैसा रहा जीवन आपके लिए?

मधुजी, मैंने जीवन को समग्रता में जिया है। इसीलिए लेखन की सभी विधाएँ आ गयी हैं। मैं प्रमुख रूप से कवि हूँ- प्रबंध चेतना वाला कवि और गौण रूप से गीतकार, गजलकार, मुक्तककार, सतसईकार। तीसरे स्तर पर मेरा समीक्षक, शोधवेत्ता और लघुकथाकार का रूप है। चौथे स्तर पर मेरा संपादक और अनुवादक वाला रूप है। पाँचवें स्तर पर मेरा बाल साहित्य और शब्द चित्र वाला, छठे स्तर पर पाठ्यपुस्तकों का लेखन, संपादन आदि है। अब आप समझ गयी होंगी कि कितना संतुलन साधना पड़ता है सर्जनात्मक जीवन में। गौण को भी निबाहना पड़ता है और महत्त्वपूर्ण को भी साधना पड़ता है। मैंने लिखा भी है-

गीत लिखे, गजलें लिखीं, लिखे छंद-स्वच्छंद।
जब मैंने खुद को लिखा, कलम हो गयी बंद।।

डॉ. साहब आपकी प्रारंभिक रचनाओं में सौन्दर्य-चेतना झलकती है, वहीं बाद की रचनाओं में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिंतन। अब यह बतायें कि इस पीछे आपके जीवन का कौन-सा दृष्टिकोण व्यक्ति हुआ है?

मधुजी, यह तो बीज और फल वाला न्याय है। आरंभ तो सब कवियों का सौन्दर्य-चेतना से ही होता है। सत्य, शिव और सुंदर में से कवि सुंदर से प्रारंभ करके सत्य तक पहुँचता है। सौन्दर्यपूर्ण सत्य ही शिवत्व के शिखर तक पहुँचता है। तीनों का समन्वय ही कवि की पूर्णता है। 'तितली के पंख' से 'उत्तर भागत' तक मेरी सृजन यात्रा शब्द से निःशब्द होने की ही यात्रा है। अभी वैखरी और मध्यमा है। संभवतः कल परा और पश्यंती भी आये, दर्शन एवं अध्यात्म को तो आना ही है।

यह सही है कि दर्शन एवं अध्यात्म कविता के अंतिम छोर हैं। लेकिन वहाँ तक कोई ही पहुँच पाते हैं। यूँ जीवन बड़ा कठिन है जीना, फिर भी मानव इससे ऊबा नहीं है। उसमें हर पल जिजीविषा रही है। आप अगले जन्म में फिर डॉ. किशोर काबरा बनना चाहेंगे या कुछ और?

मधुजी, कम-कम-कम इस जन्म का तो ठौर-ठिकाना सही कर लूँ। इस तरह कर लूँ कि अगला जन्म लेना ही न पड़े, पर नियति मेरे हाथ में नहीं है। उसका विधान मेरे हाथ में नहीं है। संभवतः फिर जन्म लेना ही पड़े। उस समय मैं 'नंदकिशोर' से यात्रा प्रारंभ न करके 'किशोरानंद' से शुरू करूँगा। आखिर मुझे कविता के माध्यम से भी परमात्मा तत्त्व को पाना है, उससे कम में काम नहीं चलेगा। यदि इस जन्म में मौन सध गया तो अगले जन्म में वह गहरा हो जायेगा। यदि इस जन्म में बोलना-लिखना बाकी है, तो उसे अगले जन्म में पूरा करना ही होगा, लेकिन करना है तो कविता के माध्यम से ही। कविता मेरा स्वभाव है। महाभाव के पहले मैं उससे मुक्त कैसे हो सकूँगा? मेरी काव्य साधना तब तक चलती रहेगी, जब तक पूर्णविराम न आ जाये। वैसे आजकल मैं 'उत्तर भागवत' लिख रहा हूँ। इसमें श्रीकृष्ण के उदात्त चरित्र को दर्शाते हुए द्वापर युग को आज के संदर्भ में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आज के युवासाहित्यकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे? वैसे तो डॉ. साहब, आपका संपूर्ण जीवन ही संदेश है- संघर्षों से न हारने का- फिर भी चाहती हूँ, आप कुछ हम सबके लिए कहें।

मधुजी, मैंने नवोदित कवियों के लिए एक प्रारंभिक संविधान बनाया है जिसके कुछ सूत्र हैं- जैसे क्या कविता लिखना आपके लिए हृदय की धड़कन जितना अनिवार्य कार्य है? क्या कविता को आप यश और अर्थ की बजाय आत्मानंद प्रदान करने वाली पूजा मानते हैं? छंद, लय, मात्रा, यति, गति की जानकारी एवं अछांदस की पहचान है आपको? क्या आपके लिए कविता लिखना फैशन नहीं है- पूजा है - या उपासना है? क्या कविता आपके लिए स्वयं को स्वयं में देखकर, स्वयं से स्वयं को अलग करने का योग है? ये सब हो तो कविता अवश्य करें। कविता सरस्वती की आत्मा है, उसके उपासक बनें।

डॉ. साहब, आपने जीवन और जगत के प्रति अपने विचारों से अवगत कराया। आपकी जगन्नियंता के प्रति असीम आस्था एवं विश्वास का मूल क्या है?

मैं जीवन और जगत् से जगन्नियंता को अलग नहीं कर सकता। तीनों एक दूसरे से घुले मिले हैं : चूँकि जीव को मैंने जगन्नियंता का वरदान माना है और जगत् को उसकी कृपा का प्रसाद तो इन तीनों के प्रति मेरी आस्था होनी ही चाहिए। मैं

आसन, प्राणायाम ध्यान करता हूँ, मैं प्राकृतिक चिकित्सा और योग में विश्वास रखता हूँ। मेरा खान-पान और जीवन क्रम संतुलित है। ये सब मेरे और उसके बीच एक सरल रेखा ही खींचते हैं। मेरी सब चक्र रेखाएँ समय और साधना ने पोंछ दी है। श्रद्धा और विश्वास को इससे अधिक और क्या चाहिए?

श्रद्धा और विश्वास जीवन को जीवंत बनाते हैं। इनका जीवन में समावेश अनिवार्य भी है और सार्थक भी। जीवन और जगत् अबूझ पहेली है। कवि मन उसको नये-नये रूपों में देखता रहा है। जीवन और जगत् और उनके सम्बन्धों को आप कोई नयी परिभाषा देना चाहेंगे? एक वाक्य में समेटना चाहें तो क्या होगी? चलते-चलते...

दो मुक्तकों में समेट रहा हूँ मधुजी, जीवन को, जगत् को, इन दोनों के सम्बन्धों को और उनसे मुक्त होने की विधा कोः

'विश्व के सम्बन्ध है शैवाल जैसे
चिपकते हर अंग पर, जंजाल जैसे।
मूर्ख उनको झटकता है, उलझता है,
चतुर उनसे सरक जाते व्याल जैसे।।'
'खेत श्रद्धा है, पसीने का उसे अमृत पिलाओ,
बीज है विश्वास, उसको खेत में जाकर जिलाओ।
जिंदगी की क्यारियों में फूल, फल, पत्ते सभी हैं,
स्वयं खाओ, किंतु उसके पूर्व औरों को खिलाओ।।'

डॉ. काबरा जी, आपके सागर की तरह विशाल एवं गहरे व्यक्तित्व को यूँ कुछ शब्दों में समेट लेना सहज नहीं है। फिर भी मैंने आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को कुछ पहलू छू भर लेने का यह एक छोटा-सा प्रयास किया है। आपके संपूर्ण सृजन को आत्मसात् करने के लिए समय एवं धैर्य अनिवार्य है। आपकी सारस्वत साधना को समझने के लिए साधना करनी होगी। वह सुअवसर फिर कभी मुझे प्राप्त होगा ऐसा मुझे विश्वास है। आपने अपना अमूल्य समय मुझे दिया है। आभारी हूँ।

अंत में कविवर पंत की इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा लेती हूँ-

'सुंदर हैं सुमन विहग सुंदर।
मानव तुम सबसे सुंदरतम।।'

प्रणाम!

प्रणाम मधुजी, अपने जीवन के इन पलों को आपके साथ बाँटकर मुझे भी आत्मिक प्रसन्नता हुई है। स

29, गोकुलधाम सोसायटी
चाँदखेड़ा, अहमदाबाद (गुजरात)-382424

सरोकार

सुदर्शना द्विवेदी

जन्म : 15 अप्रैल 1946 मेरठ (उ.प्र.)
शिक्षा : एम.ए.अंग्रेजी (आगरा विश्वविद्यालय)
अध्यापन : मेरठ और बरेली के महाविद्यालयों तथा एसएनडीटी विश्वविद्यालय में (कुल आठ वर्षों तक)
कार्यक्षेत्र : * विगत 40 वर्षों से पत्रकारिता में सक्रिय तथा इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप, प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया तथा टाइम्स ग्रुप में कार्य। * 'धर्मयुग' में सहायक संपादक तथा बाद में नवभारत टाइम्स में। * आलेख, फीचर्स, कवर स्टोरी, सामाजिक मामलों और महिलाओं से संबंधित लेखन। * नवभारत टाइम्स में स्तम्भ लेखन, आकाशवाणी, दूरदर्शन और जीटीवी पर भेंट वार्ताएं एवं वार्ताएं आदि। खट्टा-मीठा, डाकघर, अपना घर, सारे जहाँ से अच्छा, एक टुकड़ा चाँद का, द्रोपदी, आशा की किरण आदि धारावाहिकों का लेखन एवं कन्सेप्ट।
संप्रति : एक अंग्रेजी उपन्यास के लेखन में व्यस्त तथा एक विज्ञापन कंपनी 'द डार्क टॉवर' का संचालन
संपर्क : 301, अनमोल प्राइड, ओप्प पटेल ऑटो
ऑफिस - एसवी रोड, गोरेगॉव (वेस्ट)
मुम्बई- 400062

आत्मकथ्य

अपना काम मुझे कभी काम लगा ही नहीं

सुदर्शना द्विवेदी

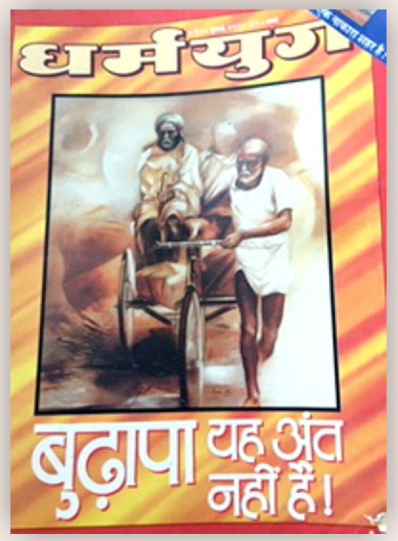

शब्द और उनसे सजी किताबें बचपन से मुझे खींचते रहे हैं।पढ़ना और लिखना मेरे लिए साँस लेने की तरह जरूरी है। और यह सब बिना किसी प्रयास के हुआ है।मछली पानी में जन्म लेती है और आँख खुलते ही तैरने लगती है।मेरी आँखें किताबों और पढ़ने के शौकीनों के बीच खुलीं और मैं पढ़ने लिखने लगी।कॉपी पर कलम रखती और लिखना शुरू।लिखने को पेशा बनाने का विचार बहुत बाद में आया,जब अध्यापन से मोहभंग हुआ। पर लिखना मेरे लिए हमेशा बहुत आसान ही नहीं,मजे की चीज रहा है - खासकर फीचर,लेख और कॉलम। कहानी जरूर मन में अरसे तक चलती रहती है और फिर अचानक एक दिन कागज पर शक्ल ले लेती है।पर जिस तरह बोलने के लिए कभी तैयारी या प्रयास नहीं करना पड़ता उसी तरह लिखने के लिए भी। इसीलिए अपना काम मुझे कभी काम लगा ही नहीं।

जीवन मुझे ईश्वर का सबसे सुंदर वरदान लगता है और लोग उसकी सबसे सुंदर कृति। मुझे लोग अच्छे लगते हैं, उनसे मिलना बातें करना अच्छा लगता है,उनका सुख- दुःख मुझे उद्वेलित करता है और हर उत्सव मुझे आनंद से भरता है। आयु का हर पड़ाव मुझे नए अनुभवों से समृद्ध करता गया है और मैंने उसका स्वागत खुले मन और खुले दिमाग से किया है। हर रिश्ता और हर परिचय मैंने भरपूर और पूरी ईमानदारी से जिया है,और जीवन में शामिल होनेवाली हर नयी चीज और स्थिति का स्वागत किया है। इसीलिए हर उम्र और बढ़ते हुए साल भी मुझे डराते नहीं,न ही कुछ नया करने से बरजते हैं और मेरे मित्रों के विशाल संसार में (जिसमें 70 से 24 साल तक के लोग शामिल हैं) लगातार इजाफा होता रहता है।निकलता कोई नहीं बस जुड़ते जाते हैं - कॉलेज से ले कर हर उस संस्थान के लोग,जहाँ मैंने काम किया या रही, मेरे सम्पर्क में हैं और यह मित्रों का अकूत खजाना मैं अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानती हूँ।

साहित्य हो या जीवन नकारात्मकता मुझे रास नहीं आती। बहुत कठिन परिस्थितियों में भी मेरा जीवन पर, मानवीयता पर,भलाई पर और ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास नहीं डगमगाया है। मेरा मानना है कि जीवन व्यक्ति को जांचता है। आप सोना हैं तो तेज आँच से भी तप कर खरे निकल आते हैं,कागज हैं तो वही आँच आपको भस्म कर देती है।

मैंने बहुत विषयों पर लिखा है पर मेरे मुख्य विषय सामाजिक सरोकार और नारी संबंधी रहे हैं। पर व्यवहार और विचार दोनों में नारी स्वातन्त्र्य की सबल पक्षधर होने पर भी मुझे पुरूष न तो खलनायक लगते हैं न ही स्त्री के हर कष्ट के लिए जिम्मेदार। मेरे जीवन में पिता,भाई,प्रेमी, पति,मित्र और पुत्र- जामाता के रूप में जो भी पुरूष आये सहृदय,संवेदनशील,और सभ्य थे। स्त्री - विरोध स्वयं स्त्रियां ही अधिक करती हैं और टीका- टिप्पणी भी।पुरूषों से तो अगर कभी सहयोग नहीं भी मिला, तो परेशानी भी नहीं हुई। इसीलिए नारी के हर कष्ट के लिए पुरूष को दोषी ठहराया जाना मुझे कभी रूचा नहीं। नकारात्मक सोच मुझे नहीं भाता।

जिंदगी ने बहुत सम्मान और प्यार दिया।शुक्रिया।स्त्री का जन्म मिला,बेहद अच्छा परिवार और परिवेश मिला,उसके लिए आभारी हूँ। जिंदगी अपनी शर्तों पर जी और जीवन भर अपने सारे निर्णय स्वयं लिये,इसका मुझे गर्व है। स

पहेली

सुदर्शना द्विवेदी

ड्राइंग रूम से सबके हंसने-चहकने की आवाजें थोड़ा कम हो रही हैं। उसने देखा घड़ी का कांटा चार की तरफ बढ़रहा है। शोर काफी कम होने लगा तो उसे लगा शायद इसी तरफ आ रहे हैं। अंदाजा ठीक ही था। दरवाजे पर हल्की थाप पड़ी तो आया ने दरवाजा खोला। किसी ने फुसफुसा कर पूछा, 'सो तो नहीं रही?' आया ने शायद 'नहीं' कहा होगा। आंखें मूंदे हुए ही उसने कमरे में आनेवालों की मौजूदगी महसूस की।

'दीदी?' नीति ने उसे हलके से छुआ। आंखें खोली तो सामने दोनों खड़े थे- केया नए-नए सुहाग में लिपटी खिली-खिली और खुशी छलकाता अबीर उसे हलके से थामे। उसकी आंखें खुलीं तो दोनों पैरों पर झुक गए।

'प्रणाम, बड़ी मम्मी।'

'जीते रहो, खुश रहो।' उसने उठने की हलकी सी कोशिश की तो आया ने पलंग का सिरहाना थोड़ा ऊंचा कर दिया। 'जा रहे हो'?

'जी बड़ी मम्मी। अभी निकलेंगे तो वक्त से पहुंच जाएंगे। वरना शाम का ट्रैफिक तो.....।'

'कब निकलोगे इटली के लिए?'

'परसों।'

'हैव अ नाइस टाइम।'

'थैंक्स बड़ी मम्मी। सी यू देन।' और फिर वही प्रणाम का सिलसिला, तीनों बाहर और दरवाजा फिर बंद। बाहर से काफी हंसी-ठहाकों की आवाजें आती रहीं। फिर कार चलने की आवाज से समझ आ गया कि सब चले गए।

तो केया भी अपने क्षर की हो गई। सौम्य, मिंनी और आरव अभी दो-चार दिन रूकेंगे, फिर वे भी वापस जाएंगे- कनाडा, अपने घर। और जिंदगी फिर से अपने ढर्रे पर लौट आएगी। वैसे उसकी जिंदगी तो बरसों से एक बंधे-बंधाए ढर्रे से चल रही है। दवा-वाटर बेड-करवटें-दर्द और फिजियोथेरेपी। इस कमरे के बाहर एक दुनिया है रंगों, खुशबुओं और आवाजोंवाली खुशनुमा रौशन, खूबसूरत दुनिया जिसकी बदलती तसवीरों की झलक कभी-कभार इस कमरे को भी रौशन कर जाती है। जैसे आज नई ब्याही केया और खुद पर इतराते उसके पति अबीर की झलक।

एक बात तो कहनी पड़ेगी। नीति ने कभी भी उसे शिकायत का मौका नहीं दिया। कितनी भी व्यस्त हो, सुबह-शाम उसका हाल और जरूरत पूछना नहीं भूलती। घर की खास खबरें देना भी। उसीसे तो उसे पता चलता रहा था- सौभ्य और केया के बचपन से अब तक का सफर, उनकी जिंदगी में जुड़ते लोग। और हां, राकेश से जुड़ी खबरें भी। बीच-बीच में राकेश को लाने और उससे बातें कराने का काम भी वह कर देती है। साथ ही यह जोड़ना भी नहीं भूलती कि राकेश तो हर वक्त उसकी फिक्र में रहता है, पर क्या करे वक्त ही नहीं मिलता। बिजनेस इतना फैल गया है और बेचारा एकदम अकेला है। बेचारा!

उसके होठों पर एक फीकी कड़वी मुसकान फैल जाती है। सचमुच कितना बेचारा है राकेश। दो प्यार करनेवाले, लायक बच्चे, हर तरफ से उसे समेटती, सहेजती, बचाती पत्नी और विरासत में मिला धन-वैभव। कितनी बेचारगी है उसके पास! और शायद इतना बेचारापन काफी नहीं था इसलिए एक खुद को उस पर न्योछावर बल्कि बरबाद करनेवाली बेवकूफ लड़की भी उसके हिस्से में डाल दी। कितने लोगों को नसीब होती होगी ऐसी पागल मोहब्बत जैसी इस बेचारे के हिस्से में आई। और उसके हिस्से में' तेज दर्द की लहर में हमेशा की तरह आज भी यह सवाल बह गया और एक नया सवाल सिर उठाने लगा। कितना दर्द सह सकता है इनसान का जिस्म? कोई सीमा है क्या? कब आती है बरदाश्त की हद? सपनों का तिलिस्म और बदन की हड्डियां टूटने के बाद भी वह क्या है जो इनसान को जिंदा रखता है और क्यों?

ये सवाल उसके जेहन में बहुत लंबे अरसे से तैर रहे हैं। शायद तब से, जब से उसकी मुलाकात इस राकेश से हुई है, जो उसका पति है और जिसकी कई शख्सियतों से वह वाकिफ है। एक यह जो आज नीति की कृपा से गाहे-बगाहे उसे नजर आ जाती है। पकड़ कर जबरदस्ती लाए गए, छूटने को छटपटाते, नजरें चुराते उसके कमरे में खड़े शख्स की, ड्राइंग रूम में जोर-जोर से ठहाके लगाते, बहस करते खुशदिल, गरमजोश राकेश की भी एक छवि है जो उसे देखे बगैर नजर आ जाती है। और एक उस शख्स की भी जो कभी उस पर जान छिड़कता था, जिसने उसके शादी से इनकार पर ब्लेड से अपनी कलाई काट ली थी। वह दिन तो उसे कभी भूलेगा नहीं, उसकी बरबादी की शुरूआत तो शायद उसी दिन हुई थी।

अच्छे से याद है कॉलेज से लौटते ही मम्मी ने उसकी क्लास ले ली थी।

'कौन है ये आवारा' किसके साथ घूमती है तू? यही है तेरी कोचिंग क्लास?' मम्मी बोल कर शांत नहीं हुई थी, कई चांटे भी जड़ दिए थे उसके गाल पर। वो तो मामी ने हाथ पकड़ कर शांत किया था, 'क्या करती हो जीजी। जवान लड़की पर ऐसे हाथ नहीं उठाया जाता।'

'तो क्या करूं?' इस बार मम्मी ने अपने सिर पर हुहत्थड़ दे मारा था। 'जहर खा लू' ? पता है किस लफंगे के साथ घूमते देखा है विजय ने इसे। वहां जोधपुरवालों के यहां खबर पहुंच गई तो हम कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। कौन जोड़ेगा फिर इससे रिश्ता'?

'अच्छा आप इधर बैठो, मैं बात करता हूं। सुधा, पानी पिलाओ जीजी को। तुम इधर आओ बेटा।' घर में पहुंचते ही मम्मी की बातों और मार से हतप्रभ खड़ी वह मामा के पुचकारने से जोर से रो पड़ी थी। राकेश के साथ सपनों के झूले पर ले रही पींगों के बाद यह कटु वास्तविकता उसे हिला गई थी।

मामा हमेशा से उसे बहुत प्यार करते हैं, मामी भी। वह उनकी भानजी कम दोस्त ज्यादा है। मम्मी की मिसकॉट में मामा-मामी भी शामिल हो गए हैं तो जरूर कुछ गंभीर बात है। और ये जोधपुरवाले कहां से टपक पड़े। परसों ही तो वह पापा को समझा चुकी है कि उसे अभी बहुत पढ़ना है, वह अभी शादी के झंझट में नहीं पड़ेगी। पापा राजी भी हो गए थे। राकेश ने उसे समझाया था कि अगर किसी तरह वह दो-तीन साल शादी रोक ले, तो वह तब तक अपने को ऐसी पोजीशन पर ले जाएगा कि शादी के लिए उसे कोई इनकार ही न कर पाए। पर ये अचानक विजय भैया ने पता नहीं कहां देख लिया और सारा भंडा ही फूट गया।

राकेश सारे कॉलेज में भले ही अपनी यूनियनबाजी और टकरावों के लिए मशहूर था, पर उसके सामने उसकी बड़ी-बड़ी आंखें एकदम कातर हो उठती थीं। लगता ही नहीं था कि उसका कॉलेज से रस्टिकेशन सिर्फ उसके अमीर बिजनेसमैन पिता के भारी चंदों के कारण रूका हुआ था, वरना हर मार-पीट, गुंडागर्दी में उसका नाम जरूर शामिल था। शुरू में वह भी उससे सहमत थी, पर हर बार उसने इतने सभ्य, शालीन और मधुर ढंग से उससे बातचीत की थी कि चाह कर भी वह उसे दुरदुरा नहीं पाई थी। शायद इसमें कहीं वह गर्व का भाव भी छिपा हो कि कॉलेज का सबसे दुर्दांत लड़का जिससे सब खौफ खाते हैं उसके सामने सदा विनम्र मुद्रा में बिछा हुआ ही प्रस्तुत होता है। नोट्स मांगने से शुरूआत हुई और कब वह उन कागजों के सहारे उसके दिल में उतर गया, पता ही नहीं चला। कभी यूनिवर्सिटी लॉन, कभी लोदी गार्डन, कभी हेबिटेट सेंटर तो कभी किसी रेस्टोरेंट के केबिन उनकी बढ़ती नजदीकियों के गवाह बनने लगे थे। उसे पता था राजपूती गर्व से उन्नत मस्तकवाले उसके पिता उसका रिश्ता जोधपुर के एक बेहद संभ्रांत खानदान में कर चुके हैं। अपनी इकलौती बेटी के लिए बहुत मेहनत से यह आईएएस हीरा खोजा था उन्होंने। 'यों तो घर में किसी तरह की कमी नहीं है, वो हाथ न भी हिलाएं तो भी सोने के झूले पर ही झूलता रहेगा, पर कलक्टर की शान ही अलग होती है।' रिश्ता पक्का करके आए पापा जब मम्मी को बता रहे थे तो उनकी सुदीर्घ मुसकान उनके रोम-रोम में व्याप्त खुशी और सुकून का वर्णन कर रही थी। बात थी भी ऐसी, बड़े खानदान का इकलौता वारिस, खूबसूरत, सच्चरित्र, होनहार। अपनी लाडली को ले कर जो सपने देखे थे, उन सबको सच करने की पात्रता थी उसमें। पर सपने देखने और सच होने में बड़ा फर्क होता है। एक आह ले कर उसने आया को इशारा किया करवट बदलवाने का। और बदलती करवट में आंख में झलकते नन्हें आंसू को कोरों में ही दफन कर दिया। उसी तरह जैसे उस जोधपुरवाले की छवि दिल में बसने से पहले ही उस दुःसाहसी राकेश ने मिटा डाली थी। पता नहीं कैसी ऊंची थी वे पींगें और कैसा तिलस्मी था वह हिंडोला कि वह राकेश के अलावा सब-कुछ भूल गई थी। उस दिन जब मजाक में उसने राकेश से अपने रिश्ते की बात कह दी थी तो पता नहीं कहां से ब्लेड निकाल कर उसने अपनी कलाई काट ली थी। किसी तरह खून बंद करने पर उसने बेहद संजीदगी से कहा था, 'ऐसी बात भी न करना कभी। मर जाऊंगा पर जीते जी तुम्हें किसी और की नहीं होने दूंगा।' उसकी आंखें भी भर आई थीं। राकेश के पट्टीवाले हाथ को सहलाते हुए उसने कहा था, 'मैं भी जान दे दूंगी, पर अब सिंदूर या तो तुम्हारे नाम का लगाऊंगी या मौत का।' आज भले ही यह जुमलेबाजी लगे या बेवकूफी, पर उस वक्त राकेश और प्यार में वफा से ऊपर कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। प्यार के पंखों पर उड़ती वह घर पहुंची थी जब मम्मी के चांटों ने उसका स्वागत किया।

फिर तो रोने-धोने, उसे घर में बंद करके कभी समझाने, कभी शर्मिंदा करने, कभी प्यार से, कभी डांट से, कभी खानदान तो कभी पापा के स्वास्थ्य की दुहाई दे कर उसे समझाने का सिलसिला शुरू हो गया था। पर राकेश की कलाई से बहते खून की याद ने उसे बेतरह ढीठ बना दिया था। मामा-मामी हमेशा उसका पक्ष लेते थे, पर इस बार वे भी पापा-मम्मी के साथ थे। मामा ने साफ कह दिया था, 'कोई ढंग का लड़का होता तो मैं खुद जीजी से बात कर लेता, मगर इस गुंडे के लिए, कभी नहीं।'

वह सोच ही रही थी कि किस तरह राकेश को संदेश भेजे कि वह उसे यहां से ले जाए कि पता चला, जोधपुरवाले आ रहे हैं सगाई की रस्म के लए। अगले महीने शादी है। उससे किसी ने पूछने की जरूरत नहीं समझी, जवाब सबको पता था। लेकिन मम्मी-पापा ने तय कर लिया था कि इस बेवकूफी से निकालने का यही बेहतरीन तरीका है। एक बार शादी हो गई तो अपने-आप पीछा छूट जाएगा उस गुंडे से। रो-धो कर सब लड़कियां अपने घर में बस ही जाती हैं। उस दिन सुबह से ही घर में गहमा-गहमी थी। वे लोग आ गए थे। मामी ने उसे सजा कर तैयार कर दिया था, वह ठगी सी अपने कमरे में बैठी थी। राकेश की उससे संपर्क करने की हर कोशिश घरवाले नाकाम कर चुके थे। फिर भी किसी तरह उसने उसे इतना संदेश जरूर भेज दिया था कि वह अगर आज उसे नहीं ले गया तो फिर कुछ नहीं हो पाएगा। मामी इतनी सतर्कता से उसकी देखभाल कर रही थीं कि खुद को किसी तरह का नुकसान पहुंचाना संभव ही नहीं था। पर इतना वह तय कर चुकी थी कि राकेश को धोखा वह किसी हाल में नहीं देगी। अवसर भी मिल गया। मम्मी ने जो अंगूठी मामी के पास रखवाई थी वह मिल नहीं रही थी। मामी उससे इतना कह कर कमरे से बाहर गईं कि अभी आ कर वे उसे नीचे ले जाएंगी जहां लड़केवाले उसकी प्रतीक्षा में हैं। मामी के जाते ही वह फुर्ती से उठी और जीना चढ़कर पांचवीं मंजिल पर पहुंच गई।

एक बार नीचे देखा जहां से राकेश कभी कभी उसे छोड़ने के बाद हादसे

से पहले खड़ा हो कर हाथ हिलाया करता था। चारों ओर देखा और राकेश के उसी हिलते हुए हाथ को देख कर उसने गली में छलांग लगा दी। हवा में उड़ता हुआ जिस्म तो उसे याद है पर जब आंख खुली तो वह न राकेश की बाहों में थी न ही स्वर्ग में। अस्पताल के बिस्तर पर लेटे हुए अपनी प्लास्टर में बंधी टांग और चोटें और डॉक्टरों-नर्सों के चेहरे दिख रहे थे। असहनीय दर्द और तकलीफ से उसकी सांस रूक रही थी। कराह सुन कर मामी अंदर आईं तो उसने आंखें मूंद लीं। डॉक्टर मम्मी से पूछ रही थी, 'क्या हुआ था' सुसाइड का केस लगता है।'

'नहीं जी, गिर पड़ी थी।'

'गिर पड़ी थी?' अत्यंत अविश्वास से डॉक्टर ने पूछा- 'पहाड़ से' कहां से गिर पड़ी थी? चोटें देखी हैं आपने इसकी? इसकी हालत का अंदाज है आपको?'

'डाक्टर साहब, जवान लड़की है। सिर्फ बीस साल की तो है।' मामी रोने लगीं। 'इसे कैसे भी ठीक कर दीजिए।'

'इसके पेरेंट्स कहां हैं? उन्हें बुलाइए।'

'जी'। मामी खामोश हो गईं। डॉक्टर इंजेक्शन दे कर बाहर गई तो उसने आंखें खोलीं। मामी रो रही थीं।

'ये तूने क्या कर डाला, लाडो।'

'जोधपुरवाले?'

'वे तो तभी उठ कर चले गए थे। पूरी कॉलोनी में शोर मच गया। तेरे मम्मी-पापा दोनों बेहोश पड़े हैं।' 'और मामा?' उन्हें संभाल रहे हैं। तूने तो अनर्थ कर डाला।

'मैंने तो पहले ही कहा था, आप लोग नहीं माने तो क्या करती?'

'पर अपना ये हाल... मामी फिर रोने लगीं। अब क्या होगा तेरा? कौन करेगा तुमसे शादी? तूने सोचा है? क्या कर लिया तूने!'

'वही करेगा, और कौन?'

'राकेश?'

'हां।'

'तुझे यकीन है?'

'हां, हां। वो मेरे बिना नहीं रह सकता। जियूंगी तो उसके लिए रहूंगी तो उसी की।' उसके जवाब में विश्वास भी था, दृढ़ता भी।

ये किताबी बातें हैं, बिट्टो। तू अब वो नहीं रही, जिसे वो चाहता था।

'मुझे नींद आ रही है, मामी। उसने आंखें मूंद ली थीं। अंधेरा अच्छा लग रहा था। तब कहां पता था कि कितनी गहरी अंधेरी खाई में गिर चुकी है वह, जहां से निकलने का कोई रास्ता नहीं।'

अस्पताल के वे लंबे दिन और मनहूस रातें उसने इसी उम्मीद के सहारे काटीं कि सब कुछ ठीक हो जाएगा। अब तो पापा-मम्मी मान ही जाएंगे। जोधपुरवाले का चक्कर भी खुद ही खत्म हो गया। अचरज यह होता था कि पापा-मम्मी में कोई भी अस्पताल उसे देखने नहीं आया। उनकी तो जान बसती थी उसमें। वे उसे इस हाल में कैसे छोड़ गए। तब क्या पता था कि मम्मी तो अब कभी मिलेंगी ही नहीं। उनकी बेहोशी टूटी ही नहीं। उसी में चली गईं। पापा का हार्ट अटैक भी मामी ने उससे छिपा लिया था। दो-दो धक्कों ने पापा को असमय ही बुढ़ा दिया था। और वह खुद? जब घाव भर जाने पर भी वह करवट बदलने में असमर्थ रही तो उसने डॉक्टर से बार-बार पूछना शुरू किया, 'मैं उठूंगी कब' हड्डी तो जुड़ गई, मैं चलूंगी कब?' बार-बार बहलाते डॉक्टर और मामी को अंततः उसे बताना ही पड़ा कि उसकी रीढ़की हड्डी टूट गई है और वह अब कभी नहीं चल पाएगी।

राकेश तो इस दौरान गायब ही रहा था। उसे लगा था घर पहुंचते ही भागा आएगा और उसे बांहों में जकड़ कर कहेगा, 'घबराती क्यों हो, मैं हूं न तुम्हारे पास। इस बिस्तर पर लेटे-लेटे ही तुम्हें दुनिया की सैर करा दूंगा।' शायद यही उम्मीद पापा को भी रही होगी। पर जब उसका आना तो दूर कोई संदेश भी नहीं आया तो हार कर पापा और मामा ही उसके पास गए। मम्मी के बिना पापा को लगने लगा था कि वे भी अब बहुत नहीं रहेंगे। उन जैसे गर्वीले व्यक्ति की मौत तो उसके स्कैंडल ने ही कर दी थी। शरीर था, जिसके लंबे समय साथ देने का उन्हें भरोसा नहीं था। ठीक-ठीक नहीं पता पर सुना था पापा ने उसके पैर पकड़ लिए और मामा ने उसके पिता के पैरों में सिर रख दिया तब एक रजिस्ट्रार को घर बुला कर शादी की खानापूरी हुई और उसका स्ट्रेचर विदाई की डोली बना। पापा ने तो वह साल भी पूरा नहीं किया। हां, मामा-मामी जब तक थे उसके पास आते रहते थे। वरना इस बड़े से घर का यह खूबसूरत, हवादार कमरा उसकी दुनिया है और उसकी आया उसकी संगिनी। और वो जिसके लिए उसने सब कुछ दांव पर लगा दिया था, दवाओं की गंध, कैथेटर की बू, फिनाइल, डेटोल और रूम फ्रेशनर की मिली-जुली गंध से कतराता बात भी करता, तो जैसे भागने को तत्पर।

तय तो शायद सबने शुरू में ही कर लिया होगा, पर पापा के रहने तक धीरज रखा। तब तक एक साल भी हो गया था। प्रस्ताव लेकर उसकी मम्मी ही आई थी, पर उसके पीछे राकेश की सहमति ही नहीं इच्छा की पदचाप भी उसने सुन ली थी। आश्चर्य नहीं हुआ था, एक साल में राकेश को काफी समझने लगी थी। पूछा जरूर था, 'पहली पत्नी के रहते दूसरी शादी तो जुर्म है न?' 'अगर तुम ऐतराज करो तो। पर तुम उसे जितना प्यार करती हो, जरूर चाहोगी कि वह आधा-अधूरा न रहे। और बच्चे होंगे तभी तो तुम भी मम्मी बनोगी- बड़ी मम्मी। बड़ी तो तुम ही रहोगी, राकेश के लिए, हमारे लिए, बच्चों के लिए, इस घर के लिए।' नहीं, अन्याय जैसा कुछ नहीं नहीं हुआ था उसके साथ। बड़े सलीके से, तमीज से, खूबसूरती से घर को घरवाली मिल गई थी। उसके नाम तो यह कमरा था ही। नीति अच्छी लड़की थी। सब अच्छे थे- मम्मी, पापा, बच्चे, दुनिया। बुरा तो सिर्फ उसका भाग्य था या वह क्षण जब उसने प्रेम को देह से परे एक अतींद्रिय शक्ति मान कर शून्य में छलांग लगा दी थी। खाली वक्त में बस यही सोचती रहती है, गलती किसकी थी, राकेश के झूठे वादों की, मेरे मूर्ख विश्वास की, क्षणिक आवेश की या प्यार में जान लेने-देनेवाले झूठे किस्सों की' बहुत वक्त है उसके पास, जब भी दर्द से फुरसत मिल जाए, इसी पहली को उलझाते-सुलझाते-डूबते अगली दर्द की लहर से मिलने निकल पड़ती है। स

सुदर्शना द्विवेदी : जैसा मैंने जाना

बतौर ट्रेनी मैं टाइम्स ऑफ इंडिया की प्रतिष्ठित पत्रिका धर्मयुग में नियुक्त हुयी। पत्रकारिता का संसार मेरे लिये नया और दुरुह था। धर्मयुग के शुरूआती दिनों में संपादक धर्मवीर भारती ने मुझे सुदर्शना जी के हाथों सौंपते हुए कहा था, इसे मांज दीजिये।

यह साल 1985 की बात है। सुदर्शना जी को धर्मयुग के दूसरे सहयोगी दीदी यानी भाभी कहते थे। मेरे लिये वो हमेशा सुदर्शना जी ही रहीं, मेरी फ्रेंड, फिलॉसफर और गाइड।

एक नई राह पर आपका पथ प्रदर्शक मजबूत और धाकड़ हो तो शिष्य का काम आसान हो जाता है। उन्होंने कभी मुझे एहसास नहीं होने दिया कि एक सीनियर दूसरे जूनियर को काम समझा रहा है उनके काम सिखाने का ढंग अलग था। वे सामने वाले के काम को तारीफ करती हुई धीरे से बता देती थीं कि इसे इस तरह न करके, इस तरह करो, तो शायद बेहतर हो। उन्होंने हमेशा इतना लंबा सिरा थमाया, और इतना उत्साहवर्धन किया कि काम कभी बोझ नहीं लगा। उन्होंने सिखाने के दौरान कुछ बढ़ा वाक्य दिये जो आज काम आ रहे हैं। अपना काम खुश होकर करो, एंजाय करो तभी काम के अच्छे परिणाम मिलेंगे। पत्रकारिता में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता। आपको खुद को साबित करने के लिये पुरुष सहकर्मी के बराबर नहीं उनसे ज्यादा काम करना होगा। हमेशा अपना विस्तार करते चलो, रूको मत, नई चीजें सीखने से कभी पीछे मत हटो।

आज अपनी प्रोफेशनल जिंदगी में उनके सिखाए सबक, ट्रेनिंग और टिप्स हर कदम पर मेरे काम आ रहे हैं।

जयंती रंगनाथन, संपादक 'नंदन'
कार्यकारी संपादक, हिन्दुस्तान

***

सुदर्शना का व्यक्तित्व मुझे स्फटिक सा पारदर्शी लगता है। मुम्बई में बीते पिछले चार दशकों में कुछ बेहद छोटे पल क्षणों का ही साथ रहा है, हमारा लेकिन हमेशा एक बहुत मुद्रिका अहसास के साथ विदा हुए हम..और ज्यादा की उम्मीद में।

उन्हें देखकर बिल्कुल नहीं लगता कि पत्रकारिता की, संपादन की इतनी लंबी पारी खेली है इन्होंने, जिंदगी के इतने बीहड़ों से गुजरी है, आँच में तपी है। चेहरा निर्मल हंसी से जगमग और बातें रुई सी हल्की, सहज उत्सुकता से ओतप्रोत।

किसी भी विषय पर उन्हें बोलते सुनना एक उपलब्धि है। विषय से जुड़ी सुथरी दृष्टि, गहरी पैठ और गज़ब का संतुलन। और कलम पर तो उनकी कहीं हाथ रखा ही नहीं जा सकता। जितनी प्रवाही उतनी ही संतुलित। बहुत पहले मेरे उपन्यास 'यामिनी कथा' की समीक्षा लिखी थी उन्होंने धर्मयुग में। मैं शीर्षक पर मरमिटी 'प्रदत्त जीवन के विरूद्ध' और, इधर मेरे उपन्यास 'कोन देश को वासी' वेणु की डायरी जैसा दबीज़ उपन्यास उन्होंने पूरी एक रात में समाप्त किया और चार पृष्ठों की तत्काल लिखी उनकी समीक्षा जब नवनीत में प्रकाशित हुई तो उसे पढ़कर कितने पाठकों ने पुस्तक मंगवाई।

सूर्यबाला, कथाकार,
व्यंग्यकार, मुम्बई

सुदर्शना से मेरा परिचय बहुत पुराना है। मैं अक्सर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जाया करती तो वहाँ धर्मयुग के दफ्तर में उन्हें देखा करती थी। वह बड़ी दादागिरी से कहा करती 'कहानी भेज दीजिये।' उसके संपादन काल में मेरी अंतिम कहानी 'नसीबा अली' थी जो पंजाब के दंगों की पृष्ठभूमि पर थी। उनसे कार्यक्रमों में भेंट होती रहती विशेषतः हर सर्दियों में 'पद्मा सचदेव' मुम्बई आती तो हम तीनों एक साथ बतियाने का मौका जरूर निकाल लेते हैं क्योंकि हम आपस में मित्र हैं। सुदर्शना बड़े प्रेमिल स्वभाव की बेहद अच्छी इंसान है। जिस वक्त 'धर्मयुग' बंद हो गया तब उसके लिये एक वर्ष तक जो कानूनी लड़ाई लड़ी उसमें वह बड़ी दृढ़ता से सबसे आगे और सबके साथ डटी रही। किसी तरह धर्मयुग वापस शुरू हो जाए इसके लिये उसने बहुत दौड़ भाग की और अन्ततः वे लोग मुकदमा जीत भी गए।

बहुत अच्छी पत्रकार होने के साथ कमाल की समीक्षक है। ऐसे व्यक्ति के साथ एक बार मैत्री हो जाए तो वह उम्र भर रहती है। वे स्वस्थ रहें, प्रसन्न रहें, गतिशील रहे यही कामना है।

अचला नागर,
लेखिका, पटकथा तथा संवाद लेखन
(फिल्म तथा टेलीविजन रेडियो कलाकार अनांउस्सर

लिखने से बड़ा कोई सुख नहीं

पत्रकार-स्तंभकार सुदर्शना द्विवेदी से निर्मला डोसी की अनौपचारिक बातचीत

भव्य व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करता उनका नाम पढ़ने-लिखने वालों के लिये अंजाना हो नहीं सकता। 'धर्मयुग' बंद हुए तीसरा दशक चल रहा है। प्रथम पृष्ठ पर सह-संपादक के बतौर 'सुदर्शना द्विवेदी' का नाम और उसकी जगह जस की तस स्मृतियों में सुरक्षित है। अमूमन अन्य किसी पत्रिका के साथ ऐसा हुआ नहीं है, पर 'धर्मयुग' का आभा मंडल ऐसा ही था। एक कार्यक्रम में गोरेगांव से गिरगांव तक उनके साथ जाने-आने का सुयोग मिला। खूब बातें हुयी। बड़े भारी नाम की दुर्लभ सहजता ने आश्वस्त कर दिया और अपने साक्षात्कारों की श्रृंखला में उन्हें शामिल करने का मन बना लिया। उन्हें पढ़ने तथा सुनने के अवसर मिल रहे थे और मैं जानना चाहती थी, उनकी जबरदस्त प्रखरता का स्रोत कहाँ है। अध्यापन, लेखन, पत्रकारिता, टीवी फिल्में, विज्ञापन अर्थात, लेखन का कोई क्षेत्र नहीं छूटा। 'इंडियन एक्सप्रेस', 'पीटीआई' तथा 'टाइम्स ऑफ इंडिया' जैसे देश के शीर्षस्थ प्रकाशन प्रतिष्ठानों में काम करने का लंबा अनुभव है उनके पास जाहिर है उनकी बौद्धिक संपदा में निरंतर श्रीवृद्धि होती गयी होगी। बाल ठाकरे, जस्टिस श्रीकृष्ण, आर.के.लक्ष्मण, मारियो मिरांडा, जावेद अख्तर, नौशाद, जगजीत सिंह, स्मिता पाटिल, संजीव कुमार, शाहरूख खान जैसे अपने अपने क्षेत्र की कद्दावर शख्सियतों के साक्षात्कार लिये उन्होंने....उनका साक्षात्कार मैं कर पाउँगी..सोच कर थोड़ी घबराहट तो हुयी थी, फिर सोचा मैं गल्तियाँ करूंगी तो उसे सुधारने वाला गुणी-गुण भी तो सामने होगा। इसी विश्वास की पतवार थामें पहुंच गयी उनके घर। लगभग साढ़े ३ घंटे हमारी बातें हुयी। रिकार्डर अपना काम न कर रहा होता, तो निश्चय ही मैं उनकी विमुग्ध करने वाली मधुर स्मिता तथा ओजस्वी आवाज के सम्मोहन में ही फंस कर रह जाती। बहरहाल उस लंबी बातचीत को पाठकों के साथ बाँटना जरूरी है।

बात जन्म तथा बचपन से शुरू करते हैं ?

मेरा जन्म सन 46 में मेरठ में हुआ। पिताजी कॉलेज में फिजिक्स के लेक्चरर थे, माँ गृहणी। मां व पिताजी की आयु में 12 वर्ष का अंतर था। पिता मुज्जफरसुर जिले से और माँ कुरुक्षेत्र से थीं। पिता एमएससी थे, जबकि माँ सिर्फ 5-6 दर्जे तक पढ़ी थीं। शादी हुयी, तब वे 14-15 वर्ष की बहुत सुंदर युवती थी।

मैंने अपने जीवन में पिताजी जैसा विलक्षण व्यक्ति आज तक नहीं देखा। वे अपने माता-पिता की चौदह संतानों में एक मात्र जीवित बची संतान थे। बारह वर्ष के हुए, तभी उनकी शादी तय कर दी गयी, तो वे घर से भाग कर, मेरठ अपनी ननिहाल पहुंच गए, क्योंकि वे आगे पढ़ना चाहते थे। उनके नानाजी ने कहा कि रहने व खाने की व्यवस्था तो हो जाएगी, पर पढ़ाई का खर्च उठाने का उनका सामर्थ्य नहीं है। पिताजी बोले कि वह व्यवस्था वे स्वयं कर लेंगे। उसी छोटी उम्र से ही उन्होंने अनेक तरह के काम किये, बाद में ट्यूशनें पढ़ाकर अपनी पढ़ाई जारी रखी।

बारह वर्ष का बच्चा ज़िद व नादानी में घर से भाग गया। घर वालों ने उन्हें वापस लाने की चेष्टा नहीं की ?

की थी ना। मेरे दादाजी उन्हें लेने आये तो उन्होंने जाने से इंकार कर दिया। गुस्से में दादाजी बोले कि 'यदि तू मेरे साथ नहीं जाएगा तो मैं अपनी संपत्ति का एक पैसा भी तुम्हें नहीं दूँगा।' सचमुच पिताजी ने उनसे एक पैसा भी नहीं लिया। जगह-ज़मीन, जेवर सब रिश्तेदारों में बंट गये। जैसे ही पिताजी की नौकरी लगी, वे सबसे पहले खुद जाकर दादाजी को लाए तथा जीवन पर्यन्त उन्हें अपने साथ रखा। सच कहूँ तो उन्होंने सिर्फ पढ़ाई नहीं की थी, खुद को शिक्षित भी किया था। जिद.के पक्के थे। आदमी तो साइंस के थे, पर उन्होंने हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू तीनों में एमए किया। माँ की सारी पढ़ाई शादी के बाद हुयी। उन्होंने भी पंजाब, यूनिवर्सिटी से बीए किया था।

आपके यहाँ शिक्षा का वातावरण शुरू से ही था ?

हाँ, हमारे माता-पिता ने अपनी सभी छः संतानों की शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया। सभी ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके ऊँची नौकरियाँ की। हमारे यहाँ लायब्रेरी की तरह सारी पत्रिकाएँ आती थी। हिन्दी, अंग्रेजी तथा उर्दू के अखबार आते थे।

कपड़े हमारे पास ज्यादा नहीं होते थे। चार जोड़ी घर के तथा दो जोड़ी बाहर पहनने वाले, पर भैंसें हमारे तीन बंधी थी। भरपूर दूध, दही, मखखन हुआ करता था। मेवे बोरे भर-भर कर आते और फल इतने, जैसे घर का बगान हो। पिताजी कहा करते कि बच्चों को भरपूर पौष्टिक खाना और शिक्षा बचपन से ही मिलनी चाहिये। शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों जरूरी है। हर दिन खाने के बाद, बड़ी बहन एक उपन्यास पढ़ती और हम सब बैठकर सुनते। 'रंगभूमि', 'गोदान, 'बूँद और समुद्र' या कोई भी हो सकती थी। इसी बीच पिताजी बाहर से आते तो किसी से कुछ भी पूछ लिया करते। सही बताने वाले को शाबासी मिलती, जो नहीं बता पाता, उसे समझाते, शब्दों का सही उच्चारण करवाते, उनके हिज्ज़े करके बताते। मेरे जन्म के बाद वे डिपार्टमेंट के हेड होकर चंदौसी चले आए थे। मेरी शिक्षा चंदौसी में हुयी थी। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि मैंने सीधा छठवीं क्लास में स्कूल जाना शुरू किया था, उससे पहले की पढ़ाई सारी घर में हुयी।

ऐसा क्यों....?

पिताजी वहाँ के स्कूलों की पढ़ाई से खुश नहीं थे। इसलिये घर में पढ़ाते। और मजे की बात यह कि मैं छोटी सी उम्र में दीमक की तरह पुस्तकें पढ़ती चली जाती। घर में जितनी भी किताबें थी, सब पढ़डाली और बार-बार पिताजी के आगे खड़ी हो जाती कि मुझे किताब चाहिये।

सुदर्शनाजी से बातचीत करती हुई निर्मला डोसी।

उस उम्र में सब समझ आता था ?

अरे नहीं, समझ आए, न आए, किन्तु पढ़ना मेरा शौक था, जो लत में बदल गया था। अंततः पिताजी मुझे अपनी स्कूल की लायब्रेरी में ले गए। मैं इतनी खुश जैसे खजाना मिल गया हो। वहां से भी थैले भर-भर कर किताबें घर ले आती और बड़े से घर के किसी कौने में छुपकर पढ़ती रहती। माँ बच्चों व गृहस्थी में इतनी व्यस्त थी कि उन्हें पता तक नहीं लगता कि मैं हूँ कहाँ? यह सिलसिला बंद हुआ, जब इसका असर मेरी आँखों पर आ गया। अलीगढ़ले जाकर आँखों का मुआयना हुआ और चश्मा लग गया। सजा यह मिली की लायब्रेरी से किताबें मिलनी बंद हो गयी। पिताजी ने उन्हें मना कर दिया।

ओह....तब तो आपको बहुत बुरा लगा होगा?

हाँ लगा तो था पर मैंने भी रास्ता निकाल लिया। हम कॉलेज के केम्पस में ही तो रहते थे सो मैं सुबह नहा-धोकर लायब्रेरी में जाकर शाम बंद होने तक बैठी मजे से पढ़ा करती।

स्कूल जाने से पहले की बात है यह ?

हाँ बिल्कुल...उन किताबों को पढ़- पढ़कर मेरी प्राथमिक पढ़ाई हुयी। किताबें किसी भी विषय की हो सकती थी अर्थात यूँ समझें कि मुझे हर वक्त कुछ पढ़ने को चाहिये होता था।

विधिवत शिक्षा कब शुरू हुयी?

नौ-दस वर्ष की उम्र में छठवीं में स्कूल जाने लगी। हाइस्कूल मैंने प्रायवेट किया। बाद में मैंने अंग्रेजी, हिन्दी तथा डबल म्युजिक लेकर इंटरमीडियेट किया। डबल म्युजिक अर्थात इंस्टुमेन्टल तथा वोकल। बी.ए., एम.ए. अंग्रेजी में किया, एम.ए.आगरा से किया था।

जॉब पहला कहाँ शुरू किया ?

उस वक्त आगरा से निकले एम.ए. के दो टॉपर को ही जॉब मिले। मेरठ के डी.एन. कॉलेज में वार्डन चाहिये थी। लड़कों का कॉलेज था। वहाँ अंग्रेजी लिटरेचर नहीं था। मेरी रूची तो पढ़ाने में ज्यादा थी, पर वार्डन का पहला जॉब मैंने ले लिया। बाद में उत्तरप्रदेश के सबसे बड़े बरेली कॉलेज में पढ़ाया। मैं पहली लेडी लेक्चरर थी। मुझसे पूछा भी गया कि बच्चे बहुत शैतान हैं उसे कंट्रोल कैसे करेंगी?

आपने क्या कहा ?

मेरा मानना है कि टीचर अच्छा हो, तो सब सही हो जाता है और सचमुच मेरे विद्यार्थियों ने मुझे बहुत प्रेम दिया, मान सम्मान दिया। आज भी देते हैं। गुरु पूर्णिमा पर मिलते हैं, संदेश आते हैं। जबकि स्वयं मैं अपने बचपन में बेहद शैतान रही और अपनी माँ से बहुत पिटी हूं पर मैंने अपने विद्यार्थी पर कभी हाथ नहीं उठाया।

क्या बात कह रही है माँ से बहुत पिटायी हुयी?

मुझसे बड़े दोनों भाई-बहन बहुत आज्ञाकारी शांत जबकि मैं पलट कर जवाब देने वाली। माँ रोज मारते वक्त कहती कि मैं ऐसी क्यों हूँ। अन्याय मुझसे बर्दास्त नहीं होता, और चुप मैं रह नहीं सकती थी, तो पिटना तो लाजमी था।

तीन भाई बहन आपसे छोटे हैं उनके साथ ?

बड़े मुझे मारते थे और छोटों पर मैंने कभी हाथ नहीं उठाया बल्कि हम चारों ने मिलकर एक संगठन बना लिया, और एकजुट होकर अपनी मांगे मनवा लिया करते। वह प्रेम हम लोगों के बीच आज भी कायम है।

हाँ तो बात अध्यापन की हो रही थी...?

67 में मैंने एम.ए.किया 69 तक मेरठ में और 69 से बरेली में पढ़ाया?

आगरा में पढ़ाई के वक्त और बाद में अध्यापन के लिये अकेले रहना हुआ ?

हाँ यह मेरे माता-पिता का विश्वास ही था मुझ पर कि उस कच्ची उम्र में पढ़ने व नौकरी करने के लिये घर लेकर अकेली रह सकूँ। शादी के बाद मुम्बई आकर एस.एन.डी.टी. में भी पढ़ाया था बच्चों को।

अब अपनी शादी के बारे में बताएं ?

देखिये मैं शादी करने के सख्त खिलाफ थी। मुझे सिर्फ पढ़ना था। मेरे दोस्त के.के.कपूर ने मुझे एक दिन कहा कि 'धर्मयुग' में काम करने वाला सतीश वर्मा उसका दोस्त है। वह भी मेरठ का ही है, चूँकि मैं 'धर्मयुग' की प्रशंसक थी इसलिये 'धर्मयुग' पर बात हो रही थी, यह कहा कपूर ने, तो मैंने उससे कह दिया कभी मिलवाना अपने दोस्त से। कई दिनों बाद जब मैं बहन के देवर की शादी में दिल्ली जा रही थी दो दिन के लिये, तो स्टेशन पर कपूर मिला। उसने बताया कि सतीश को छोड़ने आया है, वह भी उसी ट्रेन से दिल्ली जा रहा है, और एक युवक से परिचय करवाया। हम ट्रेन में चढ़गए क्योंकि समय हो गया था ट्रेन का।

वाह...यह तो फिल्मों वाली कहानी बन गयी ?

अरे....हाँ आगे तो और भी मजेदार किस्सा हो गया। आपको मालूम हो शायद कि उस वक्त 8 सीट हर कूपे में महिलाओं के लिये आरक्षित होती थी। 6 अंदर के दिन में और दो उसके सामने । सीट नं.8 अर्थात बाहर की नीचे की सीट मेरी थी। मैं मजे से दोनों खिड़कियाँ खोलकर अपनी किताब निकालकर बैठी ही थी कि टीटीआई महोदय आये और कहने लगे, आप अंदर कूपे में चली जाएँ वहाँ सीट खाली है 'सेफ' रहेंगी। मैंने कहा - मैं यहीं सेफ हूँ और कहीं नहीं जाऊँगी। वे जोर से बोले तो मैंने उससे ज्यादा जोर से जवाब भी दिया। मुझे नहीं पता था कि उसी कूपे में सतीश ने सब कुछ सुना देखा। बहरहाल थोड़ी देर के बाद वह आया और बोला- 'क्या मैं कुछ देर आपके पास बैठ कर बात कर सकता हूँ' मैं एक तरफ सरक गयी, पूरी सीट पड़ी थी खाली मुझे क्या एतराज हो सकता था, क्योंकि उससे औपचारिक परिचय तो कपूर ने करवा ही दिया था।

फिर....फिर क्या हुआ ?

फिर हुयी पूरी रात बातें और बातें...। देश-दुनिया की, समाज की, पर्यावरण की यकीन मानें, हम रातभर बातें करते रहें कोई विषय नहीं छोड़ा...। तभी मुझे उसने बताया कि 'वह कल बच्चन जी, से मिलने जा रहा है मैं चाहूँ तो चल सकती हूँ। स्टेशन से घर और मैंने जिज्जी को बताया कि कल मुझे बच्चनजी से मिलने जाना है, उन्होंने निर्धारित स्थान पर मुझे भेजने की व्यवस्था कर दी, लौटते वक्त सतीश मुझे जीज्जी के यहाँ छोड़ के गया। शादी के बाद मैं आगरा चली आयी।

फिर...बात किस तरह आगे बढ़ी...?

कपूर ने कॉलेज में पूछा कि क्या बातें हुयी मैंने कहा खूब बातें हुयी। कभी घर लाओ उसे पिताजी से मिलवाओ, उन्हें अच्छे बातें करने वाले बहुत पसंद आते थे। इसी बीच ब्रज की रासलीला पर किसी असाइनमेंट के सिलसिले में वो आगरा आया तब भी हम मिले।

आपने कहा पिताजी से मिलवाओ अर्थात....?

नहीं, आप सोच रही हैं वैसा कुछ नहीं था। हमारे घर तो साहित्यकारों का, पढ़ने-लिखने वालों का आना-जाना लगा ही रहता था। हाँ कपूर ने तब जरूर मुझे बताया कि 'वो मुझसे शादी करना चाहता है।' जबकि मैं शादी के खिलाफ थी। उसने चिट्ठी लिखने की इज़ाजत मांगी तो मैंने कहा ठीक है। इस तरह हमारे बीच चिट्ठी-पत्री का सिलसिला शुरू हो गया। उसने अपने मन की बात भी बतायी। उसके घर वाले कायस्थ तथा उनके यहाँ बड़ी ताम-झाम दहेज वगैरा चलता था। जबकि मैं तो शादी में 50 से ज्यादा लोगों के आने के भी खिलाफ ही थी।

आपके घर वाले तैयार थे ?
हाँ जब वो पिताजी से मिला, इससे पहले मेरे बड़े भाई भी मुम्बई आकर उससे मिल कर गए, उन्हें यह बहुत पसंद आया क्योंकि पिताजी बातों के शौकीन उस पर सतीश भी बड़ी मजेदार बाते करता था। हाँ, तब मैंने यह ऐलान जरूर कर दिया था कि मेरे आदर्शों के अनुसार शादी होती है तो ठीक अन्यथा में किसी से शादी करूँगी नहीं, क्योंकि शादी मेरे एजेंडे में कभी थी ही नहीं। पिताजी ने कहा कास्ट-वास्ट की बातें छोड़ो। अब मेरी बात सुनकर सब चौंके। हमारे घर में सतीश को भी उतना ही मान-सम्मान मिलना चाहिये, जो मेरे पिताजी को मिलता है।

भई कमाल है, आपने कहां तक सोच लिया था?
सोचना पड़ता है और हां सतीश के सामने भी मैंने कुछ शर्तें रखी, वो बताना तो भूल ही गयी। सबसे बड़ी अड़चन तो यही थी कि सतीश अमिश था। और मैं कट्टर निरामिश। इस पर तो वो पहले ही सहमत हो गया था कि वो छोड़ देगा और दूसरी बात सुनकर आप हँसेंगी...वो यह कि जब भी मेरा अपने मायके आने का मन होगा...तुम बिना कुछ पूछे टिकट मेरे हाथ में लाकर रख दोगे।

और उन्होंने मानी ?
बिल्कुल मानी सभी शर्तें, बल्कि सहर्ष मानी। निभायी भी। सच मानों निर्मला जी! प्यार तो दंपत्तियों के बीच सबमें होता है, लेकिन सतीश ने मुझे जो सम्मान दिया, सखा भाव रखा, वह दुर्लभ है। हमारा साथ सिर्फ सात वर्ष का ही रहा मगर उन सात वर्षों के दिव्य प्रेम के सहारे मैंने अपने बाद का पूरा जीवन काट लिया।

ओह...इतनी छोटी उम्र में घटी वह दुर्घटना तो याद है हमें भी...क्योंकि सतीश जी 'धर्मयुग' के जाने-माने पत्रकार थे, और हम उसके नियमित पाठक।
हाँ छोटे-छोटे दो बच्चे...। मैं तो टूट कर बिखर ही गयी थी, परन्तु उस वक्त मेरे व सतीश के दोस्तों ने मुझे बहुत संभाला, सहारा दिया जिसे मैं जीवन पर्यन्त भूल नहीं सकती। वहीं मेरी अनमोल पूंजी है। विश्वनाथ सचदेव-वीणा भाभी, यज्ञ शर्मा, सुधार भाभी, गणेश शर्माजी, उषा भाभी और मेरे भाई-बहन अर्थात कहर की घड़ी तो टूटी थी किन्तु हमें उठ खड़े होने में इन लोगों ने बहुत मदद की। रिलायंस में थे एक मोदी जी, उन्होंने व उनकी पत्नी ने भी सहारा दिया।।

आपका क्षेत्र तो अध्यापन था, आप पत्रकारिता की तरफ कब मुड़ी और क्यों ?
शादी के बाद मुम्बई में भी मैंने अध्यापन जारी रखा था। बच्चों के होने के बाद उससे अवकाश लिया था। यूँ देखें तो मेरे लिये वह आसान भी था।

आपके लिये वह 'कंफर्ट जोन' था, जिसकी उस वक्त जरूरत भी थी?
मैं दूसरी तरह से सोचती थी। दरअसल 'पढ़ाना' मेरे लिये आसान काम था, किन्तु मैं ऐसा काम करना चाहती थी जिसमें खुद को पूरी तरह से झोंक दूँ, ताकि मुझे सोचने का समय ही न मिले। भारती जी के चहेते थे सतीश, तो उन्होंने मुझे संदेश भी भेजा कि 'मैं चाहूँ तो मिट्ठीबाई कॉलेज' में पढ़ा सकती हूँ पर मैंने इंकार कर दिया।

इतने अच्छे जॉब को उस आड़े वक्त में न लेना...?
हाँ सभी मुझे यही कह रहे थे, कि यह मेरा पागलपन है। अन्ततः मेरे सभी दोस्तों ने कहा कि 'जो मेरा मन करता है मैं वही करूँ।'

पत्रकारिता कहाँ से शुरू की ?
इंडियन एक्सप्रेस वाले 'हिन्दी एक्सप्रेस' नाम की पत्रिका निकालने वाले थे, शरद जोशी संपादक थे। रश्मि राजदान तथा एक प्रकाश पुरोहित तथा मैं हम तीन लोग थे उसमें। वह पत्रिका जल्दी ही बंद हो गयी, क्योंकि मराठी विभाग सहयोग नहीं कर रहा था। हम लोगों की मेहनत से किसी तरह चल रही थी। 'शरद जी' भी बहुत खुश नहीं थे उससे। जिस दिन बंद हुयी शरद जी बहुत खुश हुए तथा 'हम तीनों को गेलार्ड में पार्टी दी।

अच्छा...यह तो ऐसा हुआ जैसे 'जान बची'
बिल्कुल यही हुआ। दरअसल उस पत्रिका के कारण वे बहुत तनाव में रहने लगे थे। उनकी रचनात्मकता घुट रही थी। इसलिये खुश हो गये और उसी वक्त उनके पास एक प्रोड्यूसर चैक लेकर भी आ गया। मैंने अपनी आँखों से देखा था कि कई लोग उनके तथा भारती जी के बीच गलतफहमियाँ पैदा करने में लगे थे, जबकि वे दोनों बहुत गहरे मित्र थे। बाद में मैं इंडियन एक्सप्रेस में आ गयी थी।

आपकी पढ़ाई व अध्यापन तो अंग्रेजी में हुआ जबकि पत्रकारिता आपने हिन्दी में करना चाही थी, ऐसा क्यों ?
क्योंकि सतीश हिन्दी के पत्रकार थे, हिन्दी मुझे प्रिय है। इंडियन एक्सप्रेस में अंग्रेजी में काम करना था। जबकि मुझे हिन्दी में करना है, यह सोचकर मैं पीटीआई में चली गयी। जहाँ नारायण दत्त जी थे और दूसरे लोग तथा माहौल बहुत अच्छा था। मैनेजमेंट हर व्यक्ति को सम्मान देता था। मैं वहाँ खुश थी, तभी भारती जी का बुलावा आया एक दिन ?

अच्छा....वो किसलिये ?
मेरे मन में भी यही प्रश्न था। मिलने गयी तो बोले कि 'यहाँ आ जाओ।' मैंने तुरंत कहा 'भारती जी, यहां तो मैं चार साल पहले भी आ सकती थी तब तो आपने नहीं बुलाया। वे बोले- सुदर्शना! हम तुम्हारे साथ रूई में रखे अंगूर की तरह ट्रीट नहीं करना चाहते थे। चार साल पहले बुलाते, तो सभी को यही लगता कि सतीश की पत्नी है इसलिये इन्हें रख लिया है। इन चार वर्षों में तुम दो बहुत बढ़िया जगह काम करके यह प्रमाणित कर चुकी हो कि 'तुम सुदर्शना द्विवेदी हो।' तुम्हारी अपनी काबिलियत है। इसलिये चार इंक्रिमेन्ट देकर हम तुम्हें शान से बुला रहे हैं। यह जवाब मुझे संतुष्ट करने वाला था, पर पीटीआई में उस वक्त हर व्यक्ति टाइम्स के लिये कहता था कि वहाँ के हालात अच्छे नहीं है। आए दिन हड़तालें होती है आदि आदि...। मेरे लिये उस जगह काम करने का आकर्षण दूसरा था। 'धर्मयुग' का अपना आकर्षण तो था ही, पर सतीश ने वहाँ काम किया था उसी जगह उसी माहौल में मुझे बैठने का मौका मिल रहा था मैं उसे खोना नहीं चाहती थी।

दिल और दिमाग के बीच जंग जैसी बात हुयी ?
सही समझा आपने। पीटीआई के नारायणदत्त जी ने मुझे बहुत प्यार से बड़े भाई की तरह काम सिखाया था। हालांकि काम व अनुशासन के प्रति बेहद समर्पित व्यक्ति के साथ काम करना उतना आसान भी नहीं होता। वहाँ तीन वर्ष काम करने का अर्थ 30 वर्ष काम करना था। परन्तु अपनत्व देकर अनुशासित काम करवाना उन्हें खूब आता था। उन्हें छोड़ना बड़ी हिम्मत जुटाने जैसा था। वे मेरे मन को भी बखूबी समझते थे, इसलिये स्वयं जनरल मैनेजर से जाकर बोले- उसे जाने दें, क्योंकि धर्मयुग उसके सिस्टम में रचा-बसा है। उसे हम चाह कर भी निकाल नहीं सकते। वो जाएगी। इस तरह मैं धर्मयुग में आयी। वहाँ जितना भी समय बीता बहुत अच्छा बीता।

वहाँ का माहौल कैसा लगा ?
देखिये, मेरे कार्यकाल में धर्मयुग के तीन संपादक रहे। पहले भारती जी थे फिर गणेश मंत्री हुए, बाद में विश्वनाथ सचदेव हुए। तीनों ही बहुत सज्जन व्यक्ति रहे, जिनके साथ मेरा कार्य व्यवहार संतोषजनक रहा। कभी कोई शिकायत का अवसर नहीं आया। प्रोत्साहन मिला, सम्मान मिला तथा बिना किसी सिफारिश के लगातार मेरे प्रमोशन होते गए। धर्मयुग के बंद होने के दिन तक, मैं सहायक संपादक थी और यह पोस्ट स्वयं मैनेजमेंट ने मुझे दी थी।

पत्रकारिता के तीन बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों में काम करने के अवसर मिले, पहले इंडियन एक्सप्रेस ग्रूप, फिर प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई) और बाद में टाइम्स ग्रूप। मूलतः माहौल में क्या फर्क लगा ?
'एक्सप्रेस' उस वक्त रामनाथ गोयनका वाला एक्सप्रेस था। बेहद प्रखर, किसी का दबाव नहीं सहता था, जबकि टाइम्स ग्रूप ट्रांजेक्शन के फेज़ में था। सतीश के सामने वाला 'रमा जैन, शांति प्रसाद जैन वाला टाइम्स ग्रूप नहीं था। यह 'अशोक जैन' वाला टाइम्स ग्रूप था जहाँ 'समीर जैन' की एंट्री भी हो रही थी। मैंने दोनों ही जगह का वह पूरा समय देखा था। दोनों में बहुत अंतर भी था। गोयनका जी आ जाते ऑफिस में और शरद जोशी नहीं आए हुए होते, तो वे हमें ऊपर बुला लेते थे क्योंकि वे अपने हर पत्र-पत्रिका में अपना दखल रखते थे। मुझे नहीं लगता कि अब एक्सप्रेस वैसा बचा है। यूँ देखें तो काम करने की स्वतंत्रता जैसी पीटीआई में थी वैसी कहीं नहीं मिली। 'आजादी का आनंद' लिखने का सुख वहाँ सबको था। उनका काम सही समय पर करके फिर हम कहीं भी और कभी भी जा सकते थे। टाइम्स में खुद भारती जी ठीक 9.30 पर पहुंचते और ठीक 5 बजे उठ कर निकल जाते। यही नियम सबके लिये था। इस बीच इधर-उधर घूमना, गपशप करना या फिर 'धर्मयुग' का इस्तेमाल अपने आगे बढ़ने के लिये करना वे कतई बर्दाश्त नहीं करते थे। अगर कोई धर्मयुग की प्रतिष्ठा गिराने का काम करता, तो वह उन्हें जरा भी पसंद नहीं था।

इस मायने में वे सबके साथ खासे सख्त थे ?
देखिये एक बार उन्हें विश्वास हो जाता कि आप अपने काम के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं और उसे करने के लिये कटिबद्ध, तो फिर उसके साथ वे बड़ी उदारता तथा सौहार्द्र से पेश आते थे। मैं उन भाग्यशाली लोगों में से हूँ, जिन्हें पता होता था कि किस वक्त उन्हें क्या करना चाहिये। काम के प्रति निष्ठा और अनुशासन मेरे अंदर शुरू से था। पद को या अवसर को भुनाने का स्वभाव भी कभी रहा नहीं।
धर्मयुग का सेंटर रंगीन पेज तथा कहानी मेरे पास थी। मेरी आदत हमेशा से रही कि 'मेटर' आते ही मैं उसे नीचे भेज देती, उस पर उसी दिन से काम शुरू कर देती। मेटर कितना है, गैली बन गयी, कितनी ट्रांसपेरेंसी जाएगी, कितना स्थान चाहिये, सारा नाप-जोख करके रख लेती। अब चाहें वो दो दिन बाद पूछें या दो महिने के बाद मैं तुरन्त उन्हें जो पूछते बता देती, क्योंकि पूरा होमवर्क किया हुआ रहता था, और यही वह बात थी, जिसकी वो सबसे अपेक्षा रखते थे। 'शायद' या देखता हूँ 'बताता हूं' जैसे जवाब उन्हें सख्त नापसंद थे। ऐसा भी नहीं था कि अच्छे काम की सराहना नहीं करते थे। एक बार तो 'सिंह बंधु' के अंग्रेजी आलेख के मेरे अनुवाद पर उन्होंने मेरी पीठ तक थपथपायी थी।

कोई यादगार घटना बताएं ?
अरे घटनाएं तो अनेक है। पुष्पा जी ने सोनिया गाँधी का पहला इंटरव्यू किया था। उन्होंने अनुवाद के लिये पीटीआई को दिया तो नारायणदत्त जी बोले। किससे करवाएं अनुवाद, हमारे आदमी को तो आप ले गए। तब वे बोले - ठीक है हम एक दिन के लिये उसे आपको दे देते हैं। तो ऐसे रिश्ते थे आपस में स्वस्थ-सहज।
पुष्पा जी के जितने लेख थे, सब मुझे मिलते। चाहे किसी भी पेज पर जाएं। भारती जी को गल्ती जरा भी बर्दाश्त नहीं थे। वे आदमी भी छांट कर ही लाते थे। फिर उसको घिस-घिस कर हीरा बना देते थे।

सही कह रही है आप...कहीं पढ़ा था जो निकल गया वह धड़ से पत्रकार बन जाता था?
बिल्कुल सच है यह। धर्मयुग को जिस ऊँचाई पर ले गए थे, उसके लिये खुद ने भी बड़ा त्याग किया था। अपनी रचनात्मकता को कोने में धर कर 'धर्मयुग' को बनाया था। जो आदमी खुद इतनी मेहनत करेगा, उसे दूसरों से भी वैसे ही समर्पण की उम्मीद भी होगी। वे धर्मयुग में शहंशाह की तरह रहे। उनकी इच्छा के बिना वहाँ एक पत्ता तक नहीं हिल सकता था। जिसको चाहते, रखते, जिसको चाहते निकाल देतें बाद में समय वैसा नहीं रहा, तो चले भी गए।

आपको कभी कोई दबाव या परेशानी नहीं झेलनी पड़ी ?
कभी नहीं। क्योंकि मैं बखूबी समझ गयी थी कि काम कहीं भी जाए, करना पड़ेगा। यदि हम संपादक के कहे अनुसार नियमबद्ध तरीके से काम करके दे देते हैं तो उसमें नुकसान क्या है? और हमारी कद्र भी तभी होगी। परेशानी तब हुयी जब अचानक एक दिन बिना हमारी जानकारी के 'धर्मयुग' के ताला लग गया, और हमारा ट्रांसफर वहाँ कर दिया गया, जहाँ हम जाना नहीं चाहते थे।

वह प्रकरण तो बड़ा दुःखदायी बल्कि अपमानजनक रहा सबके लिये?
बहुत ज्यादा। बिना किसी पूर्व सूचना के यकायक सोमवार को काम पर आए लोग देखते हैं, ताला लगा है। हम मेनेजमेंट से बात करने गए। कृष्णमूर्ति थे वहाँ उस वक्त। मुझसे बोले- आप क्यों परेशान होती हैं आपको तो हम लेने वाले हैं। मैंने कहा मेरा

ट्रांसफर पहले ही कर देते तो अलग बात थी। अब हम एक साथ न्याय पाने निकले हैं। वापस आएंगे, तो सभी आएंगे। हम लड़ेंगे एक साथ। आप चाहते हैं कि न लड़ें तो सबको पाँच-पाँच लाख रूपया मुआवजा दिलवाइये।

मुकदमा लंबा चला ?

हाँ एक वर्ष चला। आर्थिक परेशान तो नहीं थी क्योंकि मैं तो कंसलटेंट हो गयी थी। पर उससे खराब वक्त हो नहीं सकता था। जब हम जीत कर आए तो मैनेजमेंट नाराज नहीं था। मुझे कहा टाइम्स ऑफ इंडिया ज्वाइन कर लूँ। मुझे एक एक्स्यूकेटिव की पोस्ट दे रहे थे। मैंने कहा मैं एक जर्नलिस्ट हूँ, और अंग्रेजी भूल गयी हूँ। उनके पास कोई चारा नहीं था।

इसके बाद आप नवभारत टाइम्स में रहीं ?

हाँ 6 साल वहाँ रही, पर बात बनी नहीं, लोग अच्छे थे, सभी पुराने साथी थे, मुझे ही रास नहीं आ रहा था, सो मैंने रिजाइन कर दिया।

कोई मतभेद हुआ या कुछ और ?

नहीं बिल्कुल भी नहीं। मेरा भी मानना यही है कि काम के वक्त सिर्फ काम हो, और ज्यादातर लोगों की सोच भी यही होती है। यूं अपवाद तो हर जगह होते हैं। अतः मतभेद का तो सवाल ही नहीं था। यह सौभाग्य ही रहा कि मुझे जो भी लोग मिले अच्छे ही मिले पुराने से पुराने संपर्क अभी तक है और रोज नए जुड़ते भी जाते हैं।

खुद की दृष्टि साफ हो तो ऐसा होता है ?

हाँ यह बात भी है साथ ही यह भी कि जिनके साथ या जिनके लिये हम काम करते हैं उसे पूरी तरह से सशक्त होना चाहिये। सक्षम भी। यदि शीर्षस्थ ही लुंज-पुंज होगा तब अनेक तरह की परेशानियाँ आएंगी। सक्षम संपादक और समर्पित कार्य करने वाले हो, तो काम करने का सुख दूसरा ही होता है। जरूरी यह है कि संपादक की रीढ़बिल्कुल सीधी रहे। वह खुद दबाव में होगा, तो अपने सहकर्मियों पर भी दबाव बनाएगा।

आप 'रीडिफमेल' पर लिख रही है, स्तम्भ भी और कहानियाँ भी....लिख रही हैं?

रीडिफ पर तब लिखती हूं जब मन में कोई घटना अंदर तक मर्माहत कर देती है।

अर्थात सामयिक विषय पर लिखती हैं ?

हाँ - जब निर्भया कांड हुआ, सीरियल बम ब्लॉस्ट हुए तब लिखा था। नेताओं की सुरक्षा पर खर्च होने वाले पैसे की बर्बादी पर, अभी बधाई हो फिल्म पर भी लिखा था। बहुत लोगों की अच्छी प्रतिक्रिया मिली। अभी 'कैफे कॉफी वाला बेचारा मरा उस पर लिखना चाहती हूँ। मार डाला गया होगा। हमारे यहाँ टेक्स डिपार्टमेंट वाले बड़े बेरहम है। मेरा एक बड़ा बुरा अनुभव है इसका।

क्या अनुभव है बताएं ?

मेरी एक छोटी सी विज्ञापन कंपनी है। थोड़ा बहुम काम होता है। हर वर्ष समय पर टेक्स भरते हैं, एक बार कोई छोटी सी चूक हो गयी, कोई मामूली सर्विस टैक्स का मामला था। अचानक डिपार्टमेंट से आये पत्र से, मैं इतनी घबरा गयी जैसे मुझे दोबारा हार्ट अटैक आ जाएगा। मेरा कहना है कि ये लोग सभी को चोर मान कर चलते हैं। चूक हो जाए तो सुधारने का मौका तक नहीं देते और जो चोर हैं उनकी तरफ न निगाहें जाती है न वश चलता है। यदि आप इमानदार नागरिक है, तो आप हर चीज से डरते हो और यदि बदमाश है तो हर व्यक्ति आप से डरेगा। 'क्या सीन है?' लगातार तो नहीं पर मन में कुछ घुमड़ता है तो लिखती हूँ।

बनारस में कोई है, जो चाहते हैं कि मैं 'स्तम्भ' लिखूँ - दरअसल इसके लिये मुझे हिन्दी टाइपिंग में थोड़ी दिक्कत होती है अंग्रेजी में तो हो जाता है। स्तम्भ में तो समय पर और सामयिक मैटर भेजना होता है इसलिये लिया ही नहीं। पत्रिकाओं में हाथ से लिखा ले लेते हैं और मैं उसमें सहज हूँ।

आपने टीवी के लिये लिखा। अच्छे-अच्छे धारावाहिक आपके नाम है?

जिस वक्त जीटीवी में चन्द्रप्रकाश द्विवेदी जी थे डायरेक्टर, तो वहाँ काफी काम किया। रचनात्मक लेखन जैसा नहीं होता, उन्हीं की जरूरत के अनुसार लिखना होता है। हां उस लाइन में पैसा मारने वाले मिले जो कि सबके साथ होता हे मेरे साथ भी हुआ। 'कब क्यों कैसे' धारावाहिक मेरा क्रियेशन था, उसे करते वक्त बहुत मजा आया। उस वक्त वहाँ चन्द्रप्रकाश द्विवेदी थे, ईशान त्रिवेदी थे, वे निकले तो मैं भी निकल आयी। वे आज भी दोस्त हैं। अच्छे लोगों के साथ काम करने का आनंद अलग ही होता है। लिखने वाले आज भी है पर दर्शक बदल गये हैं, जैसे दर्शक बचे हैं वैसा माल परोसना पड़ता है। कम पढ़ी-लिखी गृहणियां या घरेलू कामकाजी औरतें, बच्चे देखते हैं तो उसी स्तर की चीज भी बनती है। फिर देखें, पहले अलग अलग लोग बनाते थे सीरियल। जबकि आज हाउसेज बना रहे हैं जिनके पास पैसे की सहुलियत होगी, वही बना सकता है। पूरा खेल 'स्वांत सुखाय' न होकर पैसे का हो गया है। एक धारावाहिक को पास करवाने में बड़े पापड़ बेलने पड़ते हैं। जब एक बार पास हो जाए फिर उसको खींच सकते हैं, उतना खींचते है। न कंटेन्ट बचता है न कहानी न पहले वाले लोग, सब बदलते रहते हैं। इतना दूहते हैं उसे जब तक दूध की जगह खून न निकलने लगे, छोड़ते नहीं। कुछ लोग इस क्षेत्र में भी बड़े जहीन होते हैं। रेखा निगम, जूही द्विवेदी, और भी हैं जिनमें पूरी समझ है।

आज तो वेब्र सीरीज़ का जमाना आ गया है?

हां अब इस तरफ मुड़ गये हैं क्योंकि इसे कभी भी, कहीं भी, देखा जा सकता है। टीवी हमेशा रहेगा बस देखने वालों की क्लास बदल गयी है, कंटेन्ट भी बदल गये हैं।

इस बीच आपने फिल्मों के डॉयलॉग भी लिखे ? लेखन का कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा?

मेरे लिये लिखना सुख का स्वरूप है। बेहद आनंद देता है, और मजे की बात मुझे इतने कलम उपहार में मिलते हैं कि कभी खरीदने नहीं पड़े। जबकि कलम के सहारे अपना घर चलाया है। सच कहूं तो कलम ने मुझे रोटी ही नहीं दी उस पर मक्खन भी लगाया है।

अनेक क्षेत्रों के नामचीन लोगों के साक्षात्कार आपने किये हैं कैसे अनुभव रहे ?

हां अनुभव तो बहुत हुए। शाहरूख का किया तो उसके लिये परेल गयी, जहां वे 'चमत्कार' की शूटिंग कर रहे थे। ट्रेन का सीन था, मैं जाकर बैठ गयी। वे आए मेरे पैरों के पास आकर बैठ गये। बातचीत होने के बाद मैं आने लगी तो पूछते हैं- आप जाएंगी किस तरह ? और अपने असिस्टेन्ट के साथ मुझे स्टेशन तक छुड़वाया। बड़ा भला लड़का है। दरअसल वो फिल्मी इंटरव्यू नहीं था, हमने एक स्तम्भ किया था धर्मयुग में - 'दीया बुझ गया, फिर भी वे नहीं बुझे' इसमें चार नाम थे। जगजीत सिंह, संजयदत्त, शाहरुख और मोहनीष बहल। शाहरूख ने छोटी उम्र में अपने माता-पिता को खो दिया था। जगजीतसिंह के युवा बेटे की मौत का हादसा हुआ ही था। उनसे पूछने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। पर उन्होंने बड़े ढंग से सबकुछ बताया, कि किस तरह वह अपने दुःख के सागर में डूब कर गाना छोड़ चुके थे। उनके 15-20 साजिन्दे आए हुए थे, और वे छत पर जाकर फूट-फूटकर रो रहे थे। यकायक ख्याल आया कि एक उनके काम बंद कर देने से कितने लोगों के घर के चूल्हे ठंडे हो गए हैं, उन्हें गाना ही होगा और यह सोचकर वापस तानपूरा उठा लिया।

ऐसी कहर की घड़ी के बाद हिम्मत बटोर कर खड़ा होना आसान कहाँ होता है?

बहुत मुश्किल होता है, यहाँ मुझे एक और घटना याद आ रही हैं हम मेनेजमेंट के खिलाफ धरने पर बैठे थे हुतात्मा चौक पर तब पहचान वाले भी डर के मारे हमारे हालचाल पूछने नहीं आए। आए सिर्फ तीन लोग, जगजीतसिंह, निदा फाज़ली तथा नेहा शरद। जगजीत व निदाजी ने कहा कि वे एक कार्यक्रम करते हैं और नेहा ने कहा कि वो उसको अरेंज कर देगी ताकि थोड़ी आर्थिक मदद हो सके। हमें बाहर से मदद नहीं लेनी थी इसलिये वह कार्यक्रम नहीं हुआ, पर आड़े वक्त में जो हाथ आगे बढ़े, उन्हें याद रखना जरूरी है।

जी बिल्कुल जरूरी है। आप साक्षात्कारों की बात बता रही थी?

जस्टीस श्रीकृष्ण का इंटरव्यू हाइकोर्ट के एक कमरे में किया था मैंने पूछा कि आपको अपनी इमानदारी से अब तक क्या मिला? तो वे बोले कि मेरी दोनों बेटियों की शिक्षा तथा शादियां बहुत अच्छे ढंग से और अच्छी जगह हो गयी है बिना कुछ खर्च किये। मैं समझता हूँ यह मेरी इमानदारी का फल है।

सबसे मुश्किल इंटरव्यू बाला साहब का रहा। कार्टून पर बात करनी थी। पहले आर.के.लक्ष्मण का किया, जबकि वो किसी को इंटरव्यू नहीं देते थे। वे टाइम्स में ही थे मैं कागज कलम लेकर गयी तो बोले कागज कलम क्यों फिर इंटरव्यू कैसे हुआ यह तो लिखना हो गया। मैं ऊपर आकर टेप-स्क्रिप्ट लेकर गयी, फिर उनसे बहुत बातें हुयी। यह सन 93-94 रहा होगा। उनके 'कामन मैन' पर बात हुयी। छपने पर इंटरव्यू उन्हें पसन्द आया पर अपने कार्टून को रंगीन कर देना नहीं भाया।

आप 'ठाकरे' का बता रही थी क्या मुश्किल पेश आयी ?

सबसे पहले तो उन तक पहुंचने से पहले, बड़े प्रोटोकाल से जूझना पड़ा। कमरे के अंदर एक छोटा कमरा जहां एक भी खिड़की नहीं थी। एक छोटी सोफानुमा कुर्सी थी तथा उसके सामने एक और कुर्सी पड़ी थी उस पर मैं बैठ गयी। वे आए और उस दूसरी कुर्सी पर बैठ गये। शुरू में थोड़े अनमने से लगे, पर जब मैंने बताया कि मुझे राजनीति पर नहीं आपकी कार्टून-कला पर बात करनी है, तो सहज हो गए। काफी अच्छे से बातें की फिर बोले इसकी कॉपी देखना चाहता हूँ। मैंने कहा ठीक है मैं कल दिखाती हूँ। वापस उसी प्रोटोकाल को पार करती बाहर आयी। रातभर बैठकर उसे लिखा, और दूसरे दिन उन्हें दिखाने फिर उसी सारी कवायद से गुजरना पड़ा। कॉपी को देखा तक नहीं बोले मुझे आप पर विश्वास है मैं हैरान तो फिर मुझे बुलाया क्यों। कहते हैं पास ही तो रहती हैं आप। उनका इशारा बांद्रा के 'साहित्य सहवास' में रहने वाले पत्रकारों के रहने की जगह है मैं गरीब पत्रकार हूं, गोरे गाँव में रहती हूं बहरहाल इंटरव्यू अच्छा रहा। लोगों से काफी सराहना भी मिली।

जावेद अख्तर तथा नौशाद साहब के इंटरव्यू करके बहुत मजा आया। धर्म पर उनके विचार जानने थे। जावेद अख्तर ने समय तो आधा घंटे का दिया पर साढ़े तीन घंटे बोलते रहे। फिर पूछते हैं यह सब याद करके कैसे लिखेंगे ? मुझसे टेप रिकार्डर ले लेतीं, कैसेट ले जाती। नौशाद से फोन पर ही बात कर लेंगे मैंने कहा तो उन्होंने पूछा- आप कहां से हैं। मैंने बताया मेरठ का जन्म है बरेली ससुराल तो बड़े खुश हो गए, बोले हम तो तरस गए उधर की जुबान सुनने को आपको घर आना होगा।

स्मिता पाटील तथा संजीव कुमार दोनों ही चले गये। उनके इंटरव्यू पीटीआई के लिये किये थे। स्मिता ने तो अपनी गाड़ी से मुझे पिकअप किया 'जवाब' की शूटिंग चल रही थी, वहीं इंटरव्यू दिया। बीच-बीच में शॉट के लिये जा रही थी। बात हो गयी तो मुझे पूछती है - आप वापस कैसे जाएंगी? तथा अपनी गाड़ी से मुझे छुड़वाया। दरअसल ये चीजें उस व्यक्ति के स्वभाव की सहृदयता का पता देती है।

संजीव कुमार की शूटिंग फिल्मीस्तान में चल रही थी। उस वक्त उनके सेक्रेट्री जमनाप्रसाद जी थे। उन्होंने मुझे आधा घंटे का वक्त दिया था। मैं गयी कमरे में तो संजीव बैठे थे। पूरे कमरे में शराब की गंध भरी थी। मैंने जैसे ही रिकार्डर टेबिल पर रखा, बोले दस-पन्द्रह मिनट बात करनी है, इसकी क्या जरूरत है। मैंने भी कह दिया मुझे जमनाप्रसाद जी ने आधे घंटे का समय दिया है यदि उतना समय आपके पास हो तो बात करते हैं, नहीं तो मैं फिर किसी अन्य दिन जाऊँगी तब बात करने को राजी हुए और जब बोलने लगे तो डेढ़घंटे तक बोलते चले गये। बीच में शॉट देने उन्हें भी उठना पड़ा। युवा उम्र में उन्हें पिता के रोल करने पड़े इसका दर्द था उनके मन में।

साक्षात्कार सिर्फ साक्षात्कार नहीं होते। अलग-अलग क्षेत्र के लोगों के अलग-अलग टेपरामेन्ट देखने को मिलते हैं। हर बार नया जानने सुनने का अवसर होता है?

बिल्कुल सही। हम उस व्यक्ति के अंदर झाँकते हैं तब एक खिड़की खुलती है।

अध्यापन, पत्रकारिता तथा रचनात्मक लेखन ये तीनों ही क्षेत्र आपने बखूबी संभाले, जबकि कहा यह जाता है कि पत्रकारिता रचनात्मकता का गला घोंट देती है ? भारती जी का उदाहरण हमारे सामने है। वे धर्मयुग को शिखर पर ले गए, लेकिन 'अंधायुग' के बाद कोई बड़ा काम उनका सामने नहीं आया आप क्या कहती हैं?

कुछ हद तक आपकी बात सही है परन्तु मेरा मानना है कि पत्रकारिता और रचनात्मक लेखन एक दूसरे के दुश्मन नहीं हैं। पत्रकारिता करते हुए भी रचनात्मकता निभाई जा सकती है, जरूरत है समय नियोजन की। ऑफिस में अपना लेखन नहीं किया जा सकता।

फिर वो कब करें....दिन में घंटे तो सभी को चौबीस ही मिलते हैं? दिनभर ऑफिस का काम करने के बाद ताकत कहां बचती है कि वह रचनात्मक करें!

मैं फिर भी कहूंगी कि गुंजाइश बचती है। यदि मेरी तरह किसी के लिये लेखन संजीवनी बूटी हो तो।

मैं समझी नहीं....?

देखिये मैं 8 बजे घर से काम संपन्न करके निकलती और शाम को सात बजे वापस घर आती। सबसे पहले बच्चों को देखती, खाना पकाती और वो पूरा समय बच्चों के साथ बिताती जब तक बच्चे सो नहीं जाते। उसके बाद अपना रचनात्मक लेखन करती जो कभी दो बजे तो कभी तीन बजे तक चला करता। वर्षो 3-4 घंटे की नींद ली है मैंने। यह इसलिये कर पायी कि 'लिखना' मुझे थकाता

नहीं है मेरी थकान हर लेता है। सबके साथ यही हो यह जरूरी नहीं है।

स्तम्भ लेखन के दौरान का कोई अनुभव बताएं ?

हाँ याद आया, विषय था 'अविवाहित मातृत्व एक चुनौती' तब मैंने लिखा था नीना गुप्ता पर। उनके जिस वक्त मसाबा का जन्म हुआ ही था। वे किसी को भी इंटरव्यू नहीं देती थी। मैं न.भा.टा. के लिये आधी दुनिया की खबरें स्तम्भ कर रही थी। मैंने उसमें लिखा था कि आज नीना गुप्ता को सब पूछ रहे हैं कि 'इसका बाप कौन है' यदि यही उन्होंने बच्चे को मार दिया होता जन्म से पहले ही, तो कोई सवाल नहीं करता, अर्थात हिम्मत के लिये सवाल है और अपराध के लिये कोई सवाल नहीं। बच्चे का बाप कौन है, इसे सबको क्यों जानना है। क्या सिर्फ माँ जानती है यह काफी नहीं है। इसे उनकी देखभाल करने आयी आंटी ने पढ़कर सुनाया था। फिर कई वर्षों बाद उनकी फोटोग्राफर दोस्त ने हमारी मुलाकात तय की तब उन्हीं आंटी ने याद दिलवाया कि यह वही पत्रकार है जिन्होंने बच्चे के जन्म पर लिखा था तब नीना मुझसे बात करने को राजी हुयी थी।

सुना आप महाभारत के चरित्रों पर कुछ बड़ा काम कर रही हैं?

हाँ कुंती पर उपन्यास लिख रही हूँ। पीटीआई वाले नारायणदत्त जी मेरे बड़े भाई, गुरु, मार्गदर्शक सब रहे हैं। मैंने उनसे इस पर बात की, तो उन्होंने कहा- हाँ, लिखो जरूर पर अंग्रेजी में लिखो। उसमें पाठक ज्यादा मिलेंगे। दुःखद तो थी सच्चाई, पर शिरोधार्य की।

कहानियों वगैरा पर भी तो काम चल रहा है?

जयंती नटराजन ढूंढ-ढूंढकर मेरी कहानियाँ एकत्रित करके एक संग्रह पर काम कर रही है। दरअसल 'धर्मयुग' पर अचानक लगे ताले ने मेरा कभी पूरा न होने वाला नुकसान किया था।

वह कैसे ?

मैं अपना पूरा सामान वहीं रखती थी। उसमें मेरी बीस कहानियाँ थी कुछ छपी हुयी रचनाओं की कतरने कुछ जरूरी डायरियां और बहुत सारे फोटोग्राफ। 'सुजाता बजाज' ने फ्रांस से 250 ट्रांसपेरेंसी भेजी थी। 'आरा' के 6 चित्र थे। उन्होंने सतीश को गिफ्ट किये थे। विश्वनाथजी ने आरा पर आर्टिकल किया तो वे काम में ले लिये थे उन्होंने मुझे वापस लौटा दिये, आज इतने बड़े चित्रकार के 6 चित्र का मोल....क्या याद करूं।

मुकदमा जीतने के बाद भी सामान नहीं निकाला जा सका ?

अदालत ने आदेश दिया था कि सामान निकालने दिया जाए, पर वह गोदाम में फेंका जा चुका था, खोजा भी पर कुछ हाथ नहीं लगा। अपने लिखे हुए की कटिंग तक नहीं बची। उस वक्त लेपटॉप की सुविधा तो थी नहीं फाइलें, जेराक्स कार्बन कॉपी सब रह गया।

इससे बड़ा नुकसान क्या होता है?

सच...पर सब समय-समय की बात है।

आज अभिव्यक्ति की आजादी पर जो पहरे हैं उस पर कुछ कहें ?

दुःखद स्थिति है। लोकतंत्र सशक्त विपक्ष के बिना खत्म किया जा रहा है।

जो हमको हो पसंद वो बात कहो, नहीं तो गोली सहो यह लोकतंत्र कहां हैं ?

इसका नाम भले ही कुछ भी दें पर है यह 'तानाशाही'। हमारी दो सबसे बड़ी ताकतें लोकतंत्र व धर्म निरपेक्षता, इस वक्त दोनों ही खतरे में हैं। कुछ लोग प्रयत्नशील हैं कि ऐसा न हो, पर वे लोग राजनीति में नहीं है। आरटीआई को खत्म करने की तैयारी चल रही है। हमारी तो उम्र हो गयी, बाकि की भी ठीक ही कट जाएगी। किन्तु दुःख इस बात का है कि हम अपने पीछे विरासत में कुछ अच्छा छोड़ कर नहीं जाएंगे!

देश के मौजूदा हालात पर क्या कहेंगी ?

हालात बहुत आशाजनक तो नहीं है। आर्थिक विकास के जो ढोल पीटे जा रहे हैं, वह तब सही मानें जाएं, जब देश के सबसे निचले तबके का भी विकास हुआ दिखे। महंगाई, आर्थिक विषमता बढ़ रही है। खाना, पानी, आवास, हवा, चिकित्सा कुछ भी तो सुलभ नहीं है। आंकड़ों का हेर-फेर न करें, तो विकास का ग्राफ वहां भी नहीं है। गलत बातों का प्रोपोगंडा करना और उसे आगे बढ़ाना भी गलत होता है। मेरा विश्वास सिर्फ न्याय पालिका पर बचा हुआ है वहाँ भी गलत होने लगेगा, तब सब नष्ट हो जाएगा, यह तय है।

जब पावर कुछ लोगों के हाथ में आ जाता है और निरंकुशता बढ़ने लगती है तो अन्ततः लोगों में दबा हुआ असंतोष व विद्रोह इकट्ठा होकर ज्वालामुखी की तरह फट पड़ता है। जिनके पास खाने को नहीं है, शिक्षा नहीं है, रोजगार भी नहीं है तब, जिनके पास ताकत बची है वे भी बच नहीं सकते। क्रांतियां ऐसे ही होती है। विश्व का इतिहास उठाकर देखें। रूस व फ्रांस का हाल हमारे सामने है। विस्फोट को समय रहते रोक लिया जाना जरूरी है।

आप बहुत निराश लग रही हैं?

हाँ निराश भी हूँ और दुःखी भी। हम भावी पीढ़ी के लिये क्या छोड़कर जाएंगे न सोच है न संपदा। वैचारिक भी नहीं और भौतिक भी नहीं। एक खोखलापन पसर गया है सब जगह। पहाड़ों को नदियों को, जंगलों को आदिवासियों को किसी का भी दोहन करने से नहीं चूके। उस पर हम सबको सोचना होगा।

सुदर्शना जी। आप अपनी माताजी के बारे में कुछ और बताना चाहती थी?

मेरी माँ का मुझ पर बहुत प्रभाव रहा है हर स्थिति में समभाव रहना, खाने से ज्यादा खिलाने की उदारता उनमें गजब थी। वे बेहद आत्मसम्मानी महिला थीं। घमंड, प्रदर्शन, गप्पबाजी और चौंचलो से मीलों दूर कर्मठ तथा बेहद प्रेमिल। मेरी माँ मेरे व्यवहार और संस्कार में मुझ पर सबसे बड़ा प्रभावी रही है। हर परिस्थिति में समभाव रखना मैंने उनसे सीखा और खाने से ज्यादा खिलाने में आनंद लेना और आचरण की उदारता भी। उनका कहना था कि जिस हाथ में देने की इच्छा होती है, उसे सामर्थ्य ईश्वर दे देता है। आज वे नहीं हैं, पर आज भी उन्ही का उदाहरण मेरे सामने है कि घर के बुजुर्ग को किस तरह कमल सा आचरण करना चाहिये कि वह खिला भी रहे और जल में रहते हुए भी उससे दूर रहे। वे बेहद आत्मसाम्मानी महिला थीं, घमंड, प्रदर्शन, गपबाजी और चौचलों से मीलों दूर कर्मठ और बेहद प्रेमिल। अपने बच्चों पर वे जान छिड़कती थीं और उनके लिए कुछ भी कर गुजरने को तैयार थीं। एक उदाहरण। 1959 में मेरी बड़ी बहन के विवाह के समय जब बारात में आये मेरे पिता के एक भूतपूर्व छात्र ने उन्हें वर के दुश्चरित्र होने की सूचना दी तो उन्होंने बारात वापस कर दी, बिना सामाजिक प्रभाव में आये और बिना यह चिंता किये कि 'तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़े न दूजी बार' की मानसिकता वाले इस समाज में उनकी यह बेटी और उससे छोटी तीन और बेटियाँ कहीं बिनब्याही न रह जायें। कुपात्र को बेटी ब्याहने से बेहतर वे उसे बिनब्याहे, आत्मनिर्भर बनाना समझती थीं। (वैसे इस घटना के ठीक एक वर्ष के अंदर एक बहुत संभ्रात परिवार में मेरी बहन का विवाह एक सुसंस्कारित उच्च पदस्थ युवक से हुआ, जहाँ इस घटना की जानकारी के बावजूद उन्हें पूरा सम्मान मिला।) जानते-बूझते, केवल समाज के भय से बेटियों के ससुराल के नर्क में वापस में धकेलने वाले माँ बाप को मेरी माँ का यह कदम आज भी बहुत कुछ सिखा सकता है।

कोई घटना याद आ रही है उनसे जुड़ी ?

हाँ वही बताना चाहती थी कि 1959 में बड़ी बहन के ब्याह के वक्त बारात दरवाजे पर खड़ी थी। तभी पिताजी के एक प्रिय शिष्य ने भावी वर के दुष्चरित्रता की सूचना दी। तब हमारी माँ ने बिना यह चिंता किये कि द्वार से बारात को लौटा देने का अंजाम क्या होगा, साहसिक कदम उठाया। 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार' की मानसिकता वाले समाज में चार-चार बेटियों की मां का साहसिक कदम कि कुपात्र को बेटी ब्याहने से बेहतर यही होगा कि वे बिन ब्याहे रहे और आत्मनिर्भर बने। जानते बुझते केवल समाज के भय से बेटियों को ससुराल के नर्क में वापस धकेल देने वाले लोगों को मेरी माँ का यह कदम आज भी बहुत कुछ सिखा सकता है।

बिल्कुल सही बस कही यह एक प्रश्न और कुलबुला रहा है मन में...वैसे तो आप बड़ी स्थितप्रज्ञ तथा मजबूत नज़र आती हैं फिर भी कोई ऐसा है जिसके सामने समूचा मन खोलकर रख दिया जा सकता है? खुशी सबसे पहले सांझी की जा सकती है?

हाँ है ना। जीवन में दो 'वीणा' नाम की महिलाओं से मेरी बहुत निकटता रही है। एक है वीणा सचदेव जिन्होंने मेरे तकलीफ के दिनों में, व्यस्तता के दिनों में मुझे बहुत संभाला, सहयोग दिया। वर्षों तक पास रहने के कारण कभी देर रात काम से आने पर भी बच्चों की तरफ से उनके कारण निश्चिंतता रही। आज भी हमारी मित्रता उसी तरह कायम है। दूसरी है मेरी छोटी बहन 'वीणा' जो बचपन से मेरी अभिन्न मित्र है। मेरे जीवन में ऐसा कुछ नहीं जो मैंने उसके साथ बांटा न हो। न ऐसा कभी हुआ कि मुझे कोई परेशानी हो और वो देवदूत की तरह उसे दूर करने में न जुट गयी हो। मेरे दोनों बच्चे सुपर्ण और सुकन्या भी मेरे दोस्त हैं और हर अच्छे-बुरे वक्त का मुकाबला हमने मिल कर किया है। जहाँ आपने मेरे निकटतम मित्रों के बारे में पूछा था और मैंने वीणा भाभी के बारे में बताया था, वहीं जोड़ना है। परिवार में मेरे सबसे निकट मेरी छोटी बहन वीणा है, जो बपनन से मेरी अभिन्न मित्र है। मेरे जीवन में ऐसा कुछ नहीं जो मैंने वीणा के साथ न बाँटा हो और ऐसा कभी नहीं हुआ कि मुझे कोई परेशानी हो और वीणा एक देवदूत की तरह उसे सुलझाने में न जुट गयी हो। मेरे दोनों बच्चे-सुपर्ण और सुकन्या भी शुरू से मेरे दोस्त रहे हैं और मजे में वक्त गुजारने के अलावा हर अच्छे-बुरे समय का मुकाबला हम तीनों ने मिलकर किया है और मिल कर करते हैं। इस परिवार में हम सब बराबर हैं।

धन्यवाद, सुदर्शना जी। आपसे मिलकर हमारे पाठक भी मेरी तरह ही बहुत खुश होंगे।

निर्मला डोसी

राम्या, सीएचएस लि.फ्लैट नं.201, सेक्टर-2

प्लॉट नं.104, शिवम हास्पिटल के पास, चारकोप,

कांदीवाली वेस्ट मुम्बई-400067, मो.9322496620

बंधी मुट्ठी

भरतचंद्र शर्मा

रेलगाड़ी द्रुतगति से भागी जा रही है। गाड़ी के भीतर बैठे सत्तर वर्षीय रामबाबूजी को लग रहा है - पेड़ द्रुतगति से भागे जा रहे है। क्या जीवन हाथ से छूट रहा है या हाथ की पकड़ ढीली होती जा रही है, जैसे जीवन को भागने का अवसर दे रही हो।

यकायक कोई स्टेशन आ गया। जिनसे थोड़ा अपनापन हुआ था वे सहयात्री उतर गये। नये अजनबी चेहरे गाड़ी के भीतर आ गये। परिस्थितियाँ बदल गयी। बुढ़ापे के लक्षणों मे रामबाबूजी को अनेक बार टॉयलेट जाना होता था। नये यात्रियों से जब तक परिचय न हो किसके भरोसे सामान छोडकर बाथरूम जाओ।

यात्रा में परिवार का सदस्य अथवा एक मित्र भी साथ हो तो यह समस्या नहीं आती है।

रामबाबूजी आखिर किसको साथ लेकर जाते। चार बेटे जिनकी भरीपूरी गृहस्थी है दूरस्थ महानगरों में रहते है। आधुनिक युग की माँग के अनुरूप अच्छी खासी नौकरी है। दाल - रोटी ढंग से कमा रहे हैं। बेटों को इस लायक बनाने में रामबाबूजी एवं उनकी पत्नी जानकी देवी का कठिन परिश्रम एवं जीवन की साधना है।

रामबाबूजी की गाँव में थोडी बहुत खेती थी तथा पंडिताई का काम था। पत्नी जानकी देवी तथा रूग्ण एवं वृद्ध माँ यही रामबाबूजी का संसार था। पत्नी एवं माँ की भी यही नसीहत रहती थी - तुम्हारा जीवन तो गाँव में निकल गया पर बेटों का जीवन यहाँ नहीं निकल पायेगा। उन्हें गाँव से बाहर निकालो आगे पढ़ने भेजो। यहाँ खेती में कोई दम नहीं हैं। दस बारह बीधा जमीन के फिर चार हिस्से होंगे। क्या पकेगा और क्या खायेंगे। आखिर ये किसान यूं ही तो आत्महत्या नहीं करते हैं।

माँ की यह बात रामबाबूजी और उनकी पत्नी जानकी को अच्छी तरह से समझ में आ गयी। जीवन भर की तपस्या काम आयी चारों बेटे योग्य हो गये। प्राइवेट कम्पनियों में अच्छे भले पदों पर लग गये। जो जिस शहर में था वहीं फ्लैट खरीदकर उस शहर का बाशिन्दा हो गया। सभी के परिवार बस गये पोते - पोतियों की किलकारिया भी हँसते खेलते संसार में आ गयी। एक साधारण गृहस्थ के लिये सुख की इससे अच्छी परिभाषा क्या हो सकती है।

दूर के ढोल बज रहे हो तो सुहावने लगते है पर्वत भी दूर से ही अच्छे लगते हैं संभवतः संसार का भी यही नियम है। रामबाबू के भी सारे सपने मर्त्तबान में कैद मछलियों की तरह ही थे।

माँ की जर्जर काया और गंभीर रूग्णता को छोड़कर उनकी पत्नी जानकी तो कहीं जा ही नहीं सकती थी। बहुत आवश्यक हुआ तो जात बिरादरी की सामाजिकता निभाकर वे स्वयं भी तत्काल गाँव लौट आते थे।

उनके बेटों ने जब फ्लैट खरीदे तब बड़ी मुश्किल से वे माँ एवं पत्नी को लेकर गये थे। बंद दरवाजों की फ्लेट संस्कृति में माँ का दम ज्यादा घुटने लगा। पोते - पोतियों को भी ग्रामीण परिवेष के ये तीनो प्राणी दादा - दादी कम तथा अजायबघर से आये हुए मुखौटे ज्यादा लग रहे थे।

रामबाबू की बूढ़ी माताजी की तो सांस ही फूल गयी जब उन्हें पता लगा कि चौथे माले पर लटकने वाला यह फ्लैट जिसमें दो कमरे एवं एक रसोई तथा बरामदा है। पैंतालीस - पचास लाख का है तथा बच्चे की तनख्वाह से चालीस हजार की तो मासिक किश्त ही कट जाती है।

उस फ्लेट में एक कमरा तो पति - पत्नी का है दूसरा पोते - पोती का है जहाँ पढ़ाई - लिखाई कम्प्यूटर टेबल आदि हैं। आगन्तुक कहाँ जाये ? बरामदा अथवा हॉल कह लीजिये जहाँ सामने की दीवार पर टी.वी. लटक रहा जिसके सामने काँच लगी बालकानी है जहाँ आसमान साफ - साफ दिखायी दे रहा है। यह आसमान कभी एकदम बर्फ की तरह सफेद होता है तो कभी रूई के फॉहो की तरह टुकडा -टुकडा होता है।

फ्लैट में ए.सी. तो एक ही कमरे में लगा था। बेटे ने अपना कमरा ऑफर भी किया पर बुजुर्गो को यह स्वीकार्य नहीं था।

महानगर की दिनचर्या और रहन - सहन सब कुछ अटपटा लगा था। बेटा तो कभी रात को दस बजे पहले घर ही नहीं आ पाता। दिन भर उनको लगता यह फ्लैट घर नहीं होटल है। बहू अपने कमरे में, पोते - पोती उनके कमरे में। बच्चे हाल मे आते भी है तो केवल टी.वी. पर ऊँची आवाज में मनपसंद धारावाहिक देखने। वैसे ही बुढ़ापे मे सरदर्द आम शिकायत है ऊपर से टी.वी. का शोर शराबा। खाली समय में बहू एवं बच्चे मोबाइल पर आभासी संसार में खोये रहते।

पता नही यह नये जमाने का चलन था या स्थायी उपेक्षा भाव। आदमी भूख सहन कर सकता है पर प्रेम और भावना - शून्य यह जीवन मरण समान है। पूत के लक्षण पालने में दिखायी देने लगते हैं। माँ की आँख की दृष्टि कमजोर हुई थी पर संसारिक अनुभव की दिव्य दृष्टि तो उनके पास थी। कटु यथार्थ को अनावृत होने से बचाते हुए उन्होंने अपना फैसला सुना दिया था- यहाँ बंद दरवाजों के भीतर मेरा दम घुटता है कल सुबह ही गाँव लौटने का प्रबंध करो।

दूसरे दिन तीनो प्राणी गाँव लौट आये थे। उनकी यह यात्रा किसी राकेट की तरह पीछे लम्बी लकीर छोड़ गयी थी।

माँ की दी हुई नसीहत थी, पहली - बंधी मुठ्ठी लाख की जो जीवन भर कायम रहे तो अच्छा। दूसरी - आदमी को यह ध्यान रखना चाहिये बुढ़ापा अटल सत्य है। जब शरीर जर्जर होकर खाल में बदल जायेगा तो उस खाल की जिम्मेदारी कौन लेगा। खाल का मालिक कौन ? वो कभी कभार माँ को कहा भी करते - माँ इतनी भी क्या चिन्ता करनी। सबका मालिक एक।

नाते रिश्तेदार जब माँ को कहा करते आपके तो चार पोते हैं। तब माँ का उत्तर होता - मेरा बेटा तो अयोध्या का राजा दशरथ है दशरथ।

चारों बेटे जब तक बाहर पढ़ते रहे भागकर हर छुट्टी में घर आ जाया करते। रामबाबू कहते - अरे भाई, इतना खर्चा कैसे उठाऊँ तो माँ डपट देती - आने दे, बच्चों के आने से घर भरा - भरा लगता है।

जब नौकरियाँ लग गई तो आना - जाना कुछ कम हुआ। जब शादियाँ हो गयी तो यह कार्यक्रम अर्द्धवार्षिक हुआ। बच्चे हो गये तो वार्षिक हो गया।

आते ही छुट्टी नहीं होने की बात कहकर चौबीस या छत्तीस घंटो मे रवानगी का कार्यक्रम बताते इतने कम समय में क्या तो पोता - पोती के साथ रहने को मिले यह कितना अपनापन संभव है।

एक दो बार रामबाबू ने कहा - बेटा, पलक झपकने में भी थोडा समय लगता है इतने कम समय में बच्चों के साथ हमारा क्या मन भरे।

बेटों का सपाट उत्तर होता - आप तीनों वहाँ आ जाये। रामबाबू मौन हो जाते उनकी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थी वो मृत्युशैया पर पड़ी माँ को लेकर शहर-दर-शहर डोलते फिरे। वही ढाक के तीन पात, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।

किसी भी परिवार का भाईचारा परस्पर सहयोग और संवाद पर कायम होता है।

उनकी पत्नी जानकी देवी जिसका सारा जीवन ग्रामीण मजूरी तथा सास की निर्वाध सेवा में लगा था सुनसान अयोध्या की कल्पना से ही सिहर उठती। योग्य पुत्रों से उनकी कोई अपेक्षा तो थी भी नही पर उपेक्षा भाव अंदर तक आशंकित कर देता।

रिश्तों की नदी सूखती सी प्रतीत होती थी। बच्चों के विकल्प स्वरूप रामबाबू और जानकी देवी को भी नेट के मोबाइल दे दिये। रामबाबू तो शीघ्र ही समझ गये यहाँ दुनिया भर के चोंचले हैं वास्तविक धरातल पर शून्य है।

वर्ष गाँठ, शादी गाँठ सब कुछ व्हाट्सएप ठाठ से मनाओ। रामबाबू जानकी देवी ने अनेक बार बच्चों को हिदायतें दी आपस मे मेलझोल बढ़ेगा तुम्हारे बच्चे एक दूसरे को पहचानेगे महीने दो महीने में एक भाई दूसरे भाई के वहाँ चक्कर लगा लो।

कोई असर नही हुआ। पिता से तो एकाधबार दो दिन में बात कर लेते पर आपस में तो व्हाट्सअप पसर गया। जब भाइयो मे ही संवाद नहीं है तो बहुओ से तो केवल कपोल कल्पना मात्र है।

कम्पनियों ने जब शनिवार का भी अवकाश घोषित कर दिया तो माँ एवं पत्नी दोनों के मन में आशा की किरण जगी।

अब बेटे बिना छुट्टी लिये ही खोज खबर लेने आ सकते है। परिवार के साथ संभव नहीं हो तो अकेले भी आ सकते हैं। यहाँ पर भी जब उन्होंने पतली गलियाँ निकाल ली तो फिर उन्हें कुछ कहना ही छोड़ दिया। प्रेम एक आत्मीय भाव है रामबाबू उसको थोपने में विश्वास नहीं रखते थे। वे जान गये थे काल्पनिक व्यस्तताएँ आत्मीयता को परास्त कर रही है।

समय का चक्र तो निरन्तर गतिमान है। आदमी की शारीरिक मृत्यु तो तयशुदा समय पर होती है पर तनाव, आघात - प्रतिघात तो बहुत पहले ही उसे किश्तों मे मारना प्रारंभ कर देते हैं।

देह का मकान तो बहुत बाद मे गिरता है एक - एक इंट बहुत पहले ही दरकनी प्रारंभ हो जाती है। आघात प्रतिघात, तनाव के जाले पसरने लगते हैं।

रामबाबू एवं जानकी जिस सत्य को जान चुके थे परस्पर बातचीत में कभी उसका जिक्र नहीं करते खुद के घाव कुरेदना दुखदायी ही होता है।

पुत्र योग्य भी हो उनको कोई सुख भी मिले तो माता - पिता पर दुःख एवरेस्ट से भी ऊँचा हो जाता है।

चार अतियोग्य पुत्रों के होते हुए भी राजा दशरथ के प्राण पुत्र वियोग मे कितने अकुलाये होगे इसकी कल्पना की जा सकती है।

इधर ट्रेन में जब पुराने यात्री उतरे तो रामबाबू को अपनी माँ की मृत्यु याद आ गयी। लगभग आठ दस माह पूर्व ही उनकी अति वृद्ध माँ ने यह नश्वर शरीर छोड़ा था।

माँ के पगड़ी रस्म तेरहवीं पर दूरदराज के रिश्तेदारों का अच्छा जमघट लगा। जब बिखरने का समय आया तो नजदीकी रिश्तेदार अपने तरीके से बेटों तथा बहुओं को नसीहते दे रहे थे।

- देखो बच्चों, तुम योग्य हो सुपात्र हो अब। माता - पिता का ज्यादा ध्यान रखने का समय आया है। अब खोज खबर लिया करना। अब तक तो ये माताजी की सेवा और बीमारी में इतने व्यस्त थे कि समय का पता ही नहीं लगता।

एक बेटे ने उत्तर दिया - अंकलजी हमने तो पहले ही पापा को कह दिया था जमाने के हिसाब से तेरहवीं के साथ ही क्रियाविधि पूरी कर देते। यहाँ ताला लगाकर हमारे साथ चलो। ये कह रहे हैं दादी की क्रियाविधि साल भर तक चलेगी। अब हम तो नौकरियाँ छोड़कर यहाँ बैठे रहने से रहे।

निरूत्तर हो गये थे सलाह देने वाले। उधर कुछ बुजुर्ग महिलाएँ बहुओं से बतिया रही थी। तुम्हारी सास ने तो दादी की इतनी सेवा की है इस जमाने में बहुत कम लोग करते हैं। वह स्वयं भी अब उम्र के सत्तरवें घर में है। अब उनके भगवान का नाम लेने के तथा गरम उतरते हुए फुल्के खाने का वक्त आया है। एक बात और सुनो, इस बेचारी के तो कोई बेटी भी नहीं है। बेटियों की तरह रोज फोन से खबर लिया करना।

तभी जानकी देवी ढाल की तरह बीच में आ गयी - आप निश्चिंत रहे अब सब यही करेगी कौन दूसरा करने आयेगा।

पर क्या स्वयं जानकी देवी भीतर से स्वयं निश्चित थी।

दादी के कार्यक्रम वर्ष भर चलते रहे पर बच्चों का व्यस्तता अथवा और किसी कारण से शायद ही कभी वक्त मिल पाया हो।

रामबाबू और जानकी को यह घर एकदम खाली - खाली तथा सूना लगने लगा। मांजी के कारण और बीमारी की व्यस्तता में अनेक समस्याओ और उनकी चिन्ताओ से दूर थे।

अब परस्पर संवाद में भी पति - पत्नी संतानों के विषय में ज्यादा बात नहीं करते क्योंकि क्या पता कब दुखती रग पर हाथ चला जाये। दोनों की दुखती रग भी एक ही थी।

एक दिन बिरादरी में किसी महिला की मौत से लौटने पर जानकी देवी ने टिप्पणी की - पति के रहते मौत आ गयी, अच्छा अखंड सौभाग्यवती हो गयी।

रामबाबू - पर बहुत ज्यादा उम्र तो नहीं थी।

जानकी - क्या करती, आठ - दस बरस और जी लेती और पति पहले मर जाता तो कहाँ - कहाँ धक्के खाती फिरती।

रामबाबू - पर जानकी पति की भी यह स्थिति अच्छी नहीं है वो तो आदमी है किसके आगे अपना दुखड़ा रोये।

गंभीर और कुछ भावुक रामबाबू का हाथ थाम लिया - चिन्ता मत करो अभी मुझे कुछ नही होगा।

फिर अपने बच्चे कौनसे विदेश में है। यहीं दो सौ - तीन सौ किलोमीटर की दूरी पर तो है। वे ही करेंगे चाहे हँसी - खुशी से करे या जगत की मार से।

चुप हो गये रामबाबू। काश उनके, बच्चे भी विदेश में होते दिल को तसल्ली तो हो जाती, फिर उन्होंने जानकी से निगाहें चुराते हुए आँख मे छलक आये आँसुओं को रोकने की चेष्टा की। रामबाबू और उनकी पत्नी संसारी लोगो की तरह जगत की मार से डरते थे और दुनिया का काम है - मीनमेख निकालना तथा बिना माँगे सलाह देना।

कोई कहता - इस जमाने में माँ का क्रियाकर्म साल भर तक बेकार में लम्बा खींच रहे हो।

दूसरा कहता - यदि बच्चे यहाँ नहीं आ सकते तो उनके साथ जाकर रहो।

तीसरा टाँग अड़ाता - आज के जमाने में बेटा - बहू के साथ रहना आसान नहीं है। उनके अनुसार ढलना पड़ता है।

अब रामबाबू किस - किस को सफाई देते फिरें। यदि पत्थर मीठे होते तो जंगल मे सियारे उन्हें छोड़ती थोड़ी ?

फिल वक्त तो रामबाबू अपने मकान के आँगन में लगे नीम के दरख्तों की ठंडी हवा में खटिया डालकर गाढ़ी नींद लेते थे।

जीवन की ट्रेन में यह पता नहीं चलता कौन कब उतर जायेगा खुद को कब उतरना है यह भी पता नहीं है। एक दिन जानकी देवी की छाती में साधारण सा दर्द उठा अस्पताल ले जाते हुए रास्ते में ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये।

माँ को तो अभी ग्यारह महीने हुए थे पत्नी भी यकायक चल बसी। सब

कुछ जैसे उजड़ गया, सुख - दुख किसके साथ बाँटो। दुनिया सांत्वना दे रही थी जानकी देवी तो भाग्यशाली हो गयी।

पत्नी की तेरहवीं पर ही वर्ष भर की क्रिया विधि समाप्त कर दी गयी। बेटे कह रहे थे जहाँ मन पड़े जितनी इच्छा हो बारी - बारी से बेटों के पास रहो। उस वक्त तो उन्हें समझा कर रवाना किया। पहला माहया (महीने) हो जाने दो मैं स्वयं चला आऊँगा।

रामबाबू स्वयं रोटी बनाते। बर्तन माजना,झाड़ू लगाकर जानकी की तरह घर को साफ - सुथरा रखने का प्रयास करते। कभी एक ही समय खा लेते तो कभी फाका (उपवास) मार लेते।

उनको लगता वे नितांत अकेले हैं पर मूक ही सही सुख - दुख का साथी यह घर तो साथ है। ये नीम के पेड़ तो साथ नहीं छोडेंगे। इसी घर में माँ का आशीर्वाद रूपी अदृश्य हाथ है पत्नी जानकी की मधुर स्मृतियाँ है। स्वयं के बेटों को बचपन से युवावस्था तक पहुँचाने वाला उनका कठोर परिश्रम है।

कमी है तो बस यही है कि गाँव में कोई टिफन सेन्टर नही है। जब तक संभव है स्वयंपाकी भोजन बनायेगे जिस दिन हाथ पाँव बिल्कुल साथ छोड़ देंगे देखा जायेगा।

जमाने की मार पड़नी शुरू हो गयी - अरे काकाजी काहे दुःख उठाते हो ? बेटो के पास चले जाओ। यहाँ क्या धरा है अब ?

कोई कहता - घर का मोह छोडो अब। दादी और भाभी भी साथ लेकर नहीं गयी तो आप क्या साथ लेकर जाओगे ? यह कोई उमर है चूल्हा फूंकने की वह भी चार लायक बेटों के होते हुए।

अब उनको कौन समझाये अन्तर्मन की व्यथा। कहाँ यह खुली स्वच्छंद हवा और कहा वह फ्लेट की बंधक जिन्दगी। रात को देर से घर लौटने वाले बेटे पहले ही टारगेट के चक्कर में अधमरे होते हैं उनके साथ क्या दुःख बाँटा जाये। बहुएँ जिनके जीवन मे रामबाबू की भूमिका गेस्ट आर्टिस्ट से अधिक नहीं है। पोते - पोती के साथ रहे तो न उन्हे कभी अवसर मिला न कभी दिया गया। उनके लिये तो अभी भी वो अजायबघर के प्राणी ही है।

ऐसा नहीं था जगत की मार उनको ही पड़ रही हो, बेटों को भी पड़ रही थी सो फोन आते रहते बाबूजी कब आ रहो हो ?

आखिर रामबाबू ने माँ की सीख पर मंथन किया। बच्चों के पास आते - जाते रहे। आठ - दस दिन में कोई न कोई बहाना कर बिजली का बिल भरना अथवा अनाज की कटाई तथा खेतो को पानी पिलाने के नाम पर लौट आयेंगे। बारी - बारी से चारों लोकों (बेटों) के यहाँ अल्पकालीन प्रवास करते रहेगे।

जब वो अपने बेटे के वहाँ जाने के लिये रेल में डिब्बे मे चढ़े तो उनकी मानसिकता पहली बार स्कूल जा रहे डरे सहमे बच्चे की तरह है।

रेल में उन्हें पूरी रात नींद नहीं आयी। आखिर जर्जर होते इस शरीर की खाल का मालिक कौन है ?

अचानक हडबड़ाहट तथा यात्रिओं की हलचल तथा कुलियों की भाग दौड़ से पता लगा कि उनका गंतव्य आ गया।

बड़ा बेटा सुरेश जिसके वहाँ गये थे कार लेकर रेल्वे स्टेशन पर उनको लेने आया था। बच्चों को भी साथ लाया था। वंशवेल को देखकर रामबाबू की थकान उतर गयी।

फ्लेट पर पहुँचते ही रामबाबू परिवार के महाकुंभ को देखकर विस्मित और प्रसन्न हो गये - अरे बेटा गणेश, महेश, रमेश तुम सभी यहाँ कैसे वो भी सपरिवार बच्चों की धमाचौकड़ी और बहुओं को बहनों की तरह परस्पर बतियाते देखकर उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही

सामने की दीवार पर माँ का फूलों की मालाएँ चढ़ी तस्वीर देखकर भावुक हो गये रामबाबू। काश आज वो जीवित होती तो फ्लेट में बरस रहे परिवार सुख की बरसात में आनन्द लेती। जिसके लिये वे जीवन भर तरसती रही। स्वयं रामबाबू भी विस्मित थे आखिर आज यह सूर्य पश्चिम में उगा कैसे। घड़ी पल की फुर्सत नहीं मिलने वाले बेटे जो परस्पर व्हाट्सएप पर ही हाय - हैलो करते थे आज साथ कैसे। खैर, देर आये दुरस्त आये।

रामबाबू - तुम सब आज एक साथ यहाँ कैसे ?

गणेश - अरे बाबूजी, आपको सरप्राइज देने। आपके यहाँ आने का सुनकर हमने भी कार्यक्रम बना लिया।

सुरेश - हाँ बाबूजी कल रात से एक - एक कर सभी पहुँचे है। जीवन में कभी सरप्राइज भी होना चाहिये एकरसता टूटती है। दो कमरों का फ्लैट था और लग रहा था जैसे कोई बारात ठहरी हो। कमरे में बहुएँ रात तक बतियाती रही। दूसरे कमरे में बच्चे खिलखिलाते रहे। हाल में पिता के पास ही चारों बेटे चटाई पर ही लेट गये।

रामबाबू को लगा नाहक ही वे अपने बेटों के लिये भ्रान्त धारणा बना रहे हैं। बेकार में ही अज्ञात भय से डर हुए हैं।

रात भर बेटे बात करते रहे उनकी आँखों में बच्चों का बचपन तैर गया जब जानकी एक ही थाली में रोटी मसल देती और वो बड़ी खुशी से खाते थे।

उस रात रामबाबू को मीठी नींद आयी।

दूसरे दिन लगा था सब अपना कुटुब कबीला लेकर रवाना होगे। सवेरे पता लगा कि सब एक साथ दो - तीन दिन पिता के साथ रहेंगे।

हँसी - खुशी में दो दिन कहा निकले पता ही नहीं लगा। अगली सुबह सबका प्रस्थान है। रात्रि को लम्बे समय तक गपशप चली। दुनिया जहान की बातें हो रही है।

बड़े बेटे सुरेश ने कहा - बाबूजी अब आप बच्चों के साथ रहिये।

महेश - हाँ बाबूजी, आप अपने मन मुताबिक परिक्रमा कर सकते हो।

गणेश - आप गाँव में हाथ से रोटी बनाकर खाते है दुनिया हमको क्या कहेगी ? भाव विव्हल हुए रामबाबू जो आनंद के अतिरेक में थे, बोले - हाँ बच्चों, बात तुम सही और अच्छी कह रहे हो पर मेरे विचार से एक समस्या है। तुम चारों के फ्लेट दो कमरों वाले हैं, छोटे है, जिसमें एक कमरा बहू का तथा दूसरा बच्चों के पढ़ने लिखने का ....

सुरेश - बाबूजी, इस समस्या का एक समाधान है। हम सभी अपना दो कमरों वाला फ्लेट निकाल कर तीन कमरो वाला खरीद लें। आप भी शांतिपूर्वक अपने कमरे में बैठकर पूजापाठ कर सकते हैं।

रमेश - बाबूजी पहले ही हमारी बड़ी राशि किश्तो मे कट जाती है। बच्चों की महँगी पढ़ाई महँगी दवाई के कारण कुछ अतिरिक्त बचती भी नही है।

गणेश - बाबूजी, आप अगर गाँव के खेत और मकान बेचकर हम चारों की मदद कर दें तो समस्या का समाधान हो जाये।

तीनों भाइयो ने स्वर मिलाया - हाँ बाबूजी, जो काम आपके बाद में भी होना ही है वो आपके हाथो ही हो जाये।

रामबाबू लगता था कही खो गये उनके हाथो के सारे तोते उड़ गये।स

बांसवाड़ा, राजस्थान
मोबाइल - 9413398037

चित्रों में किशोर काबरा

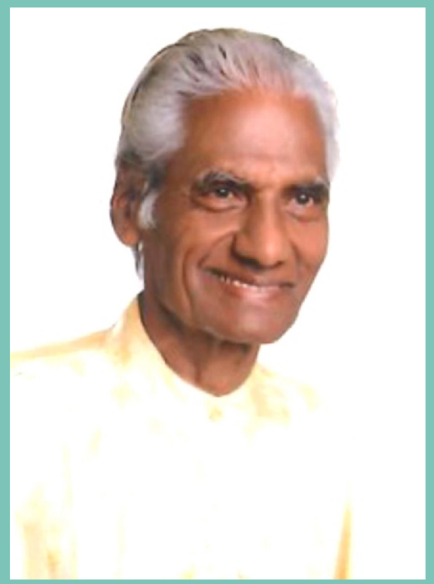

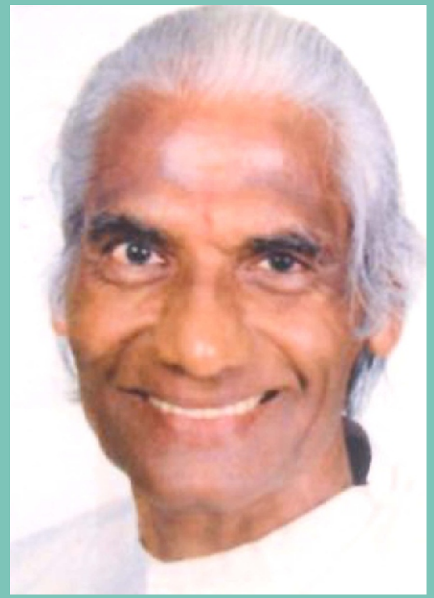

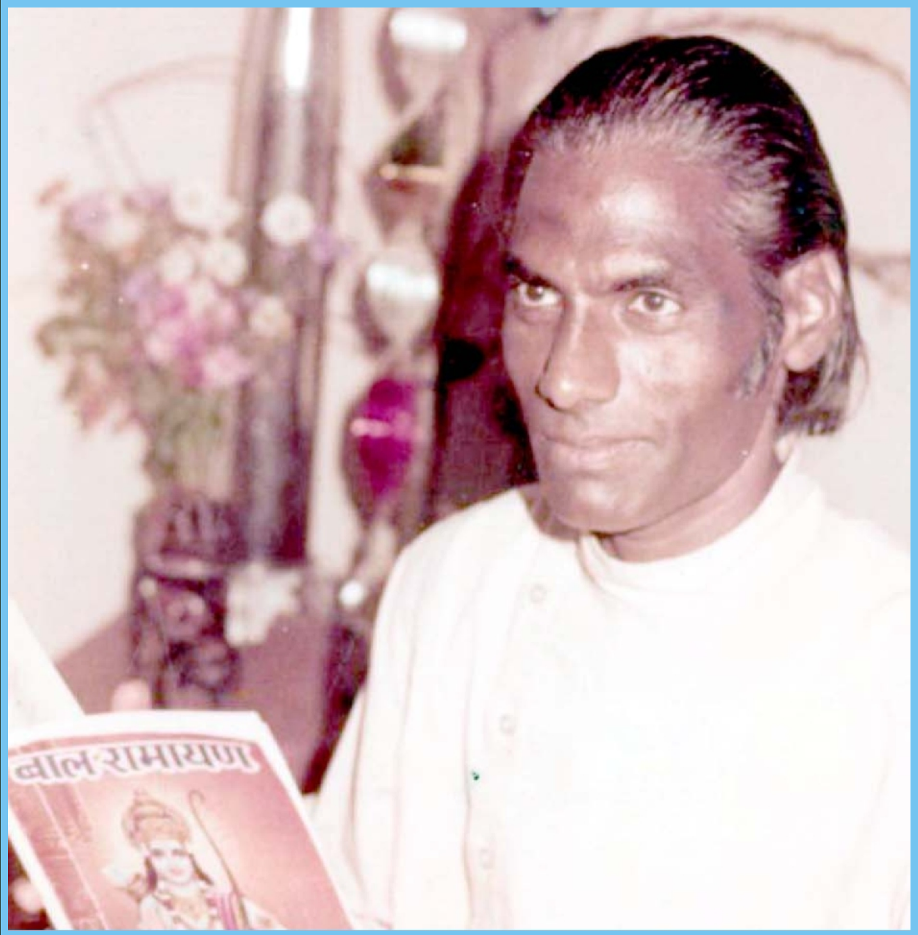

अविरत विकास
अग्रसर गुजरात
गुजरात दिखलाता है देश को प्रगति का मार्ग
• जनवरी से अक्तूबर-२०१९ तक आईईएम (इंडस्ट्रियल ऑन्ट्रेप्रेन्योर्स मेमोरेंडम) के अंतर्गत देश में हुए कुल पूंजी निवेश में ५१ फीसदी से ज्यादा हिस्सेदारी के साथ गुजरात देशभर में अव्वल
• निर्णायक सरकार का ऐतिहासिक निर्णय: राज्य की सभी आरटीओ चेकपोस्ट को कीया बंद
• नए MSME उद्योग शुरु करने के लिए गुजरात सरकार की क्रांतिकारी पहल : ३ साल तक राज्य में किसी भी प्रकार के निर्माण कार्य की मंजूरी तथा लाइसेंस के बगैर नई MSME इकाई शुरु करें
• सूर्य ऊर्जा रुफटॉप योजना: समग्र देश में पहली बार २ लाख परिवार अब सूर्य ऊर्जा से उत्पन्न मुफ्त बिजली का स्वयं करेंगे इस्तेमाल और बाकी बिजली बेचेंगे सरकार को
• व्हाली दीकरी योजना: वार्षिक २ लाख रुपए तक की आय वाले परिवारों को पहले दो बच्चों में से बेटियों को कक्षा १ में प्रवेश के समय ४ हजार, कक्षा ९ में ६००० और १८ वर्ष की आयु होने पर १ लाख रुपए की सहायता
• पहले चार चरणों की अभूतपूर्व सफलता के बाद सेवा सेतु कार्यक्रम के पांचवें चरण का राज्यव्यापी प्रारंभ: नागरिकों की समस्याओं का स्थानीय स्तर पर समाधान : सेवा सेतु कार्यक्रम के जरिए ९९.८१ फीसदी आवेदनों का स्थल पर ही त्वरित निस्तारण
गुजरात के सर्वांगीण विकास के लिए राज्य सरकार प्रतिबद्ध है
- नीतिनभाई पटेल, उप मुख्यमंत्री, गुजरात

SARDAR
GSFC Agrotech
Milieu of Benchmarks....
Beyond Convention
Gujarati
Hindi
Marathi
Our Endeavours :
Organized Agri-retail | Agri Advisory & Solutions
R&D backed Products - Boronated NPK, SAG Gold, AS (Granular) | D2D - eGram
GSFC Agrotech Limited
Wholly Owned Subsidiary of
GUJARAT STATE FERTILIZERS & CHEMICALS LIMITED
Fertilizernagar - 391 750, Vadodara, Gujarat. www.gsfclimited.com
Toll Free No.: 1800 123 5000

चित्रों में सुदर्शना द्विवेदी

रोहित कौशिक की कविताएँ

" युवा कवि रोहित कौशिक सदाशयता, करूणा और प्रेम के कवि हैं। वे बुरे समय से आक्रान्त होकर किसी अवसाद की गहराई में खो नहीं जाते बल्कि एक धनात्मक उम्मीद के सहारे उन तमाम अँधेरों के खिलाफ एक लौ जलाए रखते हैं। यह लौ मानवता के पक्ष में एक उजास भी है और एक ऊष्ण ऊर्जापिण्ड भी जो अंतत: एक प्रामाणिक भरोसे को जन्म देती है। 'पिघलती रहे नफरत की गाँठ' कविता में वे एक ऐसी बारिश की कामना करते हैं जो पत्तियों से मालिन्य धोकर उसे और हरा कर देती है। यह हरापन ही वह कवच है जिसके सहारे न सिर्फ आँधियाँ झेली जा सकती हैं बल्कि मनुष्य के मन में कहीं उग आई नफरत की गाँठ को भी गलाया जा सकता है। 'बच्चा' कविता युद्धोन्माद जन्य हिंसा के खिलाफ एक मार्मिक पुकार है। यह वह अपील है जो वर्चस्व की टुच्ची राजनीति के जरिये किए जाने वाले नरसंहार के विरूद्ध उस समय की जाती है जब कवि को लगता है कि इस विनाश से मुक्ति अभी नहीं तो कभी नहीं। कवि संसार के हर बच्चे को गोला-बारूद की गंध से बचा ले जाना चाहता है। 'भाषा' कविता मनुष्य के सभ्य होते जाने के समांतर भाषा के विचलन का द्वन्द्व है। धूमिल ने कहा था कि 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है'। कवि का दर्द है कि 'हम ज्यों-ज्यों सभ्य हुए/ भाषा असभ्य होती गई।' विडम्बना है कि हमारी भाषा में तमाम गालियाँ स्त्री/स्त्री-अंगों को लेकर हैं। ये गालियाँ स्त्री देह के मर्दन का वृत्तांत होती हैं। चूँकि यह भौतिक रूप से हर समय संभव नहीं अत: यह गलीज कार्य भाषा की फैण्टेसी में किया जाता है। शर्मनाक यह है कि ये गालियाँ समाज में किसी जायज गुस्से के प्रतिकार का प्रतीक मान ली गई हैं। इस भाषिक बलात्कार से छलनी हुई अस्मिता पुरूष दर्प को एक घिनौनी क्षणिक तृप्ति प्रदान करती है। कवि यहाँ हमें भाषा को लेकर अपने बर्ताव और इस तरह उसके बरतने की तमीज को लेकर सचेत करता है। जैसा कि कहा रोहित कौशिक के कवि-मन में युद्ध की बर्बरता के खिलाफ एक गहरी बेचैनी भरी हुई है। 'युद्ध' कविता भी युद्ध के विनाशक परिणामों और सत्ताओं की अमानवीयता के विपक्ष में एक दस्तावेज है। वे हथियारों के शोर में दब गई दुर्दान्त चीखों को सुनने का उपक्रम करते हैं। कविता को अतिरिक्त भाषिक विस्तार देते हुए वे क्लाइमेक्स में एक तंज कसते हैं कि 'लड़ो कि नाक अपनी हद में रहे/ कि लाशों की बदबू झेलने के लिए नहीं/ प्रेम की खुशबू सूँघने के लिए बनी है नाक।' 'पुल' कविता पढ़ते हुए मुझे वरिष्ठ कवि नरेश सक्सेना की पंक्तियाँ याद आती रहीं-'पुल पार करने से पुल पार होता है/ नदी पार नहीं होती/ नदी पार करने के लिए/ नदी में धँसना होता है।' यहाँ कवि पुल जो कि दो सिरों को जोड़ता है, को कविता से ओझल कर इसके नीचे बसी जिंदगी को कविता के केन्द्र में ले आता है। हम जानते हैं कि इस देश में कोई भी पुल सैकड़ों गृहस्थियों की छत भी होता है। कवि की संवेदना इसी ओझल और उपेक्षित जीवन के साथ है। 'झोक्काओं के बच्चे' में कवि ने एक अंचल का दृश्य उपस्थित किया है। यहाँ केवल गुड़ बनाने की पारम्परिक प्रक्रिया का शुष्क विवरण नहीं बल्कि इस व्यवसाय में अपना सुख ढूँढलेने वाले बच्चों का खेल भी वर्णित है। हमारे अभाव, हमारे संघर्ष किस तरह से हमारे मनोरंजन में तब्दील हो जाते हैं यह कविता इसी मर्म को उद्‌घाटित करती है। 'हिलना' कविता में गति की जीवन्तता को लेकर कई आकर्षक पंक्तियाँ हैं। कवि इस गति में जीवन के अनेक आयाम ढूँढलेता है लेकिन क्लाइमेक्स में एक प्रश्नाकुल पंक्ति छोड़ देता है-? पर हिलने के बाद भी/ हम वहीं क्यों हैं?' यही पंक्ति समूची व्यवस्था की जड़ता पर एक कड़ा प्रहार है। 'गाँव से गाँव गायब है' कविता में नॉस्टेल्जिया है। हमारे अंचलों में आए वे परिवर्तन हैं जो कहीं न कहीं विस्थापन, शहरीकरण और व्यवसायीकरण के प्रतिफल हैं। कवि की चिंता हमारे लोक में उन दृश्यों और ध्वनियों को लौटाने की हैं जो इस मायाजाल में गायब हो गए हैं। 'इस खण्डित समय में' कविता कलबुर्गी की शहादत को समर्पित है। इस बहाने वे सत्तातंत्र के उस षड़यंत्र को बेनकाब करते हैं जो जनता को अपढ़और मूढ़बनाए रखने के लिए कटिबद्ध है। सत्ता को खबर है कि कोई भी तार्किक, वैज्ञानिक और प्रगतिशील चिन्तन सत्ता के खिलाफ होता है। इसीलिए उसका सबसे बड़ा शत्रु वही है जो जनता को अज्ञान-अंधविश्वास के अँधेरे से मुक्त करने का प्रयास करे। 'असहमति' शृंखला की तीनों कविताएँ अनूठी हैं। असहमत होना जीवित होने का पर्याय है। असहमति का अर्थ ही वर्तमान की नामंजूरी और भविष्य की बेहतरी है। एक असहमति हजार जीवित स्पंदनों से भरी होती है। लेकिन यह बात सत्ताधीश कभी नहीं समझते, न समझेंगे। युवा कवि रोहित कौशिक की कविताएँ नफरत और युद्ध के खिलाफ प्रेम, सदाशयता, मानवीयता और धनात्मक सोच की कविताएँ हैं। ये कविताएँ भाषा-शिल्प से उपजा चमत्कार न होकर अपने साथ चलने का आत्मीय आग्रह है। "

निरंजन श्रोत्रिय

पिघलती रहे नफरत की गाँठ

पेड़ों पर गिर रही है बारिश
बारिश की बूँदों से
धुल रही है पत्तियों की धूल।
धुली पत्तियाँ
और हरी हो गई हैं
पेड़ों को ऊर्जा देने के लिए
ताकि बुरे समय में
झेल सकें पेड़
अनगिनत आँधियों को।

दुःख की बारिश से
साफ हो रहा है
मन का मैल।
मन की छाल पर
बरसों से जमे मैल ने
जगह छोड़ दी है
ताकि कुछ समय बाद
दोबारा जम सके
मानवीय कमजोरी की
कोई और परत।

मुझ पर बरस रहा है
तुम्हारा प्यार
प्यार के ताप से
पिघल रही है
जिंदगी की टहनियों पर
सुख सुविधाओं की नमी पाकर
गाँठ बन चुकी
नफरत की गंदगी।
चाहता हूँ
मुझ पर
लगातार बरसता रहे
तुम्हारा प्यार
ताकि प्यार के ताप से
अनवरत पिघलती रहे
नफरत की गाँठ।

बच्चा

बच्चा चौराहे पर रखी
तोप देखकर
तोप के बारे में
पूछता है पिता से।
पिता युद्ध में
तोप के महत्व का
बखान करते हुए
अपनी जुबान को तोप बनाकर
दागने लगते हैं गोले।

अगले दिन
अखबार में छपता है
दुश्मन देश की तबाही का फोटो
जिसमें रो रहा होता है
एक बच्चा।

बच्चा फिर पिता से
उस बच्चे के रोने का
कारण पूछता है।
पिता फिर अपनी जुबान को
तोप बना देते हैं।

अब बच्चे के दिमाग में
फूट रहे हैं गोले
कि पिता ने
बच्चे के दिमाग को
बना दिया है युद्ध स्थल।

बड़े ही नहीं
बच्चे भी लड़ते हैं एक युद्ध
और हमारा बचपना यह
कि बारूद के ढेर पर बैठे
बचपन को भस्म करने को ही
हम सबसे बड़ी जीत मान लेते हैं।

भाषा

हम ज्यों-ज्यों सभ्य हुए
भाषा असभ्य होती गई।

सभ्य समाज में
जिस समय
असभ्यता हमारी पहचान बन रही थी
उसी समय भाषा में
हमारी माँ-बहनें
पूरे आदर और सम्मान के साथ लाई गईं।
उनके गुप्तांगों को बख्शी गई इतनी इज्जत
कि उन्हें मंत्र बना दिया गया
ताकि भाषा के इस लालित्य से
कोई भी मंत्रमुग्ध हुए बिना न रह सके।

यह उन दिनों की बात है
जब हमने कपड़े पहनना नहीं सीखा था
हम नंगे थे
लेकिन भाषा पर एक आवरण चढ़ा था
इशारों की भाषा
हमारे गुप्तांगों तक नहीं घूमती थी।

फिर अपने नंगेपन पर हमे शर्म आने लगी
हमने सीख लिया कपड़े पहनना
लगाए हजार मुखौटे
लेकिन भाषा नंगी हो गई
अब हमें शर्म नहीं आई
भाषा में ठूँस-ठूँस कर भर दी गई बेशर्मी।

इस दौर में हम जितना ऊपर उठते रहे
भाषा उतनी ही नीचे गिरती रही।

नीचे गिरते हुए
भाषा ने तलाशनी चाही अपनी जमीन
लेकिन भाषा को अपनी जमीन पर
गधे दौड़ते नजर आए
इससे पहले भाषा कुछ समझ पाती
उसकी जमीन गधों के कब्जे में आ चुकी थी।

इस तरह इन्सान गधों के गुण गिनाते हुए
गधों की भाषा बोल रहे थे
और गधे
इन्सान की भाषा बोलने की कोशिश कर रहे थे।

इस दंगल में गधों को कूदते देख
घोड़े भी कहाँ चुप रहने वाले थे
घोड़ों ने भाषा में आतंक की सारी हदें तोड़ दी।
यह भाषा के आतंकवाद का नया दौर था
जिसमें भाषा से ही दागी जा रही थी गोलियाँ
भाषा से ही उगला जा रहा था जहर।

इस माहौल में
भाषा की गिरावट से दुखी एक गऊ आदमी
गोमाता की जय बोलते हुए
भाषा का गोबर उठा रहा था
इसी समय एक दूसरा गऊ आदमी
बड़बड़ा रहा था-
मादर....... ने कर दी है
भाषा की ऐसी की तैसी।

हालांकि अब भाषा में अंगार
और हाथों में गुलाब लिए
दिल तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं
कुछ शातिर लोग
जबकि दिल को दिल से जोड़ने वाला
भाषा का पुल जर्जर हो चुका है
कि जर्जर हो चुकी है एक सभ्यता।

युद्ध

तब भी, जबकि किसी भी हाल में
टाला न जा सके
युद्ध वीरता का प्रमाण पत्र नहीं है
युद्ध इंसानियत की सबसे बड़ी हार है।
तमाम जरूरतों के बावजूद
युद्ध महाविनाश की क्रूरतम लीला है
सिर्फ इतिहास में दर्ज होने के लिए
लड़े जाते हैं युद्ध
लेकिन इतिहास में दर्ज नहीं होती चीखें
इतिहास में दर्ज होते हैं
बन्दूक, तोप, तलवार, गोला और बारूद।

यानी जिस इतिहास से
हमें पढ़ाया जाता है
वीरता का पाठ
वह बारूद का इतिहास है
कि हमारे अन्दर
पैदा होता रहे बारूद
जरूरत पड़ने पर बारूद में
कभी भी लगाई जा सकती है आग।

युद्ध में दर्ज होती हैं शौर्य गाथाएं
दर्ज नहीं होता
मांओं-पिताओं, बेटे-बेटियों
और विधवाओं का दुख
राजा कहते हैं
कि हम दुख से पार पाने को
लड़ रहे हैं बहुत जरूरी युद्ध
मगर युद्ध खोद देता है एक और दुख की नींव
इस नींव में दबकर दफन हो जाती है
शौर्य गाथाएँ सुनती हुई जनता।

लम्बी होती राजाओं की नाक
लड़ती है अहम् का दंगल
मगर दंगल की धूल ही
गिर जाती है प्रजा की आँखों में।
शायद यहीं से निकला हो
आँखों में धूल झोंकने का मुहावरा।
धीरे-धीरे दंगल की धूल
जम जाती है
प्रजा की श्वसन नलियों में
घुटने लगता है प्रजा का दम
और इस तरह कट जाती है
राजाओं की नाक।

राजा दंगल के अखाड़े में
ढूँढते रहते हैं
अपनी कटी हुई नाक
इसलिए उन्हें प्रजा की आँख में आँसू
देखने की फुरसत नहीं मिलती।
उन्हें नहीं पता
कि आँख और नाक के बीच
होता है गहरा सम्बन्ध
कि साफ दृष्टि से ही
बचाई जा सकती है अपनी नाक।

जब तक नाक है
लड़े जाते रहेंगे युद्ध
'नाक में दम' जैसे मुहावरे
चिरस्थायी बने रहेंगे
युद्धोन्माद पैदा करने वाले बयानबहादुरों
लड़ने का इतना ही शौक है
तो पहले अपनी नाक से लड़ो
लड़ो कि नाक अपनी हद में रहे
कि लाशों की बदबू झेलने के लिए नहीं
प्रेम की खूशबू सूँघने के लिए बनी है नाक।

पुल

नए पुल बनने के बावजूद
जुड़ कहाँ पा रहे हैं हम
खोखला है उनका दावा
कि जोड़ने के लिए
पुल बनना जरूरी है
रोज बन रहे हैं नए पुल
जबकि रोज कटते जा रहे हैं हम
एक-दूसरे से
कि कटना इस समय का सबसे बड़ा यथार्थ है।

पुल पर तेज रफ्तार से दौड़ना
जिन्दगी फतह कर लेना नहीं है
ऊँचाई को पार करना होता है ठहरकर
कि ठहरकर ही बनाया जा सकता है
भरोसे का पुल।

कभी-कभी
ठहर जरूर जाते हैं पुल पर
नीचे देखते भागते-दौड़ते लोगों को
कभी नीचे बह रहे पानी में
अपना अक्स देखने की कोशिश करते
देखते प्रकृति का सौन्दर्य
कभी आकाश में उड़ते पक्षियों को
पर नहीं देख पाते
पुल के नीचे बने घोसलों को
जहाँ बार-बार लौटते हैं पक्षी
कि पुल के ठीक नीचे बसी होती है
एक अलग दुनिया।

क्या पुल पर खड़े होकर
देख सकते हो ?
पुल के ठीक नीचे बसी दुनिया ?

झुको, नीचे झुको
करो कुछ कसरत
देखो, सीमेन्ट और लोहे पर नहीं
घोसलों पर टिका है पुल।

पुल पर खड़े होकर
जिस दिन भी
इतना नीचे झुक जाएंगे हम
कि देख सके
पुल के ठीक नीचे बसी दुनिया
उसी दिन
पुल गिरने हो जाएगे बन्द
कि बन्द हो जाएगा भरोसा गिरना।

झोक्काओं के बच्चे

कोल्हू के मैदान पर
बिछ चुकी है
खोई की सफेद चादर
कि सर्दी आ गई है।

कि जैसे हिमपात के बाद
हिमाच्छादित हो
कोल्हू का मैदान।

एक-दूसरे पर खोई फेंक
सफेद चादर पर खेल रहे हैं
चिथड़ों में कुछ बच्चे।
सफेद चादर ही नहीं
गद्देदार बिछौना है इनके लिए
जिस पर जितना भी कूदो
चोट लगने का डर नहीं
जिस पर सर्दी की गुनगुनी धूप में
थककर सो गए हैं बच्चे।

भद्रजनों के मखमली बच्चे नहीं हैं ये
जो कूदते और सोते हैं मखमली गद्दों पर

जो हिमपात के बाद
एक-दूसरे पर बर्फ फेंक
खेलते हैं हिमाच्छादित पहाड़ी पर।

ये बच्चे हैं उन झोक्काओं के
जो झोंक देते हैं अपनी जिंदगी
दूसरों को मिठास देने में।

रात भर जागकर
झोंक रहे हैं अपने सपने।
झोक्काओं की मेहनत का रंग
घुल रहा है धीरे-धीरे
गन्ने के रस में।
सपने भट्टी में तपकर
इस द्रव्य में घुलेंगे
खौलेंगे कड़ाह में
चाक पर फैलकर गुड़ बन जाएँगे।

गुड़ चला जाएगा घुलने मुँह में
पर झोक्का बने रहेंगे
कोल्हू के बैल।

हिलना

हिल रही हैं पत्तियाँ हवा से
हिल रही है
पेड़ की फुनगी पर बैठी चिड़िया
चिड़िया की चोंच में तिनका
हिल रहा है
यह दृश्य देखते हुए हिल रही है
मेरी दृष्टि।

सफर में हिल रहे हैं हम
झूले पर हिल रहा है बच्चा
हिल रही है बच्चे की गेंद
धड़कता हुआ दिल हिल रहा है
प्यार की आग में जलते हुए
हिल रहे हैं दो अस्तित्व।

जघन्य हत्याओं से हिल रहा है समाज
विश्वासघात से हिल रहा है विश्वास
धरने और प्रदर्शन से
हिल रही है सत्ता।

समय को आगे ठेलते हुए
हिल रही है घड़ी की सूई
हिलती हुई आँखें देख रही हैं
सारा जहाँ
कि हिल रही है सारी धरती।

पर हिलने के बाद भी
हम वहीं क्यों है ?

गाँव से गाँव गायब है

कोल्हू का बैल
गायब है कोल्हू से
गन्ने से गायब है रस
गुड़ से वो मिठास गायब है
जैसे गायब है बोलचाल से मीठापन।

नीम नीचे से चौपाल गायब है
गायब है हुक्के की गुड़गुड़ाहट
गुड़गुड़ाहट से निकलता
सहकारिता का संगीत गायब है
लोक से गीत गायब है।

गायब है नुक्कड़ से पनघट
हवा से गायब है खुशबू
जिंदगी की छत से
गायब हैं मेल-मिलाप की कड़ियाँ
प्यार की धरती से
गायब है विश्वास की गोबरी
मिट्टी से गायब है सोंधापन।

गायब है रोटी और साग से
मिट्टी के चूल्हे की गर्माहट
चूल्हे के पास
परिवार संग मिल-बैठ
खाने का रिवाज गायब है।

उमंग और उल्लास की नदी से
गायब है कागज की नाव।

होने और गायब होने के बीच से
जो गायब नहीं होना चाहिए था
वह सब कुछ गायब है
इसीलिए तो
गाँव से गाँव गायब है।

इस खण्डित समय में

(प्रगतिशील विचारक एम.एम. कलबुर्गी की हत्या पर)
वे चाहते हैं
कि हम उलझे रहें
अंधविश्वासों के मकड़जाल में
ताकि बिल्कुल भी न जले
हमारे दिमाग की बत्ती।

दिमाग की बत्ती
आग बनकर जला सकती है
मठाधीशों के दरबार
इसलिए वे चाहते हैं
कि हमारे चेतना-तन्तुओं में
प्रवाहित न हो बिजली।

वे चाहते हैं
कि हम ठूँठ बने रहें
ताकि हमें काटकर
इस्तेमाल कर लिया जाए
मठों और महलों की खिड़कियों-दरवाजों पर।
वे हमारी हड्डियों को तराशकर
हथियार बना डालते हैं
और उन्हें इस्तेमाल करते हैं
हमारे ही खिलाफ।

उन्हें पता है
कि उन पर कभी भी
पड़ सकते हैं पत्थर
इसलिए वे पत्थर को ही
भगवान बना देते हैं
और उन पर बरसने लगते हैं फूल।

वे सिर्फ अँधेरे को महत्व देते हैं
और हमें कहते हैं
कि अँधेरे में प्रकाश देखने की कोशिश करो।

वे ईश्वर की सत्ता के बहाने
हमें प्रकाशित करने का ढोंग रचते हैं
और बार-बार धकेल देते हैं
अँधेरे कुँए में।

वे आस्था की सूई से
सिल देते हैं हमारे होंठ
और हमें बना देते हैं
एक जिन्दा लाश।

वे ईश्वर की तरफ
उठने वाली हर उँगली को
लैगपीस की तरह
चबा जाते हैं
ताकि कोई उँगली न कर सके
और कायम रहे
धर्म की चाशनी में लिपटा साम्राज्य।

उनसे और ईश्वर से
सवाल पूछने वालों को
वे ईश्वर के पास पहुँचा देते हैं
और इस तरह पृथ्वी पर
कभी नहीं उतरता ईश्वर
ईश्वर की किरपा से यूँ ही घूमती रहती है पृथ्वी
किरपा के सहारे पृथ्वी पर बेधड़क घूमते रहते हैं वे।

असहमति-एक

जीवन को कोई अर्थ
नहीं दे पाती सहमति
असहमति ही बनाती है
जीवन को अर्थपूर्ण।

गुरूत्वाकर्षण से
सहमत है पौधे की जड़
जबकि असहमत है तना
असहमति के तने पर ही
विकसित होते हैं
पत्तियाँ, फूल और फल।
धरती के नीचे का गहन अन्धकार
असहमत है उजाले से
लेकिन जड़े इस गहन अन्धकार में
खोज लेती हैं
अपने हिस्से के लवण और पानी
गहन अन्धकार में ही
फूटता है सृजन का बीज।

धरती के ऊपर का उजाला
असहमत है अन्धकार से
लेकिन इस उजाले से ही
सम्भव है पौधे का पोषण।

सहमति छीन लेती है
सोचने-समझने की शक्ति
असहमति ही बनाती है
मस्तिष्क को उर्वर।

सहमति से नहीं
असहमति से ही
निकलता है कोई रास्ता।

असहमति-दो

एकदम से अगर वह
सहमत हो जाएगी
तो कैसे कहा जाएगा
इसे प्रेम।

पहले वह असहमत होगी
फिर कुछ दूर चलेगी
असहमति के रास्ते पर।

असहमति के रास्ते ही
हरा होगा
सहमति का प्रेम।

असहमति-तीन

इस दौर में असहमत होने पर
आप घोषित किए जा सकते हैं देशद्रोही
कि इस समय
सबसे बड़ा धर्म है सहमति।

राष्ट्रवाद, धर्म और संस्कृति को
ढाल बनाकर
आपकी बुद्धि पर
तरस खाया जा सकता है
कि इस समय
बुद्धि पर जोर देना
सबसे बड़ा पाप है।

सिर्फ हाँ में गर्दन हिलाइए
हाँ में हाँ मिलाइए
यदि भूल से ना में
हिल जाए गर्दन
तुरन्त राम नाम जपते हुए
भारत माता और गोमाता के
नारे लगाइए
कि दबोची जा सकती है
स्वप्न में ना करती हुई गर्दन भी।

असहमत होने का अर्थ है
कि आपको इस देश की मिट्टी से
प्यार नहीं है
उन्होंने मिट्टी में सहमति की
इतनी ज्यादा भांग मिला दी है
कि किसानों की आत्महत्याएँ भी
उन्हें षड़यंत्र लगती हैं।

वे चाहते हैं
कि मात्र धनात्मक आवेश के सहारे ही
जारी रहे धारा का प्रवाह
जबकि
धनात्मक तथा ऋणात्मक आवेश के बिना
धारा का प्रवाह सम्भव नहीं।

जीवन की असहमति है मृत्यु से
मृत्यु की असहमति है जीवन से
कि असहमति का नाम ही जीवन है। स

रोहित कौशिक

जन्म : 12 जून 1973, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में।

शिक्षा : एम.एस-सी., एम. फिल. (वनस्पति शास्त्र) चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ से,पीजीडी (पत्रकारिता)

सृजन : देश के प्रतिष्ठित अखबारों में संपादकीय पृष्ठ पर आलेख प्रकाशित। दो पुस्तकें (21वीं सदीः धर्म, शिक्षा, समाज और गाँधीः लेख संग्रह) एवं इस खण्डित समय में' (कविता-संग्रह) प्रकाशित।

सम्प्रति : स्वतंत्र पत्रकारिता।

सम्पर्क : 172, आर्यपुरी, मुजफ्फरनगर - 251 001 (उ.प्र.)

मोबाइल : 99179 01212

ई-मेलः rohitkaushikmzm@gmail.com

प्रतापसिंह सोढ़ी

सूना पिंजरा

ऑफिस से लौटने के बाद जैसे ही संगीता ने घर के आँगन में प्रवेश किया तो हमेशा की तरह उसकी नज़र नीम के पेड़ की शाख पर टंगे तोते के पिंजरे पर पड़ी। पिंजरा नदारद था और फर्श पर चने की दाल के दाने और हरी मिर्च के टुकड़े बिखरे पड़े थे। पानी पीने की कटोरी लुढ़की पड़ी थी और पिंजरा दूर औंधा पड़ा था। उसका माथा ठनका। उसके पाँव फर्श से चिपक गए और चेहरे पर बदहवासी छा गई। इससे पहले वह घर वालों से कुछ पूछे, दरवाजे की चौखट पर खड़ी उसकी सास ने सफाई दी 'बहू, आज तो अनर्थ हो गया। तुम्हारे मिट्ठू को बिल्ली मुँह में दबोच कर भाग गई। उसे छुड़ाने के बहुत यत्न किये हम सबने, लेकिन निराशा ही हाथ लगी। शायद ईश्वर को यही मंजूर था।' 'लेकिन इतने ऊपर बिल्ली पहुंची कैसे ?' दुःखी होते हुए उसने पूछा।

'यह तो तुम बिल्ली से ही पूछो।'

'बताओ यह सब कैसे हुआ।' इस बार उसकी पीड़ा में क्रोध का मिश्रण था। 'वकील की तरह मुझसे जिरह न करो। जो होना था सो हो गया। परिन्दा ही तो था, जिसे मुक्ति मिल गई।'

संगीता विचारोंमें खो गई। दस साल के वैवाहिक जीवन में भी उसकी गोद सूनी ही थी और बांझपन के इस अभिशाप के कारण ही उसे नित्य सास की प्रताड़ना, तानों और पति के तिरस्कार का शिकार होना पड़ता था। घर में एकमात्र तोता ही था, जो उसके दुःख का सहभागी था। आते-जाते वह उसे राम-राम करता। पिंजरे से बाहर चोंच निकाल अपने पंख फड़फड़ाता और अपनी छोटी-छोटी आँखें मटकाते हुए प्यार का इज़हार करता। वह सब कुछ भूलकर एक छोटा-सा परिंदा बन जाती। उसके पंख सहलाती, उसकी चोंच में अपनी ऊँगली डालती और बड़ी देर तक दोनों एक दूसरे को निहारते रहते। इतना सबकुछ सोचकर उसकी पीड़ा क्रोध में तब्दील हो गई। आँसुओं से लबरेज उसकी आँखों ने खाली पिंजरे को देखा और चीख पड़ी 'मार डाला मेरे मिट्ठू को सब लोगों ने। क्या बिगाड़ा था उस नन्हें परिंदे ने, क्या जलन थी उससे? इसलिए कि वह मेरे दुखों को बांटता था। मेरे बांझपन का बदला उससे क्यों लिया। अगर बदला ही लेना था तो मुझे मार डालते।'

वरदान

हल्की-हल्की बारिश तेज हवा और शीत की लहर में रोज़मर्रा की तरह कचरे से पोलीथीन, प्लॉस्टिक, पुट्ठे, शीशियाँ एवं अन्य सामान बीनने वाली दो सहेलियाँ लक्ष्मी एवं दुर्गा अलसुबह ही घर से निकल पड़ीं।

खाली प्लॉट में कपड़े में लिपटा एक पैकेट लक्ष्मी को दिखाई दिया। पास जाकर उसने उसे उठाया तो उसमें हरकत शुरू हो गई और दो नन्हें हाथ पैकेट से बाहर आ गये। वह समझ गई कि कोई अपना पाप कचरे के हवाले कर गया है। कपड़े में लिपटे नवजात शिशु का शरीर सर्दी के कारण सिकुड़ गया था।

पास खड़ी उसकी सहेली दुर्गा ने उसे डाँटा 'जहाँ से उठाया है, वहीं रख दें इस पाप को।' पिछले पंद्रह वर्षों से लक्ष्मी औलाद के लिए तरस रही थी। वह अपने आपको रोक नहीं पाई और उसने उस शिशु को अपनी छाती से चिपका लिया। दुर्गा चिल्लाई- 'पगली हो गई है लक्ष्मी तू, न जाने किसके पाप को तूने छाती से चिपका रखा है। वहीं रख दे इसे और चल यहाँ से।'

दुर्गा की बातों का लक्ष्मी पर कोई असर नहीं हुआ। ममता की तरंगें उसके भीतर सुख एवं शीतलता का संचार कर रही थी और वर्षों से अधूरी आस को पुख्तागी दे रही थी। हर्षित मुद्रा में वह बोली 'दुर्गा मैं इसे पालूँगी कचरे के ढेर में मिले इस हीरे की चमक मेरी अँधेरी दुनिया में उजाला भर देगी। जिसे तू पाप कह रही है, मेरे लिए वह वरदान है। ले संभाल मेरा झोला, मैं अपने बच्चे को लेकर घर जा रही हूँ। उसे जाते हुए दुर्गा देखती रही, लेकिन लक्ष्मी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। स

5, सुखशांति नगर
बिचौली हप्सी रोड, इन्दौर 452016
मो.09479560623

शोभा जैन

विदेशी पंखों की उड़ान

इन दिनों जिसे देखों अंग्रेजी के ही गुणगान गाये जा रहा है। चाय वाले से लेकर उद्योगपति, दुकानदार हो या कम्पनी का नाम आजकल अंग्रेजी में ही हैं -'सुंदर ब्रदर एन्ड सन्स', गाँव की चोपाल पर बैठे कुछ लोग बातें कर रहे थे। तभी दूर एक गुमठी के पास चाय के ठेले पर उबलती चाय की और इशारा करते हुए एक युवा ने कहा -'चाय वाले के ठेले पर भी अंग्रेजी का खुमार छाया है -'राजा टी स्टाल'। मार्डन चाय बोलकर बेची जा रही है। एक चौदह साल के किशोर ने अपने बालों को उँगलियों से पीछे की ओर जमाते हुए कहा - भैया आजकल,नाई पर भी अंग्रेजी छाई हुई है --'लक्की हेयर सेलून हैं अपने गांव में तभी पास ही खड़े एक परचून की दुकान वाले ने मुँह में रखी बीड़ी सुलगाते हुए पूछा-- काय भैया, अंग्रेजी में लिखने से गिराकी बढ़जाती का ? साथ ही खड़े एक दूधवाले ने हलकी सी मुस्कुराहट के साथ उत्तर दिया - ग्राहकी बड़े न बड़े दद्दा पैसे वाले लोग जरूर अपने ग्राहक बन जाते है। मैंने अपनी दुकान का नाम जबसे कृष्णा मिल्क पार्लर रखा है बड़े बड़े लोग मेरे ग्राहक बन गए हैं। उन्ही के बीच खड़े एक मध्यमवर्गीय शिक्षित पिता ने कहा -- इतना ही नहीं ' बच्चे भी आजकल अंग्रेजी पोयम से ही शिक्षित हो रहे दादी नानी की कहानियों से तो बोर हो जाते हैं उनकी जगह तो अब स्पाईडरमेन ने ले ली। अंग्रेजी से इतना मोह बढ़ा की लोगों ने अपनी भाषा क्या अपनी जमीन गाँव ही छोड़ दिए और बोरिया बिस्तर बाँध के शहर की ओर चल दिये, जिसे देखो आजकल अंग्रेजी की खेती कर रहा है जाने कौन सी अंग्रेजियत की फसल उगाने पर तुले हुए हैं लोग सब-के -सब अंग्रेजी के पंख लगाए ऊँची उड़ान भरना चाहते है। तभी वहां से गुजरते एक शिक्षक उनकी इस चर्चा में शामिल हो गए और बोले ---- "ये वे लोग हैं जो प्रेम हिंदी से करते है, हिंदी के बिना ये चल फिर नहीं सकते परन्तु इन ऊँची उड़ान भरने वालों को यह समझना चाहिए कि पंछी कितनी भी ऊँची उड़ान भरे उसे दाना-पानी के लिए आना जमीन पर ही पड़ेगा,कहीं एक दिन ये ऊँची उड़ान के पंछी अंग्रेजी के लालच में इतनी ऊँची उड़ान न भर लें कि पुनः अपने घर ही लौटकर न आ सकें। ऊँचें पंखों से भूख,प्यास नहीं मिटाई जा सकती पेट भरने के लिये तो उन्हें धरती पर लौटकर आना ही पड़ेगा। शिक्षक की बात से चौपाल का माहौल कुछ बदल गया था सभी धीमें स्वर में सहमती जताते हुए बोले--'माट्साब बात तो सही कह रहें हैं।' ......दूर खड़े बच्चे अब पास आ गए थे जहाँ शिक्षक की कही इस बात पर तालियाँ बज रही थी स

शुभाशीष 201-ए-369 सर्वसम्पन्न नगर,इंदौर
पिन - 452016 (म.प्र.)

कथाराग-18

समावर्तन के अधबीच कहानी केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

विशेष सम्पादक : **मुकेश वर्मा**
सहयोग : **श्रीराम दवे**

कथाराग का अट्ठारहवाँ आलाप

प्रेम ही ऐसा राग जिसमें हर सुर समाहित है

आज की बैठक में संतोष चौबे की कहानी 'सतह पर तैरती उदासी'

"सतह पर तैरती उदासी " -कविता में दुःख की यह एक खूबसूरत पंक्ति है लेकिन किसी रस में छलछलाती प्रेम-कहानी का उन्वान भी हो सकती है, ऐसा तो सोचा नहीं जा सकता जब तक कि उस कहानी को पूरमपूर अंत तक पढ़ ना लिया जाए। एक कस्बानुमा छोटे शहर के खुशनुमा वातावरण से कहानी का आगाज होता है जहाँ विशाल नदी को रोककर बनाया गया बांध, नदी के किनारों को उठाकर बनाये गये तटबंध, तटबंध के साथ-साथ चलती विशालकाय फैक्टरी, धुँआ उगलती चिमनियाँ और चौबीसों घंटे चलने वाली यांत्रिक मशीनें, जैसे इस शहर के दिल की धड़कन, जो उसके शरीर में रक्त का संचार करती।

फैक्टरी के आसपास मजदूरों, सुपरवाइजरों और अफसरों के रहने के लिये अलग अलग कॉलोनियाँ, जो अपने बगीचों, दालानों और रसोई से उठते धुँएं के आधार पर पहचानी जा सकती। कॉलोनी के बीचोंबीच एक कम्यूनिटी सेंटर, उसी के पास छोटा सा अस्पताल और क्लब तथा क्लब के पीछे एक खुला स्टेज, जिस पर राष्ट्रीय पर्वों और त्यौहारों के दिनों में रंगारंग कार्यक्रम आयोजित किये जाते। स्टेशन के सामने वाली सीधी सड़क पर पसरा हुआ बेतरतीब बाजार, जो करीब एक किलोमीटर तक सीधे जाकर, घरों और मकानों से खपरैली बस्ती में तब्दील होता हुआ, खुली सड़क तक पहुंचते-पहुंचते अदृश्य हो जाता. बाजार के दोनों ओर खुलती रक्तवाहिनियों की तरह की गलियाँ, जिनमें मूल बाजार की सहयोगी संस्थाओं की तरह एस.टी.डी. पी.सी.ओ., स्क्रीन प्रिंटिंग सेंटर, टाइपिंग और कम्प्यूटर इंस्टीट्यूट, छोटे मोटे छापाखाने, लेडीज टेलर्स और आकाश बैंड जैसी छोटी छोटी दुकानें जो मूल बाजार से शक्ति पाती और उसी के बल पर टिकी।

करीब करीब रोज शाम को और विशेषकर साप्ताहिक बाजार के दिन, बाजार और उससे सटी हुई गलियाँ, सामानों से अंट जातीं. सस्ता सजावट का सामान, किराने के सामान के ढेर, फल और सब्जियाँ, लट्ठे के बने कपड़ों के छोटे छोटे पहाड़, बच्चों के खिलौने और गुब्बारे, एक मेले जैसा माहौल बनाते और उनके बीच घूमते, फैक्टरी की एकरसता से दूर, मजदूर और अफसर, उनके बच्चे और पत्नियाँ, एक अजब रसमय उत्तेजक और रंगीन वातावरण की सृष्टि करते। जीवन जैसे चारों ओर बिखरा नजर आता।....

....दूर पहाड़ी पर स्थित सुंदर मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर पर अन्य देवता भी वहाँ विराजमान। संगमरमर का साफ सुथरा फर्श, सामने मंडप और पीछे दीवारों पर देवी देवताओं की कथायें. सामने लक्ष्मीनारायण की भव्य मूर्ति जिसके एक ओर भगवान शिव और दूसरी ओर माँ दुर्गा की सुंदर प्रतिमाएँ स्थापित। मंदिर को घेरकर सुंदर सा लॉन तथा बाग जो खुद एक खूबसूरत रेलिंग से घिरा हुआ। बाग में सफेद चंपा, मोगरा, गुलाब, गेंदा, सूरजमुखी और कई तरह के फूल जो ढलती शाम की मध्यम रोशनी में अपने खुशबू और रंग बिखेरते। धीरे-धीरे शाम गहराती।......

.....उस शहर का रेल्वे स्टेशन उन छोटे शहरों के स्टेशनों की तरह ही, जहाँ सिर्फ एक या दो कर्मचारी पूरे स्टेशन को चलाते नजर आते, जहां स्टेशन मास्टर हर यात्री को पहचानता, और जहाँ यात्री भी बिना स्टेशन मास्टर से डरे उसके केबिन में आ-जा सकते, उससे हंसी मजाक कर सकते।......

......लक्ष्मी नारायण मंदिर वाली पहाड़ी की तलहटी में, नदी से सटा एक और मंदिर -गुफा मंदिर. हेलिक्स के आकार का एक जीना श्रद्धालुओं को ऊपरी सतह से नीचे गुफा के सामने तक ले जाता जहाँ से, एक संकरे द्वार में प्रवेश कर देवी के दर्शन किये जा सकते. जीने से नीचे जाते समय नदी एकदम नीचे बहती और ऊपर से सुंदर दिखने वाली नदी, पास से, अपनी रसायनों से फेनिल पानी की भंवरों के साथ, थोड़ी असुंदर नजर आती और मन में भय पैदा करती। इसीलिये शायद वहाँ कुछ कम लोग ही जाते पर जो पहुंच जाते उन्हें पुजारी जी खुले मन से आशीर्वाद दिया करते- सुखी रहो। ......,

......जैसे ही ट्रेन नदी पर बने, सुंदर से पुल पर थरथराती हुई आती, दूर पहाड़ी पर बना मंदिर और फैक्टरी से निष्कासित कचरे के ढेर साथ-साथ नजर आने लगते और जैसे ही वह पुल पार कर स्टेशन पर पहुंचती, तीखे रसायनों की गंध आपके नथुनों में घुस जाती. आप समझ जाते कि शहर आ गया है।........

पत्नी के ऐसे एक छोटे लेकिन सुन्दर, प्रसन्न और जीवंत शहर में सद्यविवाहित कथानायक शादी के अगले महीने कुछ समय गुजारने के लिए आता है। निश्चय ही नवदम्पति की खुशियों का यह उनका अपना समय है जब रोज किसी ना किसी आनंद, उत्साह, स्वप्न और उम्मीदों के मनोहारी झरोखे खुलते हैं और देस की ठंडी मनचीती हवा मन और प्राणों को बारबार पुलकित कर उठती है। लेखक उन दोनों की मनःस्थितियों से उस शहर के वर्णन एवं विवरण से जोड़कर एक ऐसा रसमय कोलॉज कथा के कैनवॉस पर उकेर देता है जहाँ देश और काल अपनी गति और सौन्दर्य में कथ्य से अनोखा सामन्जस्य स्वाभाविक रूप से स्थापित कर लेते हैं, जहाँ वातावरण में प्रेम की तरलता है और प्रेम में वातावरण की सुगंध।

इस पूरे अभूतपूर्व अनुभव में शब्द भरने के लिए वे दोनों जिन-जिन स्थानों में जाते हैं, वे मानो उनकी ही प्रतीक्षा में बैठे होते हैं। जीवन और रस

का ऐसा अद्वैत प्रेम की सांकरी गली में ही संभव होता है, जब तक कोई तीसरा प्रवेश नहीं करता।

यह तीसरा ही, दरअसल, इस प्रेम-कथा का मुख्य पात्र है। -एक कसे हुये बदन की साँवली मगर तीखे नाक नक्श वाली सुंदर सी लड़की सामने थी जो हँसती थी तो जैसे फूल झरते थे। उसकी सफेद दंत पंक्ति एक रोशनी सी बिखेर देती थी।

आज वह उसे ज्यादा खूबसूरत लगी. सफेद चूड़ीदार और टरकॉइज ब्लू कलर के कुरते में, जिस पर कुछ लापरवाह अंदाज में उसने सुनहरे रंग का दुपट्टा डाल रखा था। माथे पर झूलती घुंघराली लट के साथ- शी वाज सिंपली डैजलिंग। और यहीं से शहर पीछे छूट जाता है, प्रेम आगे बढ़चलता है। मगर प्रेम हमेशा अपने लश्कर के साथ चलता है जिसमें सदा से ही उन्माद, जिद, जुनून, तड़फ, आकुलता सहचर होते हैं और चाहे-अनचाहे संकोच, शंका, आशंका, अपराध-बोध, पूर्वाग्रह जाने-अनजाने भी हमराह हो जाते हैं। हर प्रेमी को लगता है कि प्रेम की राह में वह अकेला है। ऐसा नहीं है, उसके साथ एक भरी-पूरी दुनिया चलती है लेकिन कौन कब कहाँ किस मोड़ पर बिला जाता है, आज तक कोई नहीं बूझ पाया, यहाँ तक कि कामना की इस राह के गंतव्य में भी पूरमपूर प्रेम नहीं मिलता, यह उसे अंत तक पहुँचते-पहुँचते पता चल पाता है। एक गहरा दुःख ही हर रास्ते का आखिरी मुकाम है जहाँ करूणा की बेपनाह नदी अपने गौमुख से निकलती है और झर-झर आँखों से बरबस बहती जाती है।

यह जीवन भी बहुत विलक्षण है। इसे संग्राम भी कहा गया है लेकिन कोई विजयी नहीं, किसी के भी दामन में ऐसा कोई एक तिनका भी नहीं जिसके आसरे नशेमन बनाया जा सके या जिसके सहारे गहराते सागर के पार लगा जा सके। और ना कोई पराजित जिसको सरे-आम सूली पर चढ़ाया जा सके या जहर का प्याला पिला दिया जाए। लेकिन हर बार हमें किसी ना किसी बात पर रोना आया, कभी छुपकर, कभी फूट-फूटकर। जब धरती के भीतर पीड़ा धधक उठती है तब आँसुओं की नमी लेकर वह एक कोहरे में तब्दील हो जाती है और सतह पर तैरने लगती है। प्रकृति के पास अपना सब कुछ है, एक उदासी नहीं है जो अक्सर उसे इन्सानों की सोहबत में मिल पाती है।

लेखक ने यह कहानी एक बार लिखी। मैंने दो बार पढ़ी। मित्रों ने अनेक बार पढ़ी। पढ़ने वाले इसे बार-बार पढ़ेंगे। और आज उस फेहरिश्त में अबकी बार आप हैं। स

मुकेश वर्मा.
मो. 9425014166.

संतोष चौबे

कवि, कथाकार, उपन्यासकार संतोष चौबे हिन्दी के उन विरल साहित्यकारों में से हैं जो साहित्य तथा विज्ञान में समान रूप से सक्रिय हैं।

उनके तीन कथा संग्रह 'हल्के रंग की कमीज', 'रेस्त्रां में दोपहर' तथा 'प्रतिनिधि कहानियाँ', दो उपन्यास 'राग केदार' और 'क्या पता कामरेड मोहन', तीन कविता संग्रह 'कहीं और सच होंगे सपने', 'कोना धरती का' एवं 'इस अ-कवि समय में' प्रकाशित और चर्चित हुये हैं, कहानियों का मंचन भारत भवन तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में हुआ है तथा देश के सभी शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में वे लगातार प्रकाशित होती रही हैं, टेरी इगल्टन, फेडरीक जेमसन, वॉल्टर बेंजामिन एवं ओडिसस इलाइटिस के उनके अनुवाद 'लेखक और प्रतिबद्धता' तथा 'मॉस्को डायरी' के नाम से प्रकाशित हैं और व्यापक रूप से पढ़े और सराहे गये हैं, उन्होंने कथाकार वनमाली पर केंद्रित दो खंडों में, 'वनमाली समग्र' का तथा कथा एवं उपन्यास पर केंद्रित वैचारिक गद्य की दो पुस्तकों 'आख्यान का आंतरिक संकट' एवं 'उपन्यास की नयी परंपरा' का संपादन भी किया है। वे पंद्रह वर्षों तक 'उद्भावना' के संपादक मंडल में रहे तथा उसके कहानी विशेषांक का संपादन भी किया। वर्तमान में 'समावर्तन' के संपादक मंडल में हैं और नाटक तथा कलाओं की समृद्ध अंतर्विधायी पत्रिका 'रंग संवाद' के प्रमुख संपादक हैं।

उनकी पुस्तक 'कम्प्यूटर एक परिचय' हिन्दी में कम्प्यूटर की पहली किताब थी जिसने विक्रय के कीर्तिमान स्थापित किये और जिसे भारत सरकार का मेघनाद साहा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी विषय पर पाँच अन्य पुस्तकों का लेखन, बच्चों के लिये 'कम्प्यूटर की दुनिया' एवं 'कम्प्यूटर आपके लिये' 'शृंखला में छः अन्य पुस्तकों का लेखन, हाल ही में नवीनतम विज्ञान विषयों पर केंद्रित बीस पुस्तकों का संपादन, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना तकनीक पर देश की पहली हिन्दी पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' का पिछले पच्चीस वर्षों से सतत संपादन, कई विज्ञान नाटकों का मंचन एवं मंचन, 'गैलीलियो' का हिन्दी में अनुवाद तथा मंचन।

जन विज्ञान और साक्षरता आंदोलनों में पिछले तीस वर्षों से सक्रिय भागीदारी। मध्यप्रदेश तथा भारत सरकार के कई साहित्यिक तथा विज्ञान लेखन हेतु पुरस्कृत एवं सम्मानित। गत दिनों भोपाल में संपन्न टैगोर इंटरनेशनल लिट्रेचर एण्ड आर्ट्स फेस्टिवल ''विश्वरंग'' के प्रमुख आयोजक।

संप्रति : आईसेक्ट ग्रुप ऑफ यूनिवर्सिटी के प्रमुख एवं संबद्ध विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति
संपर्क : प्लॉट नं.7-8, सेवॉय सावन कॉलोनी,
होशंगाबाद रोड, रतनपुर, पोस्ट-मिसरोद, भोपाल-47
फोन- +91-755-2499006, 3293303 नि.2499611
E-Mail : choubey@aisect.org

सतह पर तैरती उदासी

संतोष चौबे

वह एक ऐसा शहर था जिसे हम 'फैक्ट्री टाउन' कहते हैं.

विशाल नदी को रोककर बनाया गया बांध, नदी के किनारों को उठाकर बनाये गये तटबंध, तटबंध के साथ-साथ चलती विशालकाय फैक्टरी, धुँआ उगलती चिमनियाँ और चौबीसों घंटे चलने वाली यांत्रिक मशीनें, जैसे इस शहर के दिल की धड़कन थीं, जो उसके शरीर में रक्त का संचार करती थीं.

फैक्टरी के आसपास मजदूरों, सुपरवाइजरों और अफसरों के रहने के लिये अलग अलग कॉलोनियाँ थीं जो अपने बगीचों, दालानों और रसोई से उठते धुँऐ के आधार पर पहचानी जा सकती थीं. कॉलोनी के बीचोंबीच एक कम्यूनिटी सेंटर, उसी के पास छोटा सा अस्पताल और क्लब तथा क्लब के पीछे एक खुला स्टेज, जिस पर राष्ट्रीय पर्वों और त्यौहारों के दिनों में रंगारंग कार्यक्रम आयोजित किये जाते थे.

फैक्टरी और कॉलोनी के बाहर एक अराजक संसार शुरू होता था जिसे हम 'प्राइवेट एरिया' कह सकते हैं. स्टेशन के सामने वाली सीधी सड़क पर पसरा हुआ बेतरतीब बाजार, जो करीब एक किलोमीटर तक सीधे जाकर, घरों और मकानों से खपरैली बस्ती में तब्दील होता हुआ, खुली सड़क तक पहुंचते-पहुंचते अवश्य हो जाता था. बाजार के दोनों ओर खुलती रक्तवाहिनियों की तरह की गलियाँ, जिनमें मूल बाजार की सहयोगी संस्थाओं की तरह एस.टी.डी. पी.सी.ओ., स्क्रीन प्रिंटिंग सेंटर, टाइपिंग और कम्प्यूटर इंस्टीट्यूट, छोटे मोटे छापाखाने, लेडीज टेलर्स और आकाश बेंड जैसी छोटी छोटी दुकानें थीं जो मूल बाजार से शक्ति पाती थीं और उसी के बल पर टिकी थीं.

करीब करीब रोज शाम को और विशेषकर साप्ताहिक बाजार के दिन, बाजार और उससे सटी हुई गलियाँ, सामानों से अंट जातीं. सस्ता सजावट का सामान, किराने के सामान के ढेर, फल और सब्जियाँ, लट्ठे के बने कपड़ों के छोटे छोटे पहाड़, बच्चों के खिलौने और गुब्बारे, एक मेले जैसा माहौल बनाते और उनके बीच घूमते, फैक्टरी की एकरसता से दूर, मजदूर और अफसर, उनके बच्चे और पत्नियाँ, एक अजब रसमय उत्तेजक और रंगीन वातावरण की सृष्टि करते थे. जीवन जैसे चारों ओर बिखरा नजर आता था.

साप्ताहिक बाजार के दिन आसपास की कोयला खदानों के अफसर और मजदूर भी अपने अपने परिवारों के साथ जीपों, मोटरसाईकिलों और साईकिलों पर लदकर बाजार करने पहुंच जाते. बाजार की संकरी सड़क पर उनके वाहन आपस में गुत्थम गुत्था होते रहते. अक्सर तू तू - मैं मैं भी हो जाती. पर क्योंकि सब एक दूसरे को जानते थे सो टकराहट होने पर थोड़े शिकवे शिकायत के बाद बात निपट जाती और सौदा सुलुफ लेने के बाद, अक्सर ये सभी परिवार 'श्याम टॉकीज' में फिल्म देखते या 'अपना चाट भंडार' पर चाट खाते पाये जाते.

उस शहर का रेल्वे स्टेशन उन छोटे शहरों के स्टेशनों की तरह ही था जहां सिर्फ एक या दो कर्मचारी पूरे स्टेशन को चलाते नजर आते हैं, जहां स्टेशन मास्टर हर यात्री को पहचानता है और जहाँ यात्री भी बिना स्टेशन मास्टर से डरे उसके केबिन में आ-जा सकते हैं, उससे हंसी मजाक कर सकते हैं और गाड़ियों के आने जाने का समय पूछ सकते हैं. कुछ यात्री गाड़ियों के अलावा वहाँ ज्यादातर कोयले से लदी गाड़ियाँ ही पहुंचतीं थीं जिन्हें यार्ड में पहुंचाना और वहाँ से फैक्टरी के ताप विद्युत गृह तक ले जाना रेलवे की मूल जिम्मेदारी थी.

जैसे ही ट्रेन नदी पर बने, सुंदर से पुल पर थरथराती हुई आती, दूर पहाड़ी पर बना मंदिर और फैक्टरी से निष्कासित कचरे के ढेर साथ-साथ नजर आने लगते और जैसे ही वह पुल पार कर स्टेशन पर पहुंचती, तीखे रसायनों की गंध आपके नथुनों में घुस जाती. आप समझ जाते कि शहर आ गया है.

उस शहर की यादों के साथ ये तीखी रासायनिक गंध भी सौमित्र के मन में गहरे बसी थी.

सौमित्र का विवाह इसी शहर में हुआ था.

विवाह के समय यह शहर सौमित्र को सुंदर, प्रसन्न और जीवंत लगा था. विवाह के पहले उसने अपनी पत्नी सुरेखा को बस एक या दो बार ही देखा होगा. कहीं किसी विवाह समारोह में या किसी रिश्तेदार के घर, अचानक. वह उसे हमेशा एक खुशनुमा, सुघड़ और बुद्धिमान लड़की लगी थी. ऐसे समारोहों में या तो वह अपने नजदीकी लोगों के बीच रहती या किसी न किसी काम में हाथ बंटाती नजर आती. कभी सामने पड़ भी जाये तो 'हाय, कैसे हैं आप?' या 'हैव यू टेकन अप अ जॉब?' जैसे औपचारिक सवालों तक सीमित रहती. पर उसके गेंहुए रंग और चमकती काली आंखों में एक ऐसा बौद्धिक आकर्षण था जो सौमित्र को अपनी ओर खींचता सा प्रतीत होता था. उसे बाद में मालुम पड़ा कि वह ओरिएंट पेपर मिल के चीफ केमिस्ट राजकिशोर जी की बेटी है, उसने खुद भी नागपुर यूनिवर्सिटी से केमिस्ट्री में एम.एस.सी. किया है और अब किसी अच्छे जॉब की तलाश में है. जब सौमित्र के विवाह की बात उससे चली तो उसे बहुत सोचना नहीं पड़ा था.

राजकिशोर जी ने विवाह किया भी बहुत धूमधाम से था. सुरेखा उनकी इकलौती बेटी थी और उसके विवाह में वे कोई कोर कसर छोड़ना नहीं चाहते थे. उनका ओरिएंट पेपर्स में अच्छा खासा दबदबा था. वे करीब तीस वर्षों से वहाँ थे और अफसरों तथा कर्मचारियों में अपने अच्छे व्यवहार के कारण बराबरी से लोकप्रिय थे. सभी उनकी मदद करना चाहते थे. सो बारात का स्वागत करने एक जत्था, जिसमें उनके करीबी और रिश्तेदार दोनों शामिल थे, करीब चार घंटे पहले पड़ने वाले बिलासपुर स्टेशन पहुंच गया था जहाँ से चाय नाश्ते और फल मिठाई का जो सिलसिला चला तो वह सुरेखा के शहर राजनगर तक अबाध रूप से जारी रहा था. राजकिशोर जी अच्छे प्रबंधक थे और जानते थे कि अच्छी शादी के लिये बारातियों को शुरू से ही अपने पक्ष में कर लेना जरूरी होता है. बारात हंसी खुशी राजनगर पहुंची थी और विवाह स्थल की सुंदरता को देखकर और भी प्रसन्न हुई थी. राजकिशोर जी ने अपने सभी रिश्तेदारों और मिल के ढेर सारे सहयोगियों को आमंत्रित किया था, विवाह स्थल सुंदरता से सजाया गया था और कलकत्ते के विशेष केटरर्स से खाने का इंतजाम करवाया गया था. किफायत के उन दिनों में भी विवाह तीन दिन तक चलता रहा था और निर्विघ्न संपन्न हुआ था. वह किसी को भी सुख और संतोष से भरने के लिये काफी था. सौमित्र ने भी अपने आपको बड़ा और महत्वपूर्ण महसूस किया था.

विवाह के करीब एक महीने बाद जब सौमित्र दुबारा उस शहर में पहुंचा तो उसे निकट से देखने का मौका मिला. सुरेखा बहुत उत्साह के साथ उसे अपना स्कूल, बाजार, श्याम टॉकीज और मंदिर दिखाने ले गई थी. पैदल मंदिर जाना उसका प्रिय शगल था. दूर पहाड़ी पर स्थित मंदिर था भी सुंदर. वह था तो लक्ष्मीनारायण मंदिर पर अन्य देवता भी वहाँ विराजमान थे. संगमरमर का साफ सुथरा फर्श, सामने मंडप और पीछे दीवारों पर देवी देवताओं की कथायें. सामने लक्ष्मीनारायण की भव्य मूर्ति जिसके एक ओर भगवान शिव और दूसरी ओर माँ दुर्गा की सुंदर प्रतिमाएँ स्थापित थीं. दर्शन और परिक्रमा के बाद वे बाहर निकल आते. मंदिर को घेरकर सुंदर सा लॉन तथा बाग लगा दिया गया था, जो खुद एक खूबसूरत रेलिंग से घिरा हुआ था. रेलिंग के पास खड़े होकर नीचे बहती नदी को देखना और देर तक बातें करना सौमित्र और सुरेखा का फेवरिट पास्ट टाइम था. बाग में सफेद चंपा, मोगरा, गुलाब, गेंदा, सूरजमुखी और कई तरह के फूल थे जो ढलती शाम की मध्यम रोशनी में अपने खुशबू और रंग बिखेरते. धीरे-धीरे शाम गहराती, वे वहीं पास में पड़ी बेंच पर बैठ जाते, एक दूसरे में डूबे हुये जब तक कि मंदिर का गार्ड आकर न कहता- घर जाइये बाबू, मंदिर बंद होने का टाइम हो गया.

लक्ष्मी नारायण मंदिर वाली पहाड़ी की तलहटी में, नदी से सटा एक और मंदिर था -गुफा मंदिर. हेलिक्स के आकार का एक जीना श्रद्धालुओं को ऊपरी सतह से नीचे गुफा के सामने तक ले जाता था जहाँ से, एक संकरे द्वार में प्रवेश कर देवी के दर्शन किये जा सकते थे. जीने से नीचे जाते समय नदी एकदम नीचे बहती थी और ऊपर से सुंदर दिखने वाली नदी, पास से, अपनी रसायनों से फेनिल पानी की भंवरों के साथ, थोड़ी असुंदर नजर आती थी और मन में भय पैदा करती थी. इसीलिये शायद वहाँ कुछ कम लोग ही जाते थे पर जो पहुंच जाते उन्हें पुजारी जी खुले मन से आशीर्वाद दिया करते थे- सुखी रहो, देवी माँ का आशीर्वाद सदा बना रहे. सुरेखा सौमित्र को भी देवी माँ का आशीर्वाद दिलाने ले गयी थी. मंदिर से बाहर निकलते हुये उसने कहा था- मान्यता है कि जिन्हें देवी जी आशीर्वाद दे दें उनके वैवाहिक जीवन में कोई बाधा नहीं आती. सौमित्र ने उसका हाथ थामते हुये कहा था- चलो, हमें भी आशीर्वाद मिल गया. फिर तुम्हारे रहते किसी भी बाधा की क्या मजाल कि आ जाये. सुरेखा ने इतनी जोर से उसका हाथ दबाया था कि उसके मुंह से ‘आह’ निकल गया था. किसी भी नवविवाहित पुरूष की तरह सौमित्र के जीवन में ये सब पहली बार घट रहा था और बहुत सुखद था.

जिस दिन वे लक्ष्मीनारायण मंदिर नहीं जाते, उस दिन शाम को क्लब के पीछे वाले पार्क में देर तक बैठे रहते. दुनिया जहान की बातें करते हुये. सुरेखा उसे अपने स्कूल कॉलेज के मित्रों के बारे में बताती, अपने सपनों के बारे में बताती और सौमित्र से उसके जीवन के बारे में जानना चाहती. दुर्गा पूजा के दिन थे और राज नगर में दुर्गा पंडाल खूब धूमधाम से सजाये जाते थे. शाम की हल्की ठंडक में वे मंडप मंडप विचरते. खुले मंच पर कोई न कोई कार्यक्रम होता ही रहता. तंबोला वहाँ का लोकप्रिय खेल था जिसमें मिल के सैकड़ों कर्मचारी एक साथ हिस्सा लेते. मंच से नंबर पुकारे जाते और भीड़ में से जीतने वाले खिलाड़ी की उत्साह भरी आवाजें गूंजतीं. तंबोला देर रात तक चलता रहता था. कभी म्यूजिक, कभी आर्केस्ट्रा, कभी भजन. वे अक्सर वहाँ जाते और उन्हें सम्मानपूर्वक आगे बिठाया जाता. छोटे शहर में मिलने वाले इस अतिरिक्त सम्मान से सौमित्र का दिल खुश हो जाता.

लौटने पर सुरेखा की माँ सुनंदा, पीछे आंगन में पटा-चटाई बिछाकर भोजन करातीं. राजकिशोर जी भी तब तक मिल से लौट आते थे. बातों और किस्सों का अनंत संसार खुलता जिसमें गांव से लेकर मिल की पॉलिटिक्स तक की सकिड़ों बातें होतीं. रात्रि के बारह एक बजे तक किस्से चलते पर बातें समाप्त नहीं होतीं. सौमित्र कई बार सुरेखा को आंखों के इशारे से उठने के लिये कहता जिन्हें वह देखकर भी अनदेखा करती. पर सुनंदा जी उन्हें भांप जातीं. वे कहतीं- जाओ सुरेखा तुम लोग अब सोने जाओ. सौमित्र को इसी का इंतजार रहता. फिर आती एक रसमय रात्रि.

उनके इस उन्मुक्त समय से बिल्कुल अलग था फैक्टरी का जीवन, घड़ी से बंधा हुआ. फैक्टरी तीन पालियों में संचालित होती थी. सुबह 8 बजे से शाम 4 तक, शाम 4 से रात्रि 12 और फिर रात्रि 12 से सुबह 8 बजे तक. सुबह 9 से शाम 5 वाली एक जनरल शिफ्ट भी होती थी जिसमें प्रशासनिक विभाग को बुलाया जाता. बीच में एक घंटे का अवकाश भी मिलता था. आकाश को गुंजाने वाला सायरन, पालियों के शुरू और समाप्त होने की घोषणा करता और लोग साईकिलों पर या पैदल, फैक्टरी गेट की तरफ या वापस घर की ओर, दौड़ने लगते. चाहे मजदूर हों या राजकिशोर जैसे बड़े अफसर, सभी सायरन की आवाज से बंधे हुये थे और उसी से बंधा था उनका जीवन.

ऐसे ही एक दिन सुरेखा सौमित्र को कारखाना दिखाने ले गई थी. वहाँ कागज बनाया जाता था. फैक्टरी के दो दरवाजे थे. एक आदमियों के लिये और दूसरा कच्चे माल के लिये. कच्चे माल के दरवाजे पर ट्रकों की लंबी कतारें थीं और वहाँ अजीब हलचल जैसी मची थी. आदमियों के लिये बने दरवाजे पर कड़ी सुरक्षा थी. राजकिशोर जी ने पिछले दिन ही दो प्रवेश पत्रों का प्रबंध कर दिया था. वैसे भी सुरेखा को वहाँ लोग जानते थे. वे बड़े गेट से अंदर पहुंचे. सुरेखा ने बहुत रूचि के साथ सौमित्र को कारखाना दिखाया. ये देखिये ये पल्प मेकिंग सेक्शन है, यहाँ कच्चे माल से पल्प बनाया जाता है, और ये रसायन विभाग, जहाँ पल्पको रसायनों में से गुजार कर उसकी सफाई की जाती है, और ये विशालकाय रोलर जिनमें से पल्पको कई बार गुजार कर कागज बनाया जाता है. ये रंगीन कागज वाला सेक्शन अलग और ये फाइन पेपर वाला अलग. देखना जरा बचना, कागज की धार चाकू की तरह होती है कट लग सकता है. और ये रही क्वालिटी टेस्टिंग लैब जहाँ पापा काम करते हैं. सैकड़ों मजदूर, दसियों सुपरवाइजर और अफसर, भारी गहमागहमी और चहल-पहल, फैक्टरी की कैंटिन और उसकी चाय तथा अंत में स्टोर्स में कागज के बड़े-बड़े रोल जिन पर चढ़कर ज्ञान विज्ञान हम तक पहुंचता है.

बाहर निकलते हुये सौमित्र ने कहा था,

‘वाह भई वाह, तुम तो पूरी केमिस्ट हो.’

‘और नहीं तो क्या? अगर तुमसे शादी नहीं हुई होती तो यहीं काम करती, पापा के साथ.’

‘तो फिर शादी क्यों कर ली?’

‘सोचा एक इंजीनयर मिल रहा है, एम.बी.ए. भी है. देखने में अच्छा है और नौकरी भी ठीक ठाक है. तो चलो शादी ही कर लेते हैं’

‘अच्छा, बस इतना ही? घर चलो तब बताता हूँ.’

रसायन की गंध उतनी ही तीखी रही होगी पर न जाने क्यों उस दिन सौमित्र को वह उतनी तीखी नहीं लगी थी. निकट चल रही सुरेखा के शरीर से आ रही भीनी भीनी खुशबू भी इसका एक कारण हो सकती थी.

बाजार, कारखाने और मंदिर के अलावा घूमने के लिये शहर में एक और जगह थी- बांध. वैसे वह बांध जैसा बांध नहीं था. मिल के उपयोग का पानी रोकने के लिये नदी पर एक लंबी रोक बना दी गई थी जिसने एक छोटे-मोटे बांध का रूप ले लिया था. उसके एक तरफ नदी की क्षीण धारा थी और दूसरी तरफ था लबालब बांध जिसमें फेनिल पानी भरा हुआ था. लगता था उस पानी का उपयोग पहले कागज बनाने में किया जाता था और फिर उसे इसी बांध में वापस छोड़ दिया जाता था. बांध के दोनों छोरों पर कुछ पेड़ लगाकर हरे झुरमुट बनाने की कोशिश की गई थी जहाँ वातावरण सुरम्य रहता था. हर साल मॉनसून के समय ये अफवाह उड़ती थी कि बांध बहने वाला है या बह ही गया है पर अब तक वह बहा नहीं था. शहरवासी, विशेषकर महिलायें और बच्चे, वहाँ पिकनिक मनाने जाते थे.

एक शाम सौमित्र और सुरेखा तथा राजकिशोर एवं सुनंदा सभी उस बांध पर पिकनिक मनाने पहुंचे. पर आज उनके साथ एक नया सदस्य भी था.

सुरेखा ने परिचय कराते हुये कहा था- शर्मिष्ठा, मेरी बचपन की सहेली.

सौमित्र ने देखा, एक कसे हुये बदन की सांवली मगर तीखे नाक नक्श वाली सुंदर सी लड़की सामने थी जो हंसती थी तो जैसे फूल झरते थे. उसकी सफेद दंत पंक्ति एक रोशनी सी बिखेर देती थी.

उसने पहचाना, यह तो वही है जो विवाह के समय सुरेखा के साथ-साथ नजर आ रही थी. उसकी ‘बडी’ के रूप में. उस समय भी उसका ध्यान उसके ऊपर गया था. पर आज वह उसे ज्यादा खूबसूरत लगी. सफेद चूड़ीदार और टरकॉइज ब्लू कलर के कुरते में, जिस पर कुछ लापरवाह अंदाज में उसने सुनहरे रंग का दुपट्टा डाल रखा था. माथे पर झूलती घुंघराली लट के साथ- शी वाज सिंपली डैजलिंग.

सौमित्र ने हाथ बढ़ाते हुये कहा,

‘वेलकम. आप वही हैं न जो हमारे विवाह में सुरेखा की कंपैनियन बनी थीं’.

शर्मिष्ठा ने बिना किसी झिझक के हाथ मिलाते हुये कहा,

‘आपने ठीक पहचाना. सुरेखा और मैं स्कूल फ्रेंड्स हैं. सखी-सहेली. एक दूसरे की सारी बातें जानते हैं.’

कहकर वह खिलखिला कर हंसी. सौमित्र ने कहा,

‘तब तो मुझे आपसे डरना चाहिये.’

शर्मिष्ठा वैसे ही खिलखिलाती रही,

‘नहीं, अभी डरने जैसी कोई बात नहीं है.’

सौमित्र ने देखा शर्मिष्ठा में एक खुलापन, एक बेबाकी थी. जहाँ सुरेखा धीर गंभीर मंथर गति से बहने वाली नदी की तरह थी, शर्मिष्ठा में पहाड़ी नदी की तरह का प्रवाह था जो किसी को भी बहा ले जाने की क्षमता रखता था.

सुनंदा जी अब तक पेड़ों के झुरमुट में एक साफ सुथरे स्थान पर, चटाई बिछा चुकी थीं. नाश्ते का टिफिन खुल चुका था. वे लोग गोल बनाकर बांध के किनारे बैठे और नाश्ते के साथ-साथ इधर उधर की बातें चलने लगीं. बीच-बीच में विवाह के प्रसंग भी आ जाते. राजकिशोर जी ने कहा,

‘सौमित्र, आपको याद है, वरमाला के समय हमने आपको स्टेज के नीचे थोड़ी देर रोका था? असल में वरमालाऐं इतनी सम्हाल कर रख दी गई थीं कि वे मिल ही नहीं रही थीं. पहले तो थोड़ी घबराहट फैली फिर शर्मिष्ठा ही उन्हें स्टेज के पीछे से खोज कर लाई. सब कुछ इतनी सफाई से हुआ कि किसी को देरी का कारण मालूम नहीं पड़ा’.

अब सुनंदा जी ने कहा,

‘और वो खीर मोहन? वो कलकत्ता से मंगवाये गये थे. बारातियों को कुछ ज्यादा ही पसंद आ गये. बीच भोजन में खत्म हो गये थे. पर अग्रवाल भाई साहब ने तत्काल अपनी दुकान से सारे रसगुल्लों के डिब्बे भिजवा दिये और कोई कमी महसूस न होने दी.’

सौमित्र ने कहा,

‘और आमरस का भी तो कुछ किस्सा हुआ था? वह भी बरातियों को कुछ ज्यादा ही पसंद आ गया था?’

राजकिशोर जी बोले,

‘हाँ, पर उसमें थोड़ी ज्यादा बरफ डालने से काम चल गया था.’

अब सब लोग ठठा कर हंसे. सौमित्र ने कहा,

‘पर हम लोगों को तो कोई कमी महसूस नहीं हुई. सारे बराती प्रसन्न थे.’

सुरेखा ने पूछा,

‘तुमने विवाह मंडपकी सजावट नोटिस की थी? वह शर्मिष्ठा ने ही करवाई थी.’

शर्मिष्ठा का नाम बार-बार चर्चा में आ रहा था. सौमित्र ने कहा,

‘हाँ. मैंने नोटिस किया था. फ्लॉवर डेकोरेशन बहुत ही सुंदर था.’

शर्मिष्ठा का जवाब हाजिर था,

‘हाँ भई, हमने सोचा हमारी सबसे प्यारी सहेली है. इसकी शादी शान से होनी चाहिये.’

सुरेखा कहाँ पीछे रहने वाली थी,

‘अब तू अपनी कर. मैं भी तेरा मंडप सजाने आऊंगी, उतनी ही शान से.’

दोनों सहेलियाँ खिलखिला कर हंसीं. बातचीत में मालूम पड़ा कि शर्मिष्ठा इतिहास में एम.ए. है और कोणार्क के मंदिरों पर पी-एच.डी. कर रही है. गाना अच्छा गाती है और चार सौ मीटर रेस की स्टेट चैंपियन रह चुकी है. उसके पिता वहीं मिल में मैनेजर, एच.आर. थे.

जैसा कि इस तरह की पिकनिकों में होता है अब गाने की फरमाईश हुई. सौमित्र ठीकठाक गा लेता था. उसे मुकेश के गीत पसंद थे. उसने ‘चांद आहें भरेगा फूल दिल थाम लेंगे’ गाया. फिर सुरेखा की बारी आई. उसे भी पुराने गीत पसंद थे. उसने ‘तेरे मेरे सपने अब एक रंग हैं’ सुनाया. अब शर्मिष्ठा की बारी थी. उसने कहा, ‘भई तुम लोग फिल्मी विल्मी गा चुके. मैं तो एक कविता सुनाऊंगी’.

सुरेखा ने कहा,

‘तू भी तो फिल्मी गाती है. वह ‘रैना बीत जाये श्याम न आये’ सुना दे.’

‘नहीं, आज कविता सुन लो. सौमित्र उड़ीसा जगन्नाथ जी की जगह है, भगवान कृष्ण की. पुराने समय से बड़े-बड़े भक्त कवि यहाँ रहते आये. उन्हीं की परंपरा में आज भी बड़े कवि उड़ीसा में हैं, तो मैं एक आधुनिक कवि की कविता सुनाती हूँ...’

राजकिशोर जी ने कहा,

‘ये अद्भुत लड़की है. इसे पूरी पूरी कविता याद रहती है...’

शर्मिष्ठा ने कविता शुरू की,

कई बार गोधूलि बेला की लालिमा में अकेले बैठकर
मैं तुम्हारी कहानी सुनाता हूँ / पतले तने के चंपा के पेड़ को
हँसते हुये मोगरे के फूल को / निःशब्द में उड़ती चिड़िया को
अच्छे बच्चे की तरह पंख समेटे बैठी तितली को
कहता हूँ देखो / तुम अब केवल चंपा पेड़
मोगरा फूल, चिड़िया या तितली नहीं रहीं
तुम मेरी तरह अकेले बैठकर इस प्रकार
देख रही हो, स्पर्श कर रही हो, जूड़ा सजा रही हो
विश्वास कर रही हो / कभी कभी लगता है
अभी हमारे चारों ओर असंख्य शब्दों की भीड़
शब्द रूप, शब्द रस, शब्द गंध, शब्द स्पर्श
न तुम मुझे देख सकती हो और न मैं तुम्हें
मेरे हाथ से निकलकर शब्दों की भीड़ में खो जाती हो तुम
और डूब जाती हो शब्द के समुद्र में
उन शब्दों को हटाकर मैं तुम्हें खोजता हूँ / यह कहने के लिये कि
जहाँ सारे शब्द समाप्त होते हैं / वहीं है प्रेम / वहीं है कविता.

जैसे ही कविता समाप्त हुई सबके मुंह से ‘वाह वाह’ निकला. सौमित्र ने अपने आपको एक नये धरातल पर पाया. उसे लगा शर्मिष्ठा में एक गहरा आकर्षण है, गहरा रहस्यमय आकर्षण. उसे शर्मिष्ठा की ओर एक अदृश्य खिंचाव महसूस हुआ.

झुटपुटा घिर आया था. नदी के पार गांव में बस्तियाँ टिमटिमाने लगी थीं. आसमान में चांद निकल आया. सौमित्र को उसका रंग उदास पीला सा लगा.

घर लौटते समय राजकिशोर जी और सुनंदा थोड़ा आगे हो गये थे. सौमित्र, सुरेखा और शर्मिष्ठा थोड़ा पीछे.

बातें करते समय स्थान बदलते रहे. कभी शर्मिष्ठा बीच में आती कभी सुरेखा. कभी सौमित्र बीच में चलने लगता. इस प्रक्रिया में हाथ और शरीर आपस में टकराते रहते. सुरेखा और शर्मिष्ठा इस बारे में बेखबर थीं लेकिन सौमित्र को वह अच्छा लग रहा था विशेषकर शर्मिष्ठा के शरीर का स्पर्श.

कॉलोनी के बीच वाले चौराहे पर कोई धरना प्रदर्शन चल रहा था. बीच-बीच में ‘मजदूर एकता जिंदाबाद’ और ‘ले के रहेंगे अपना हक, ले के रहेंगे’ जैसे नारे बुलंद किये जा रहे थे.

वहाँ से निकलते समय सुरेखा ने कहा,

‘उसे देख रहे हो!’

‘किसे?’

‘वही चमकती हुई दाढ़ी और घुंघराले बालों वाले लड़के को?’

‘कौन वही जो नारे लगवा रहा है?’

‘हाँ’

‘देख रहा हूँ. पर उसके बारे में क्या?’

‘उसके बारे में ये कि उसका नाम ज्योतिर्मय है और कॉलोनी की बहुत सी लड़कियाँ उस पर मरती हैं.’

ऐसा कह कर उसने कनखियों से शर्मिष्ठा की ओर देखा और मुस्कुरायी. शर्मिष्ठा ने हंसते हुये जवाब दिया,

‘तुमसे तो सुरेखा कुछ कहना ही नहीं चाहिये.’

सौमित्र कुछ समझा कुछ नहीं समझा. पर पीले चांद की उदासी न जाने क्यों अब उसके दिल में फैल गई.

शर्मिष्ठा ने बात बदलते हुये कहा,

'तुम्हें और सुरेखा को पुरी और कोणार्क घूमने जरूर जाना चाहिये. इवन इफ यू आर नॉट द रिलीजियस टाइप, शानदार समुद्र तट है, सुंदर मंदिर हैं, प्रकृति और इतिहास वहाँ बिखरा पड़ा है.'

सौमित्र इस पहली मुलाकात में ही शर्मिष्ठा को पसंद करने लगा था. एक अ.श्य ताकत के प्रभाव में वह चाहने लगा था कि शर्मिष्ठा उसके सामने, उसके आसपास रहे. इस प्रस्ताव में उसे शर्मिष्ठा के साथ रहने का एक और अवसर हाथ में आता दिखा.

उसने कहा,

'तुम भी चलो न, मजा आयेगा और हमें भी एक पी-एच.डी. कर रहा गाइड मिल जायेगा.'

'ना बाबा ना. मैं क्यों दाल भात में मूसरचंद बनूं? तुम दोनों जाओ. आकर मुझे रिपोर्ट देना.'

अब सुरेखा की बारी थी,

'चल चल इतने नखरे मत दिखा. मैं पापा से बात करती हूँ. हम लोग कल ही निकल चलेंगे और दो तीन दिन में लौट आयेंगे. तू तैयारी कर ले.'

जैसी कि उम्मीद थी, अगले दिन शर्मिष्ठा तैयार मिली थी. फिर एक बड़ी गाड़ी में वे पांचों, सुरेखा, सौमित्र, शर्मिष्ठा, राजकिशोर और सुनंदा पुरी-कोणार्क की ओर निकल पड़े थे.

पुरी पहुंचते पहुंचते शाम हो गई थी. राजकिशोर जी ने कंपनी गेस्ट हाउस में तीन कमरे पहले से ही बुक करा रखे थे. कमरे साफ सुथरे और सुसज्जित थे. थोड़ी थकान उतारने के बाद सबने हल्का भोजन किया. गेस्ट हाउस के महाराज जी ने, जिन्हें पंडित जी कहा जा रहा था, सादा और अच्छा भोजन बनाया था. दाल चावल, सब्जी रोटी आम का अचार. सौमित्र का मन प्रसन्न हो गया. भोजन के बाद सब लोग एक छोटा चक्कर लगाने निकले. मंदिर के बाहर का चौड़ा रास्ता जहाँ से रथ यात्रा निकाली जाती थी, शुक्ल पक्ष की रात्रि में सफेद भव्य मंदिर का जगमग रूप और खूबसूरत समुद्र तट देखकर सबका मन प्रसन्न हो गया. तय हुआ था कि सुबह पांच बजे उठकर पहले समुद्र का आनंद लिया जायेगा, फिर मंदिर दर्शन के लिये चलेंगे.

सुबह सौमित्र जब उठा तो सुरेखा और शर्मिष्ठा दोनों हल्के सूट पहन कर समुद्र स्नान के लिये तैयार खड़ी थीं. उसे देखकर सुरेखा ने कहा,

'जल्दी करो. सुबह सुबह स्नान की बात अलग है. फिर तो धूप चढ़जाती है.'

जब वे समुद्र तट पर पहुंचे तो वहाँ का नजारा बिल्कुल बदला हुआ था. सैकड़ों टूरिस्ट वहाँ पहुंच चुके थे और लहरों के साथ खेल रहे थे. सुरेखा, सौमित्र और शर्मिष्ठा ने भी एक थोड़ी कम भीड़ वाला स्थान चुना और लहरों की तरफ बढ़चले.

तभी एक जोर की लहर आई और सौमित्र के ऊपर से होकर गुजर गई. लहर जब लौटी तो सौमित्र के पैरों की रेत लेकर चली गई. उसे लगा जैसे पैरों तले जमीन नहीं है. वह गिर पड़ा. तभी अगली लहर फिर उसके ऊपर से गुजर गई. पानी में उसका दम घुटने घुटने को हुआ. वह आवाज देने ही वाला था कि अचानक किसी ने उसे अपनी बाहों में भींचा और ऊपर उठा लिया. उभरे हुये वक्ष का सुखद स्पर्श और किसी के चेहरे की गर्म निकटता उसे महसूस हुई. वह सम्हल कर खड़ा हुआ तो देखा शर्मिष्ठा थी. पीछे सूर्य भगवान उदित हो रहे थे. प्रोफाईल में खड़ी शर्मिष्ठा का चेहरा और उसकी भीगी हुई देहयष्टि राजा रवि वर्मा की पेंटिंग की तरह अत्यंत उत्तेजक नजर आ रहे थे, फर्क सिर्फ ये था कि ये पेंटिंग जीवंत थी और उससे लगभग लिपट कर खड़ी थी.

सुरेखा और शर्मिष्ठा वहाँ आती रहती थीं पर सौमित्र के लिये ये पहला अनुभव ही था. वह लहरों में थोड़ी दूर तक जाकर रूक गया. शर्मिष्ठा ने चिल्ला कर कहा,

'आ जाइये. गिरेंगे नहीं. गिरेंगे तो हम सम्हाल लेंगे.'

सौमित्र भीतर तक चला गया. लहर लौटती तो पैर के नीचे से रेत खिसका जाती. वह गिरने गिरने को हो आता. पर वे दोनों आराम से पानी में डुबकियाँ लगा रही थीं. काफी देर लहरों के भीतर रहतीं फिर बाहर निकल आतीं. फिर दोनों ने आकर उसका हाथ पकड़ा और थोड़े गहरे पानी में ले गईं. वह गिरने को होता तो उसे उठा लेतीं. वे एक दूसरे पर पानी उछाल रहे थे, तन पर पानी का आनंद ले रहे थे, और सुबह की भीगी भीगी हवा में उगते सूरज की किरणों को सोख रहे थे. अद्भुत आनंद था.

तभी एक जोर की लहर आई और सौमित्र के ऊपर से होकर गुजर गई. लहर जब लौटी तो सौमित्र के पैरों की रेत लेकर चली गई. उसे लगा जैसे पैरों तले जमीन नहीं है. वह गिर पड़ा. तभी अगली लहर फिर उसके ऊपर से गुजर गई. पानी में उसका दम घुटने घुटने को हुआ. वह आवाज देने ही वाला था कि अचानक किसी ने उसे अपनी बाहों में भींचा और ऊपर उठा लिया. उभरे हुये वक्ष का सुखद स्पर्श और किसी के चेहरे की गर्म निकटता उसे महसूस हुई. वह सम्हल कर खड़ा हुआ तो देखा शर्मिष्ठा थी. पीछे सूर्य भगवान उदित हो रहे थे. प्रोफाईल में खड़ी शर्मिष्ठा का चेहरा और उसकी भीगी हुई देहयष्टि राजा रवि वर्मा की पेंटिंग की तरह अत्यंत उत्तेजक नजर आ रहे थे, फर्क सिर्फ ये था कि ये पेंटिंग जीवंत थी और उससे लगभग लिपट कर खड़ी थी.

पेंटिंग ने उससे कहा,

'जब तुम्हारे पैरों के नीचे से जमीन खिसके तो थोड़ा उछलना चाहिये. तुम फिर जमीन पर आ जाओगे.'

सुरेखा ने पास आते हुये कहा,

'क्या हुआ?'

शर्मिष्ठा ने सौमित्र को बंधन मुक्त करते हुये अपनी चिर-परिचित हंसी के साथ जवाब दिया,

'कुछ नहीं. सौमित्र लहर के बहाव में गिर गये थे. मैंने उठा लिया.'

'चलो, अब हम तीनों साथ ही रहेंगे.'

करीब एक घंटा समुद्र में गुजारने के बाद वे बाहर निकले. राजकिशोर और सुनंदा जी अब तक आ चुके थे और एक सद्ग्रहस्थ की तरह तौलिया, कुछ पहनने के कपड़े और चाय उनके साथ थे.

सूरज अब ऊपर आ चुका था और उसी के साथ साथ समुद्र तट का नजारा भी बदल गया था. घोड़े वाले अब बच्चों को रेतीले किनारे पर सैर करा रहे थे, नारियल पानी की दुकानें खुल गई थीं और दुकानदार अपने लंबे हंसिये जैसे चाकुओं से काटकर उम्दा नारियल लोगों को देने लगे थे. नारियल पानी पीने के बाद ग्राहक उसकी मलाई भी खा सकते थे. दूर मंदिर का शिखर अपने नीलचक्र के साथ चमकने लगा था जैसे सौमित्र को आमंत्रित कर रहा हो.

कुछ देर वे रेत पर लेटे सूरज की सुबह की मृदु किरणें सोखते रहे. समुद्र का नीला विस्तार और उस पर चल रही हवा उनके शरीर में अद्भुत शक्ति का संचार कर रहे थे. सौमित्र ने आंखें बंद कर लीं.

शर्मिष्ठा के शरीर का प्रथम स्पर्श उसके मन में ताजा था. उसका मन शर्मिष्ठा की ओर, जो उससे थोड़ी ही दूरी पर सुरेखा के साथ लेटी हुई थी, भागा जा रहा था. तभी उसके एक मन ने कहा,

'क्यों कहां भागे जा रहे हो? याद रखो तुम्हारी नवविवाहिता पत्नी तुम्हारे साथ है.'

दूसरे मन ने कहा,

'यार भाग ही तो रहा हूँ. अभी कुछ किया तो नहीं न. भागने पर कोई रोक

थोड़े है!'

'याद रखो, शुरूआत इसी तरह भागने से होती है. फिर एक दिन तुम गिर पड़ोगे.'

'ऐसा नहीं होगा. मैं पक्का आदमी हूँ.'

'देखते हैं.'

सौमित्र वापस लौटा. उसने सोचा ये दोनों सहेलियाँ भी अद्भुत हैं. एक दूसरे की प्रति असीम प्रेम और विश्वास से भरी हुईं. सुरेखा को जरा भी शको शुबहा नहीं और शर्मिष्ठा में कहीं कोई ईर्ष्या नहीं. ये शायद बचपन से चले आ रहे कोमल प्रेम में ही संभव था.

अब तक सुनंदा जी चाय के लिये बुलाने लगी थीं.

'चलो चाय वाय पी लो. फिर मंदिर चलेंगे. महाप्रसाद 10 बजे करीब होता है. उसे मिस नहीं करना है.'

चाय पीने के बाद वे एक बार फिर गेस्ट हाऊस पहुंचे. मीठे पानी से स्नान करने के बाद अब वे मंदिर जाने के लिये तैयार थे.

राजकिशोर जी बता रहे थे कि पुरी में भगवान जगन्नाथ, उनके भाई बलभद्र और बहन सुभद्रा का मंदिर है. ये शायद देश का एक मात्र मंदिर है जो भाई-बहिन का मंदिर है. वैसे तो महालक्ष्मी भी हैं पर वे मंदिर के सिंह द्वार पर स्थित हैं. पुरी हिंदुओं का एक महान धार्मिक केंद्र है और उसे चारों धामों में से एक धाम की मान्यता है. आदि शंकराचार्य यहाँ आये थे. उनकी गोवर्धन पीठ भी यहाँ है. आज जहाँ मंदिर बना है उसके पास पहले से ही यानी पौराणिक काल से एक मंदिर बना था. दसवीं शताब्दी के मंदिर का जिक्र तो इतिहास में भी मिल जाता है. वर्तमान मंदिर 12वीं शताब्दी में गंगा वंश के राजा अनंतवर्मन ने अपनी उत्कल विजय के बाद बनवाया. फिर उनके वंशज नरसिंह देव द्वितीय ने शताब्दी के अंत में इसका बहुत विस्तार किया. आक्रमणों की बात छोड़ दें तो इस पर पहले गंगा वंश का, फिर गजपति वंश का और कुछ देर के लिये मराठों का भी अधिकार रहा. फिर तो ब्रिटिश पूरे देश में छा ही गये थे.

उन्होंने सिंह द्वार से मंदिर में प्रवेश किया जिसके दोनों ओर दो सिंह उनका स्वागत कर रहे थे. मंदिर के तीन द्वार और थे. व्याघ्र द्वार, अश्व द्वार और हाथी द्वार. सिंह द्वार के सामने ही एक स्तंभ था जिसे अरूण स्तंभ कहा जा रहा था. सुरेखा ने बताया कि भगवान जगन्नाथ की रथ यात्रा इसी द्वार से निकलती है. अरूण सूर्य भगवान का सारथी था. इस स्तंभ को कोणार्क के सूर्य मंदिर से यहाँ लाया गया है. सिंह द्वार के ऊपर महालक्ष्मी विराजमान हैं. जब भगवान जगन्नाथ रथ यात्रा के बाद वापस लौटते हैं तो वे महालक्ष्मी को प्रसन्न करने के बाद ही भीतर जा सकते हैं.

मंदिर में प्रवेश करने के बाद का प्रबंध सुनंदा जी ने अपने हाथ में ले लिया. उन्होंने अपने परिवार के पंडा किशन महापात्र को खोज निकाला. किशन जी अजीब हड़बड़िये आदमी थे. वे भीड़ बढ़े उसके पहले दर्शन करा देना चाहते थे और मंदिर के बारे में बताना भी चाहते थे.

'देखो बिटिया वो जो मंदिर के शिखर पर चक्र है न, उसे नील चक्र कहते हैं. उस पर लगा झंडा रोज बदला जाता है. उसे पतित पावन कहते हैं. उसके दर्शन से भी उतना ही लाभ मिलता है जितना भगवान जगन्नाथ के दर्शन से'

मंदिर में खूब गहमा-गहमी मची हुई थी. पंडे अपने-अपने दर्शनार्थियों के पीछे पड़े हुये थे इस दौरान कुछ तू तू-मैं मैं भी हो जाती थी. कुल मिलाकर शांत भक्तिमय वातावरण के बदले कुछ भीड़भाड़ भरे मेले का माहौल था.

किशन जी ने उन्हें साइड के दरवाजे से प्रवेश करवाते हुये कहा, आइये एकदम निकट से दर्शन करते हैं. भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की काष्ठ पर निर्मित तेजोमय प्रतिमा ठीक उनके सामने थी. कुछ पंडे आते जाते सौमित्र के सिर पर फटे हुये बांस की छड़ी से आशीर्वाद देते जा रहे थे. किशन जी ने बताया यही वहाँ की परंपरा है.

अचानक सौमित्र ने नोटिस किया कि वह प्रतिमा की ओर नहीं बल्कि शर्मिष्ठा की ओर देख रहा था. नहाने के बाद उसने बाल खुहे छोड़ दिये थे जिनमें से भीनी भीनी खुशबू आ रही थी. वह सौमित्र से लगभग सट कर खड़ी थी और उसकी पीठ बिल्कुल उसके सामने थी. उसे लगा कि वह झुक कर उसे चूम ले. आसपास की भीड़ के बावजूद सौमित्र किसी और संसार में पहुंच गया जहाँ सिर्फ वह था और शर्मिष्ठा की खुली हुई पीठ. उसका एक हाथ अनायास ही आगे बढ़ा और शर्मिष्ठा की लरजती उंगलियों के बीच जाकर फंस गया. अचानक किसी ने धक्का लगाते हुये कहा, 'चलो बाबू, आगे बढ़ो और लोगों को भी दर्शन करना है' सौमित्र की तंद्रा टूटी. दर्शन हो चुके थे. पूजा आदि भेंट करने के बाद वे भक्तों की लंबी लाइनों को चीरते हुये बाहर निकल आये.

सुनंदा जी कह रही थीं,

'भाई किशन जी अब जल्दी से प्रसाद का प्रबंध करिये. बहुत भूख लग रही है.'

'आप भोग मंडप में पहुंचिये मैं प्रसाद लेकर आता हूँ.'

कुछ देर बाद वे हाथ में पांच कुल्हड़ जैसे मिट्टी के बर्तन लेकर नमूदार हुये.

'लीजिये'.

सौमित्र ने देखा, कुल्हड़ जैसे पात्र में दाल चावल मिला हुआ, ऊपर तक ठसाठस भरा था. किशन जी ने कहा,

'आप प्रसाद ग्रहण कीजिये. मैं चलूंगा. भगवान के अगले भोग की तैयारी भी करनी है.'

सुनंदा जी ने बताया कि भगवान को कम से कम छः बार भोग लगाया जाता है. सबसे पहले सुबह सुबह गोपाल वल्लभ भोग जिसमें सात पदार्थ- खुआ, लाहुनी, नारियल की मीठी चटनी, नारियल पानी, खाई यानी मीठे मक्का के दाने, दही और पके हुये केले शामिल होते हैं. उसके बाद लगभग 10 बजे सकाल धूप, फिर दोपहर में छत्र भोग जिसमें पखाल भात और दही तथा कांजी पायस शामिल रहता है. इसे भक्तों में भी बांटा जाता है. दोपहर बाद मध्यान्ह भोग फिर रात्रि 8 बजे संध्या धूप तथा अंत में बड़ा सिंहार भोग. मजे की बात ये है कि पुरी में करीब 2000 से 20,000 भक्त रोज आते हैं पर प्रसाद की मात्रा एक ही रहती है. न कभी वह कम पड़ता है न ज्यादा. सौमित्र ने महसूस किया कि पहले जिस प्रसाद को वह कम मान रहा था, वह तो खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था.

'महालक्ष्मी जी की कृपा है' सुनंदा जी ने कहा.

फिर वे सबको भगवान जगन्नाथ मंदिर का किचन दिखाने ले गयीं. वहाँ प्रवेश नहीं किया जा सकता था. सिर्फ संध में से झांक कर देखा जा सकता था.

'ये विश्व के सबसे बड़े किचन में से है. कहते हैं भोजन महालक्ष्मी जी की देखरेख में बनता है इसलिये कभी कम नहीं होता. मगर कभी भोजन खराब हो जाये तो एक विशाल कुत्ते की छाया रसोईयों को दिखती है. वे भोजन नष्ट कर देते हैं और दोबारा बनाते हैं.

अब बात कुछ रहस्यमय हो चली थी और रहस्यों की बात आते ही शर्मिष्ठा वाचाल हो जाती थी.

'रहस्य तो और भी हैं' उसने कहा.

'वह झंडा देख रहे हो न. वह हर समय हवा की उल्टी दिशा में फहराता है. देश के हर मंदिर के शिखर पर आपको पक्षी बैठे दिख जायेंगे पर यहाँ जगन्नाथ मंदिर के शिखर पर नहीं. इस शिखर की छाया भी कहीं नहीं पड़ती. अन्य समुद्री किनारों से उलट पुरी में दिन में हवा धरती से समुद्र की ओर और रात में समुद्र से धरती की ओर चलती है. अभी तुम सीढ़ियों से चढ़कर आये तो तुम्हें लहरों की आवाज नहीं आयी थी, अब जाओगे तो आयेगी. और ये प्रसाद जो तुमने ग्रहण किया ये मिट्टी के पात्रों में पकता है. सात पात्र एक के ऊपर एक रखे जाते हैं पर सबसे पहले खाना ऊपर के पात्र में बनता है, वही सबसे पहले गर्म होता है.'

वह अपने ज्ञान से सौमित्र को बार-बार चकित करती थी. वह बस इतना ही

कह पाया,

'इंटरेस्टिंग'

वह एक के बाद एक नये रहस्यों से परिचित होता जा रहा था पर एक नया रहस्य उसके मन में आकार ले चुका था. उसकी नवविवाहिता सुंदर पत्नी के बावजूद इस सांवली सलोनी कन्या ने उसके मन में प्रवेश कर लिया था और वहाँ वह अपनी जगह बढ़ाती ही जा रही थी. वह मंदिर की भव्यता और आध्यात्मिकता में डूबने की भरसक कोशिश कर रहा था पर उस सबको पीछे धकेलती वहाँ तो शर्मिष्ठा चली आती थी, चली आती थी.

अचानक वह उसे कुछ और प्रसाद देने के लिये आगे झुकी. उसका दुपट्टा अपनी जगह से हटा. उसकी वक्ष रेखा सामने थी. सौमित्र ने मन ही मन कहा, 'आह, दर्शन तो अब हुये.'

अपना ध्यान बंटाने की कोशिश में सौमित्र ने आसपास देखा. बंगाल से आये भक्तों की बड़ी संख्या समुद्र स्नान के बाद मंदिर दर्शन के लिये पहुंच चुकी थी और मंदिर प्रांगण में भारी गहमा गहमी मची थी. राजकिशोर जी और सुनंदा अन्य मंदिरों के दर्शन के लिये निकल गये थे.

सौमित्र, सुरेखा और शर्मिष्ठा ने बैठने के लिये एक सुरक्षित कोना चुन लिया. अब सौमित्र ने पूछा - 'मुझे एक बात समझ नहीं आई, भगवान जगन्नाथ की मूर्ति में उनकी भुजाएं क्यों नहीं हैं?'

सुरेखा पुरी जाती रहती थी और उसे वहाँ की सब कथायें मालूम थीं. उसने कहा - 'उसकी भी एक कथा है. सुनोगे?'

'हाँ, हाँ क्यों नहीं?'

'कथा ये है कि त्रेता युग के अंत में भगवान जगन्नाथ एक पीपल के पेड़ के नीचे, इंद्र नीलमणि के रूप में प्रकट हुये. वे इतने चमकदार थे कि उन्हें देखकर ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती थी. सो धर्मराज ने उन्हें धरती के नीचे छुपा दिया. द्वापर युग में मालवा के राजा इंद्रद्युम्न ने कठिन तपस्या के बाद उनके दर्शन किये. तब भगवान विष्णु ने उन्हें आज्ञा दी कि वे पुरी के समुद्र के पास जायें जहाँ उन्हें एक खुशबूदार पेड़ का तना तैरता हुआ मिलेगा जिस पर वे उनकी छवि गढ़ें. नारद की सलाह पर इंद्रद्युम्न ने देवताओं के इंजीनियर विश्वकर्मा को बुलाया. भगवान विष्णु स्वयं एक कारपेंटर के रूप में अवतरित हुये, इस शर्त पर, कि जब तक वे काम करेंगे उन्हें कोई देखने नहीं आयेगा. मूर्तियाँ को तभी देखा जाये जब काम खत्म हो जाये. पर दो हफ्ते तब जब कोई खबर नहीं आई तो इंद्रद्युम्न की रानी बहुत बेचैन हो गई. मंदिर के भीतर से खटपट की कोई आवाज ही नहीं आ रही थी. उसने राजा से द्वार खोलने के लिये कहा. जैसे ही राजा ने द्वार खोला, विष्णु ने काम बंद कर दिया. मूर्तियाँ अधूरी की अधूरी रह गयीं. इसीलिये उनके हाथ नहीं हैं पर फिर भी वे जगत की रक्षा करते हैं.'

शर्मिष्ठा सुरेखा द्वारा कही जा रही कथा के दौरान चुप बैठी थी. अब उसने कहा - 'भई कथा कहानियाँ अपनी जगह पर हैं पर मुझे तो यह मूर्ति आदिवासी संस्कृति का प्रतीक लगती है. मुझे लगता है कि शबर आदिवासी लोग नीलमणि को नीलमाधव के रूप में पूजते थे. फिर उन्हें नीलगिरि पर्वत पर स्थापित किया गया जहाँ हिंदु परंपरा के प्रभाव में बलभद्र और सुभद्रा भी साथ में स्थापित हुये होंगे. आदिवासी अपने ईश्वर लकड़ी पर बनाते हैं और क्योंकि भगवान जगन्नाथ की छवि नीम की लकड़ी पर बनाई जाती है तो उससे भी उनका जुड़ाव आदिवासी परंपरा से ही दिखता है. इसके अलावा दैतपति, जो मंदिर में पूजा आदि के समय प्रमुख भूमिका निभाते हैं वे आदिवासियों के ही वंशज हैं. इससे भी लगता है कि भगवान जगन्नाथ मंदिर हिंदू और आदिवासी परंपराओं का सम्मिश्रण है.'

सौमित्र को सुरेखा और शर्मिष्ठा दोनों की ही कथाओं में आनंद आ रहा था पर उसे शर्मिष्ठा की बात ज्यादा तार्किक लगी. उसकी तीक्ष्ण बुद्धि, गहरी समझ और स्थिर प्रकृति ने सौमित्र के मन में और गहरा स्थान बनाया. उसके मन में एक अजीब बात आई. जब वह पहले पहल बांध पर शर्मिष्ठा से मिला था तो क्या वह टरकॉइज ब्लू कलर में एक नीलमणि की तरह ही नहीं दिखी थी और क्या इंद्रद्युम्न की तरह अब वह उसे पाना नहीं चाहता था? उसके दूसरे मन ने तत्काल चेतावनी दी,

'ठहरो सौमित्र ठहरो, रास्ता कठिन तपस्या की ओर जा रहा है.'

वे लोग अब मंदिर के सामने वाली चौड़ी सड़क पर निकल आये थे, सुरेखा ने कहा -'अगली बार आषाण के महिने में आओगे तो तुम्हें रथ यात्रा भी देखने मिलेगी. हर साल रथ यात्रा के लिये नया रथ बनाया जाता है. 15 दिन पहले से दर्शन बंद हो जाते हैं फिर भगवान गुंदीचा मंदिर की यात्रा पर निकलते हैं. वहाँ 9 दिन रहने के बाद फिर इसी मंदिर में लौटते हैं.'

शर्मिष्ठा ने कहा,

'मुझे रथ यात्रा की दो बातें बहुत अच्छी लगती हैं. एक तो गजपति वंश के राजा का भगवान के सामने बुहारी देना. हालांकि झाडू सोने की मूठ वाली होती है और जल गुलाबजल होता है पर यह तो सिद्ध होता ही है कि ईश्वर के सामने सब समान हैं. कोई छोटा बड़ा नहीं. दूसरे लौटते समय मंदिर प्रवेश के पहले सिंहद्वार पर बैठी महालक्ष्मी से अनुमति मांगना. उन्हें रसगुल्ले का भोग लगाकर प्रसन्न किया जाता है. आखिर गृह स्वामिनी वही हैं.'

सब लोग ठठाकर हंसे. शर्मिष्ठा बता रही थी,

'जानते हो सौमित्र, पुरी के मंदिर पर 18 बार आक्रमण हुआ और आक्रमण करने वालों में हिंदू और मुसलमान दोनों शामिल थे. हिंदुओं ने धन लूटा लेकिन मूर्ति को नुकसान नहीं पहुंचाया. मुस्लिम आक्रमण कर्ता मूर्ति का भी ध्वंस करना चाहते थे और मंदिर का भी. सबसे बड़ा आक्रमण बंगाल नवाब के सेनापति काला पहाड़ ने किया था. पर ऐसे सभी आक्रमणों में ब्राह्मण लोग भगवान जगन्नाथ की प्रतिमा को गायब कर देते थे. अक्सर उसे चिलका झील ले जाया जाता था. जहाँ किसी द्वीप पर उसे छुपा दिया जाता था. और कभी प्रतिमा मिल भी जाये तो उसके भीतर से ब्रह्म पदार्थ गायब कर दिया जाता था. तो असल बात है ब्रह्म पदार्थ. आक्रमणकर्ता के जाने के बाद इसे फिर से मंदिर में स्थापित किया जाता था.'

अब शर्मिष्ठा चुहल की मुद्रा में थी,

'पूरे मंदिर क्षेत्र या पुरी को ही पुरूषोत्तम क्षेत्र कहा जाता है. भगवान जगन्नाथ पुरूषोत्तम हैं. वे अच्छे भाई हैं. अच्छे पिता हैं, जगत् पालक हैं. अपने माता पिता यानी कश्यप-अदिति, दशरथ-कौशल्या, वासुदेव-देवकी और नंद-यशोदा के आज्ञाकारी हैं और पूरे क्षेत्र में प्रेम का संदेश देते हैं. इस तरह पूरा उड़ीसा ही पुरूषोत्तम क्षेत्र बन जाता है, प्रेम रस में पगा. यहाँ के कवि राधा कृष्ण की महिमा गाते हैं, आख्यान उन्हीं से पटे पड़े हैं और रात्रि कालीन लीलाऐं राधा कृष्ण पर ही मंचित की जाती हैं. भगवान जगन्नाथ सबकी इच्छा पूरी करते हैं.'

फिर उसने सौमित्र से पूरे भोलेपन के साथ पूछा,

'तो तुमने भगवान जगन्नाथ से क्या मांगा सौमित्र?'

वह कहना तो चाहता था नीलमणि, पर उसने कहा,

'इच्छा इस तरह से बताई नहीं जाती. इससे उसकी ताकत कम हो जाती है.'

'कोई बात नहीं, हम अंतर्यामी हैं, हमें मालूम पड़ ही जायेगी.'

सौमित्र को शर्मिष्ठा की इस बात में भी उस समय एक इशारा सा लगा था.

गेस्ट हाउस अब आ चुका था.

अगले दिन सुबह कोणार्क जाने का कार्यक्रम था, कोणार्क का प्रसिद्ध सूर्य मंदिर जो अब एक वर्ल्ड हेरिटेज साइट बन चुका था.

यहाँ उन्हें किसी पंडे या गाइड की जरूरत नहीं थी. कोणार्क के मंदिरों पर पी-एच.डी. कर रही शर्मिष्ठा ही उनकी गाइड थी.

पहली नजर में ही कोणार्क के सूर्य मंदिर ने सौमित्र का दिल जीत लिया. पृष्ठभूमि से उभरते सूर्य भगवान, दूर कहीं हरहराता समुद्र, सूर्य का रथ खींचते सात अश्व. उस मंदिर की कल्पना और विचार ही अत्यंत प्रभावशाली था. आज राजकिशोर जी ने सपत्नीक गेस्ट हाउस में विश्राम करना तय किया था. सो सुरेखा, सौमित्र और शर्मिष्ठा मंदिर देखने पहुंचे. शर्मिष्ठा ने मंदिर के बारे में बताना शुरू किया.

अब जो आप देख पा रहे हैं वह पूरे मंदिर कॉम्प्लेक्स का एक बहुत छोटा सा हिस्सा है. यह करीब 100 फीट ऊंचा रथ, सबसे सामने का हिस्सा था. इसके पीछे देवल या मूल मंदिर था जो करीब 229 फीट ऊंचा रहा होगा. इसे गंगा वंश के राजा नरसिंहदेव ने 1250 ईस्वी के आसपास बनवाया. पूर्व से निकलने वाले सूर्य को सात घोड़ों वाला रथ आगे खींचता है. सूर्य भगवान के दोनों हाथों में कमल का फूल और उनके साथ उनका सारथी अरूण. सातों अश्वों के नाम संस्कृत कविता के छंदों के नाम से हैं- गायत्री, बृहति, अस्नीह, जगति, त्रिस्तुभ, अनुष्टुभ और पंक्ति. मैं कई बार सोचती हूँ कि कैसे साहित्य और स्थापत्य का मेल हमारे जीवन में था और कैसे जीवन उन दोनों से झांकता था. महिनों की संख्या के अनुसार रथ के पहियों के भी 12 युग्म हैं. 12 फीट व्यास के कुल 24 पहिये इस रथ को खींचते हैं. बड़ा देवल अब नहीं है. जगमोहन या नृत्य मंडप अब भी है, वही सामने वाला.

सौमित्र का ध्यान मंदिर की दीवारों पर गया जिन्हें कई तरह की सुंदर आकृतियों से अलंकृत किया गया था. इसमें लोगों के जीवन चित्र, जानवर और जलचर, विभिन्न ज्यामितीय आकृतियाँ, राजा के जीवन से लिये गये चित्र जिनमें राजा की आकृति गुरू से छोटी दिखाई गई थी और उसकी तलवार गुरू के सम्मान में जमीन पर रखी थी. आधार पर हाथी-घोड़े, लड़ाई पर जाते सैनिक, संगीतकार, लोगों के रोजमर्रा के जीवन चित्र, घरेलू जानवर, बैलगाड़ियों और सिर पर सामान ले जाते लोग, खाना बनाती स्त्रियाँ, बाल सुखाती स्त्रियाँ, वीणा बजाती स्त्रियाँ, तीर्थ यात्रा पर जाती बूढ़ी स्त्री, बेटे को आशीर्वाद देती माँ, छात्रों के साथ शिक्षक, आसन करते योगी, योद्धा को प्रणाम करते लोग, मजाकिये - यानी रोजमर्रा के जीवन के अनेक चित्र शामिल थे. टैगोर ने शायद इन्हें ही देखकर कहा होगा कि यहाँ पाषाण की भाषा मनुष्य की भाषा के आगे चली जाती है.

शर्मिष्ठा उनके साथ साथ चल रही थी. अब थोड़ा रूककर उसने कहा- और ये भी है.

सौमित्र ने देखा प्रेम और मैथुन के कई चित्र दीवारों पर उकेरे हुये थे, वैसे ही जैसे वह खजुराहो में देख चुका था. शर्मिष्ठा उसे और सुरेखा को छोड़ कर थोड़ा आगे बढ़गई. सुरेखा ने कहा,

'सेक्स भी तो रोजमर्रा के जीवन का ही हिस्सा है, इसलिये वह भी यहाँ है. आदमी इस सबसे ऊपर उठकर ही आध्यात्मिक ऊंचाई प्राप्त करता है जो ऊपर देवल में है.'

सौमित्र ने कहा,

'ठीक कह रही हो. ओशो ने तो सेक्स को भी मुक्ति के मार्ग में शामिल किया था और तांत्रिक कल्ट में तो इसे निश्चित ही पूजा के प्रकारों में शामिल किया जाता है. बंगाल और पूरब में तांत्रिक कल्ट प्रचलित भी खूब था.'

आगे बढ़ते हुये उन्होंने शर्मिष्ठा को साथ ले लिया. वह बता रही थी,

'इस मंदिर के नष्ट होने की भी बहुत सारी थ्योरीज हैं. एक तो स्टैंडर्ड थ्योरी है मुस्लिम आक्रमण की जो निश्चित ही हुये होंगे और इसके प्रमाण भी मिलते हैं. पर यहाँ एक संभावना ये भी है कि मंदिर के निर्माण में लगे मैग्नेटिक पत्थरों को, जो पूरे मंदिर के स्ट्रक्चर को होल्ड करते थे, निकाला गया जिससे वह स्ट्रक्चर ही ध्वस्त हो गया. असल में ये मैग्नेटिक पत्थर पुर्तगालियों के जहाजों को भटका देते थे. पुर्तगाली कोणार्क को ब्लैक पगोडा और पुरी को व्हाइट पगोडा कहा करते थे.'

मंदिर देखने के बाद पास के बीच पर जाने का प्रोग्राम बना. मौसम खुशगवार था. और समुद्र बहुत आक्रामक मुद्रा में नहीं था. वह दोपहर-शाम उन्होंने समुद्र तट पर खेलते, बतियाते, घूमते गुजारी. इस दौरान जब भी सौमित्र शर्मिष्ठा को देखता या स्पर्श करता, उसे कोणार्क की मूर्तियाँ याद आने लगतीं, अपने पूरे उभारों, चितवनों और मुस्कुराहटों के साथ.

शाम जब चांद निकला तो एहसास हुआ कि अरे आज तो शरद पूर्णिमा थी.

सुनंदाजी ने गेस्ट हाउस में भी खीर का इंतजाम कर लिया था. रात्रि भोजन के बाद पांचों लोग लॉन पर बैठे. खीर थोड़ी ठंडी हो जाये तो खाई जाये. अब राजकिशोर जी ने कुछ अफसोस के साथ कहा,

'ये टूर तो अब समाप्ति पर आ गया. कल सुबह घर चलना है.'

सुरेखा बोली,

'हाउ सैड, अभी कुछ दिन और घूमना चाहिये था.'

शर्मिष्ठा ने जोड़ा,

'कोई बात नहीं सौमित्र फिर आ जायेंगे. हम लोग इस बार लंबा टूर बनायेंगे. अभी तो इन्हें कलिंग का इतिहास बताना बचा है. वह धौलागिरी जाकर ही बताया जा सकता है.'

वापसी के नाम पर सौमित्र के मन में हल्की सी कसक उठी जिसे प्रगट न करते हुये उसने कहा,

'आई मस्ट से आई एम एनरिच्ड. अगर नहीं आता तो एक बहुत अच्छा अनुभव मिस करता.'

इस अनुभव में समुद्र में शर्मिष्ठा का क्षणिक आलिंगन, धूप-छांव की तरह उसके शरीर के दर्शन और उससे हुई रसमय बातचीत का गहरा आकर्षण भी शामिल थे. शर्मिष्ठा अपनी परिचित हंसी के साथ बोली,

'तो बार बार आइये.'

वही खिलखिल हंसी. शर्मिष्ठा सौमित्र के सामने बैठी थी. उसके पीछे था कोणार्क का चमकता शिखर और उसके ऊपर शरद पूर्णिमा का खिलता हुआ चांद, जिसकी स्निग्ध चांदनी चारों ओर फैली हुई थी. अचानक दिन में देखी हुई कोणार्क की मैथुन रत मूर्तियाँ उठीं और उन्होंने सौमित्र के मन में प्रवेश कर लिया. उनमें से प्रत्येक की नायिका उसे शर्मिष्ठा की तरह नजर आ रही थी. उसने अपने आपको बहुत उत्तेजित महसूस किया. रक्त उत्तप्त.

राजकिशोर जी कुछ कह रहे थे पर सौमित्र ने उसे नहीं सुना. उसके मन में मूर्तियों का नृत्य चल रहा था.

रात के करीब दो बज रहे थे, पर सौमित्र की आंखों से नींद गायब थी.

ये क्या हो रहा था? वह अपनी पत्नी सुरेखा के साथ लेटा था. सुरेखा का हाथ उसके सीने पर था और सिर उसके कांधे पर. लेकिन उसके मन में विचार शर्मिष्ठा के आ रहे थे. कल समुद्र के किनारे एक बार अचानक उसकी देहयष्टि महसूस करने का अवसर मिला था. तब से जैसे उसने सीधे सौमित्र के दिल में प्रवेश कर लिया था. उसकी बौद्धिकता, उसका ज्ञान उसकी रेडिकल छवि और सबसे बढ़कर उसकी खिलखिल हंसी, सौमित्र का पीछा नहीं छोड़ रहे थे.

उसने एक दो बार करवटें बदली फिर बाहर कॉरीडोर में निकल आया.

बाहर शरदपूर्णिमा का चांद अपने पूरे शबाब पर था. हवा में हल्की सी ठंडक थी. सौमित्र घूमने की गरज से लॉन पर निकल आया. अभी वह लॉन के दूसरे सिरे तक पहुंचा ही था कि वहाँ चंपा के पेड़ के नीचे लगी बेंच पर वह बैठी दिखी. उसने चौंक कर पूछा,

'अरे शर्मिष्ठा, तुम, इस वक्त, यहाँ?'

'यही सवाल तो मुझे आपसे पूछना चाहिये. सुरेखा तो भीतर है. फिर आप जनाब यहाँ क्या कर रहे हैं?'

सौमित्र ने बहाना बनाया,

'भीतर कुछ सफोकेशन सा था. सोचा थोड़ा बाहर घूम लूं फिर चलूं. और तुम?'

'मैं तो कोणार्क आती ही रहती हूँ. कई बार ये मंदिर मुझे विचलित कर देता है.'

'मंदिर या उसकी मूर्तियाँ?'

'दोनों ही समझ लो.'

अब सौमित्र बेंच पर उसके पास बैठ गया. शर्मिष्ठा जैसे किसी प्रश्न पर

विचार कर रही थी. उसने अचानक पूछा,

'अच्छा सौमित्र एक बात बताओ. क्या कोई स्त्री एक ही समय में दो पुरूषों से एक साथ प्यार कर सकती है?'

सौमित्र ने कुछ सोच कर कहा,

'यह तो कोई स्त्री ही बता सकती है.'

फिर उसे गिरीश कर्नाड के नाटक 'हयवदन' की याद आई. शर्मिष्ठा को उसी के बौद्धिक संदर्भ में उत्तर देना चाहिये. उसने कहा,

'शायद कर सकती है. हमारे यहाँ गिरीश कर्नाड नाम के एक नाटककार हुये हैं. उनका नाटक है हयवदन. उसकी नायिका दो पुरूषों से प्यार करती है. एक सुंदर और बलिष्ठ है और दूसरा तेजोमय और बुद्धिमान पर अंत में उसे कष्ट ही उठाना पड़ता है.'

अब वह उठकर खड़ी हो गई,

'चलो थोड़ा टहलते हैं.'

चलते चलते उसने पूछा,

'और एक पुरूष? क्या वह एक समय में दो स्त्रियों से प्यार कर सकता है?'

सौमित्र को लगा दिल की बात कहने का सही अवसर है. उसने तुरंत कहा,

'हाँ, अगर 'दूसरी स्त्री' तुम्हारे जैसी सुंदर हो तो.'

'नाऊ यू आर फ्लर्टिंग मी'.

'नो, आई एम सीरियस.'

उसकी आवाज में कोमलता थी. उसे पहचानते हुये शर्मिष्ठा ने कहा,

'अच्छा ज्यादा रोमांटिक होने की जरूरत नहीं. जाओ, सुरेखा तुम्हारा इंतजार कर रही होगी.'

सौमित्र एक बार आगे बढ़कर शर्मिष्ठा को बाहों में भरना चाहता था. मूर्तियाँ उसे इसके लिये उत्प्रेरित भी कर रही थीं. पर उसकी हिम्मत नहीं पड़ी. वह वापस जाने के लिये मुड़ा. तभी शर्मिष्ठा ने आगे बढ़कर उसका हाथ अपने हाथों में लिया, धीरे से दबाया और कहा - 'सौमित्र, तुम बहुत अच्छे आदमी हो.'

अब इसका क्या मतलब है? वह अच्छा आदमी है इसलिये उसे उससे दूर रहना चाहिये या कि वह अच्छा आदमी है इसलिये उसकी संभावना अभी बनी हुई है? ये शर्मिष्ठा भी अजीब लड़की है. कभी एकदम पास कभी बहुत दूर! उसने पूछा, 'तुम भीतर नहीं चल रहीं?'

'नहीं मुझे चांदनी अच्छी लग रही है. मैं अभी यहाँ कुछ देर और बैठूंगी.'

सौमित्र कुछ निराश सा भीतर गया. भीतर जाते समय कॉरीडोर में उसे एक परछाईं सी दिखी. क्या सुरेखा थी? वह कमरे में पहुंचा. सुरेखा बिस्तर पर ही थी. वह आश्वस्त हुआ.

सुबह सब कुछ सामान्य था. नाश्ते के समय दोनों सहेलियाँ खूब हंस-हंस कर बातें कर रही थीं. एक दो बार सुरेखा ने कनखियों से सौमित्र की ओर देखा भी, पर कोई बात नहीं हुई. हाँ, कनखियों के साथ प्रक्षेपित उसकी मुस्कुराहट में कुछ हास्य, कुछ विस्मय, कुछ रहस्य और कुछ शरारत शामिल थे.

नाश्ते के बाद वे लोग राज नगर के लिये निकल गये.

राज नगर में अगला दिन सौमित्र को बहुत भारी लगा.

अपने बड़े शहर की भागम भाग से दूर वह कुछ दिनों के लिये यहाँ आया था. यहाँ उसकी पत्नी सुरेखा थी जिसके प्यार की खुशबू उसे बार-बार बुला रही थी. वह सुरेखा के प्रेम से बंधा यहाँ आया था. और किस चैन तथा सुकून के साथ उसने ये दस दिन गुजारे थे. पर अब वे समाप्ति पर थे. सुरेखा की खुशबू अब भी उसके मन में थी पर अब उसमें शर्मिष्ठा के खुले बालों की भीनी भीनी खुशबू भी शामिल थी. सुरेखा के चुंबन अब भी उसके ओंठों पर ताजा थे पर पीठ पर शर्मिष्ठा के वक्ष का दबाव भी उसे उत्तप्त कर रहा था. गालिब के शब्दों में काबा उसके पीछे था और कलीसा उसके आगे.

वह जानता था कि ये ठीक नहीं. शायद दोनों को पाना संभव भी नहीं. पर फिर भी वह शर्मिष्ठा का साथ चाहता था. एक अजीब मीठी सी कसक उसके मन में घर कर गई थी. ही वाज बिटन बाई अ बग. द लव बग.

पर वह दिन भर नहीं दिखी.

सुरेखा वापसी की तैयारी में लगी थी. उसने सुरेखा के साथ एक बार बाजार का चक्कर लगाया और काफी समय गहराती उदासी में गुजारा.

सुबह स्टेशन पर राजकिशोर जी और सुनंदाजी के साथ वह भी आई थी, उन्हें सी ऑफ करने. गाड़ी के आने तक वह सुरेखा से ही बात करती रही.

जब दूर क्षितिज पर गाड़ी का इंजिन दिखा तो वह सौमित्र के पास आई पूछा,

'फिर कब आयेंगे?'

सौमित्र कहना तो चाहता था कि आपकहें तो अभी रूक जायें पर उसने कहा,

'आप जब बुलायेंगी.'

उसने कहा,

'भूलियेगा मत, जल्दी आइयेगा.'

सौमित्र को लगा अचानक ये कितनी पास लगने लगती है. गाड़ी पर से हाथ हिलाते हुये उसने देखा, शर्मिष्ठा आंखों के कोर में आये आंसू पोंछ रही थी.

ये आंसू किसके लिये थे? सुरेखा के लिये, सौमित्र के लिये या अपने आप के लिये? सौमित्र का मन गहरी उदासी से भर आया.

सौमित्र राजनगर से बंटा हुआ मन लेकर वापस लौटा. उसमें सुरेखा का सहज आत्मीय प्यार था तो शर्मिष्ठा का गहरा आवेग भी; सुरेखा की शांत स्नेहिलता थी तो शर्मिष्ठा की ऊष्म चंचलता भी; सुरेखा के साथ धरती पर रहने की आकांक्षा थी तो शर्मिष्ठा के साथ नीले आकाश में उड़ने की इच्छा भी.

उसका ठीक से किसी काम में मन नहीं लगता. वह शर्मिष्ठा के बारे में जानना चाहता. सुरेखा को लिखे पत्रों में वह खोजता कि क्या शर्मिष्ठा ने उसके बारे में भी कुछ पूछा है. अक्सर लंबे खत के बाद 'सौमित्र कैसे हैं?' को ही वह शर्मिष्ठा के प्यार की अभिव्यक्ति मान लेता और मन ही मन खुश होता. शर्मिष्ठा का फोन आने पर वह आसपास ही मंडराता रहता कि उसे भी बात करने का अवसर मिले. जब सुरेखा उसे बताती कि शर्मिष्ठा तुम्हारे बारे में पूछ रही थी तो उसका दिल बल्लियों उछलने लगता. उसने राजनगर ट्रिपका एक फोटो, जिसमें वह, सुरेखा और शर्मिष्ठा तीनों समुद्र के किनारे एक साथ खड़े थे, अपने ऑफिस के ड्रार में रख लिया था जिसे वह दिन में कम से कम एक बार निकाल कर अवश्य देख लिया करता था.

उसका मन कहता,

'दिज इज मैडनेस. ये पागलपन है.'

'सो व्हाट. मुझे अच्छा लगता है.'

'इससे तुम्हें कुछ हासिल नहीं होगा.'

'क्या पता? कुछ हासिल हो ही जाये! फिलहाल मुझे आनंद आ रहा है.'

'तो एक बार फोन करके उससे बात कर लो. आरपार हो जाये.'

'ऐसी भी क्या जल्दी है?'

'तो भाड़ में जाओ.'

'हा हा हा...'

सौमित्र वैसे एक समझदार और मैच्योर व्यक्ति था. पर शर्मिष्ठा के मामले में एक लड़के जैसा उत्साह उसके मन में बना रहता. वह सोच ही नहीं पाता था कि वह एक विवाहित व्यक्ति है जिसे यह सब शोभा नहीं देता. एक नीली लौ की तरह शर्मिष्ठा की याद वह अपने मन में जलाये रखता था.

उसने अपने मन में कई चित्र बना लिये थे जो शर्मिष्ठा की ओर से भेजे गये प्यार के संकेत थे. यूं ही थोड़ी था कि उसने समुद्र में उसे अपनी बाहों में भरकर ऊपर उठा लिया था और देर तक यूं ही भींचे रखा था, या कोणार्क में उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा था, सौमित्र तुम अच्छे आदमी हो या ट्रेन पर आते समय कातरता के साथ पूछा था, फिर कब आओगे? और वो आंसू जो उसकी आंखों में दिखे थे, वो निश्चित ही सौमित्र के लिये ही थे. वह सोचता और कभी न कभी शर्मिष्ठा से मिलने की आस लगाता. कई बार तो वह सुरेखा से प्यार कर रहा होता पर उसके मन में इमेज शर्मिष्ठा की होती.

ऐसे ही एक दिन जब सुरेखा ने कहा,

'कल शर्मिष्ठा आने वाली है.'

तो उसने अपने उत्साह को छुपाते हुये कहा था,

'अच्छा? कैसे?'

'हम लोगों से मिलने आ रही है और क्या? बहुत दिनों से कह रही थी कि तेरी याद आ रही है. तो मैंने कहा आ जा, कुछ दिन साथ रहेंगे.'

सौमित्र ने इस सूचना को यूं ग्रहण किया कि शर्मिष्ठा उससे मिलने आ रही है. सुरेखा ने कहा,

'तुम दो एक दिन छुट्टी ले लेना. कहीं आसपास घूमने चलेंगे.'

वह कहना तो चाहता था कि एक दो दिन क्यों पूरे पंद्रह दिन की छुट्टी ले लूंगा पर कहा, 'देखता हूँ.'

शर्मिष्ठा आई तो उसकी खुशबू से सारा घर महक गया. तरह तरह के किस्से, पुराने और नये दोस्तों की कहानियाँ, सुरेखा की शादी के कुछ गुप्त समाचार दिनभर चलने लगे जिनमें समय समय पर सौमित्र को भी शामिल कर लिया जाता. इंदौर बड़ा शहर था और वे इसका पूरा लाभ उठाने के मूड में थे. सो कभी कभी दोपहर में मल्टीप्लेक्स में फिल्म, शाम को ढेर सारी खरीदारी, फिर रात में सराफे की चाट, रात के दो बजे तक इधर उधर की गप्पें. उनके दिन-रात इसी तरह बीत रहे थे.

सौमित्र ने पूरे दस दिन की छुट्टी ले ली थी. शर्मिष्ठा, जिसके बारे में वह महिनों से सोचता और चित्र बनाता रहा था, उसके सामने थी- उसका किसी और काम में मन कैसे लगता? घर में हंसीं मेहमान तो कैसे नींद आये वाली स्थिति थी और अरमान तो जाने कब से जागे हुये थे.

फिर सुरेखा के प्रस्ताव पर तीनों धार, मांडू, महेश्वर, ओंकारेश्वर की ट्रिप पर निकल गये. इस बार इतिहास का जिम्मा सौमित्र और सुरेखा ने सम्हाला था. सौमित्र ने बाजबहादुर और रूपमती की प्रेम कथा कुछ ज्यादा ही रूचि लेकर सुनाई. महेश्वर के किले से नर्मदा देखकर शर्मिष्ठा अभिभूत हो गई थी. तीनों ने नाव में बैठकर लंबी सैर की. शर्मिष्ठा ने महेश्वर के हथकरघा सेंटर से कई साड़ियाँ खरीद डालीं. ओंकारेश्वर में भी पुल से नदी पार करने के बदले उसने नाव से जाने की जिद पकड़ी और भगवान ओंकारेश्वर के दर्शन के समय महिष्मती की कथा सुनाती रही. वह खूब उत्साह में थी और सौमित्र को यह उत्साह एक प्रेमिका के उत्साह की तरह लग रहा था.

अंततः उसके जाने के दो दिन पहले वे लोग इंदौर लौट आये. उसके आगमन का उत्साह अब थोड़ी चुप्पी, थोड़ी उदासी में बदलने लगा था. रात्रि विश्राम के बाद सुबह जब सब चाय पीने बैठे तो सुरेखा को ढेर सारे काम याद आ गये. उसने शर्मिष्ठा से कहा,

'शर्मिष्ठा मैं एक घंटे के लिये बाजार होकर आती हूँ. तब तक तू तैयार हो जा. अगर मूड बना तो हम लोग दोपहर में फिल्म देखने चलेंगे.'

कहकर वह फुर्ती से निकल गई. अब शर्मिष्ठा और सौमित्र घर में अकेले थे. शर्मिष्ठा ने कहा,

'मैं नहाकर आती हूँ. फिर आकर तुम्हें कॉफी पिलाऊंगी.'

राजनगर की सारी यादें, इंदौर की सारी निकटता और उसके मानस पटल पर अंकित सारे चित्र सौमित्र के मन में अचानक लौट आये. उसकी प्रिय शर्मिष्ठा और वह खुद आज घर में अकेले थे. उससे मिलने ही तो वह इंदौर आयी है. वह भी कितना सिंपलटन है कि इस बात को समझ नहीं पा रहा है. नहीं, समझ तो गया है पर कह नहीं पा रहा है.

अचानक द्वार खुला. शर्मिष्ठा खुले बालों में, ढीली सी मैक्सी पहने उसके सामने थी. उसकी वही देह यष्टि जो समुद्र में पहली बार उसे सूरज की किरणों से उद्‌भासित दिखी थी एक बार फिर अपने पूरे उभार के साथ प्रस्तुत थी. बालों से वही भीनी भीनी खुशबू. ओंठों पर वही महीन सी आमंत्रित करती मुस्कान. उसने कहा,

'मैं कॉफी बनाकर लाती हूँ.'

वह किचन की तरफ बढ़ी. सौमित्र ने देखा उसकी भरी पूरी गोलाईयों वाले नितंब, कुछ और अधिक उभार पर थे. तू मेरे सामने है, तेरी जुल्फें हैं खुलीं, तेरा आंचल - नहीं, यहाँ आंचल नहीं था. आंचल ढलने के बाद जो चीज दिखती है वह स्वयं वहाँ पूरंपूर प्रस्तुत थी.

आज सौमित्र से रहा नहीं गया. उसका संयम सारे बांध तोड़ चुका था. शर्मिष्ठा किचन में थी और कॉफी के लिये दूध उबाल रही थी.

सौमित्र ने पीछे से जाकर उसे अपनी बांहों में भर लिया और उसकी गर्दन पर तीन चार चुंबन जड़ दिये. उसके भरे पूरे वक्ष सौमित्र की बाहों में थे और उसके पृष्ठ भाग का सुखद स्पर्श सौमित्र को अद्‌भुत सुख की अनुभूति करा रहा था. शर्मिष्ठा एक बारगी चौंकी फिर उसने दृढ़ता से कहा - 'नो, सौमित्र, नो.'

सौमित्र का बंधन थोड़ा ढीला पड़ा. शर्मिष्ठा ने कॉफी की पतीली वापस गैस पर रखी, दूसरे हाथ से गैस बंद की, सौमित्र के बंधन से अपने को मुक्त किया और बोली - 'चलो, ड्राइंग रूम में चलो.'

सौमित्र द्वार रोके खड़ा था,

'शर्मिष्ठा तुम समझती क्यों नहीं. मैं तुमसे गहरे प्रेम करता हूँ. जबसे राजनगर से लौटा हूँ तुम्हें भुला नहीं पाया हूँ, तुम्हारे बारे में ही सोचता रहता हूँ. आई एम मैड अबाउट यू.'

'मैं जानती हूँ.'

सौमित्र को थोड़ा आश्चर्य हुआ,

'कैसे, इससे पहले तो मैंने कभी तुमसे कुछ कहा नहीं?'

'मैंने तुमसे कहा था न कि मैं अंतर्यामी हूँ, सारी बातें जान लेती हूँ. उस दिन तुम जब कोणार्क में बाहर लॉन पर आये थे मैं तभी समझ गई थी.'

'ओह!'

'और शायद सुरेखा को भी इस बात का अनुमान है. पर उसका मुझ पर पूरा विश्वास है. मैं ये विश्वास तोडूंगी नहीं.'

गुस्से, अपमान और आवेग से सौमित्र की आंखों में आंसू आ गये. उसने भर्राई आवाज में कहा - 'शर्मिष्ठा, पर कम से कम हम एक बार तो...'

'सौमित्र तुम समझते क्यों नहीं? अगर हमने इस रिश्ते को आगे बढ़ाया तो हम तीन जिंदगियाँ बरबाद कर रहे होंगे. एक सुरेखा की, दूसरे मेरी और तीसरी खुद तुम्हारी. और देखो, अब रोना नहीं... मुझे पुरूषों की आंखों में आंसू अच्छे नहीं लगते.'

फिर वह खुद ही आगे आयी, सौमित्र को अपनी बांहों में भरा, एक भरपूर चुंबन उसके माथे पर लिया और कहा,

'गो सौमित्र गो. जो तुम चाहते हो वह संभव नहीं. जाओ ड्राइंग रूम में बैठो. मैं कॉफी लेकर आती हूँ.'

जब तक वह कॉफी लेकर आई सुरेखा आ चुकी थी. ड्राइंग रूम में एक असहज सी चुप्पी थी. टेबल पर कॉफी देखकर उसने कहा,

'वाह वाह, तुम्हें कैसे मालूम पड़ा कि मुझे कॉफी की बहुत जरूरत है?'

शर्मिष्ठा ने वातावरण हल्का करते हुये कहा,

'मैं शुरू से तेरे दिल की बात जान लेती हूँ.'

सौमित्र को अब एक एक पल भारी लग रहा था. उसने कहा,

'ऑफिस से फोन आया था. मुझे अब जाना पड़ेगा.'

'शर्मिष्ठा के जाने तक तो आ जाओगे न?'

'देखता हूँ.'

उसने कहा था.

पर वह शर्मिष्ठा के जाने तक लौटा नहीं था. अगले दिन टूर का बहाना बनाकर शहर के बाहर चला गया था. कुछ महिनों तक वह ऐसा ही करता रहा. उसके मन में अजब तूफान मचा था. क्या शर्मिष्ठा उसके साथ खेल रही थी? अगर वैसा था तो वह समझ क्यों नहीं पाया? आखिर वह कह तो ठीक ही रही थी. उसे खुद कोई भ्रम नहीं पालना चाहिये था. अगर शारीरिक आकर्षण हो भी गया था तो क्या उसे रोकना नहीं चाहिये था? पर फिर वह खुद क्यों आगे बढ़ी? क्या बात करते हो, वह कहाँ आगे बढ़ी? शी वाज जस्ट बींग नॉर्मल. प्रवाहमय और प्रसन्नचित्त. तुम्हीं ने उसमें से अर्थ निकाल लिये. जो भी हो, अब यह अवसाद कैसे हटे, कैसे हटे?

यह सब सोचते हुये वह अंत में वहीं पहुंचा. अपनी फेवरिट जगह, यानी महेश्वर में नर्मदा के घाट पर. शाम का झुटपुटा था. नर्मदा अपने चौड़े पाट में मंथर प्रवाह के साथ बही चली जा रही थी. सामने मंदिरों की श्रृंखला और पीछे किले की प्राचीर.

अचानक उसके मन ने कहा,

'तुमसे कहा था भागो मत, गिरोगे.'

'कई बार खुद ही अपनी बात मानने को मन नहीं करता. सीमारेखा तोड़ने की इच्छा होती है.'

'उसने कोणार्क में भी तुम्हें चेताया था.'

'पर मना भी तो नहीं किया था?'

'अब इसका क्या फायदा? अब तो मना भी कर दिया.'

'ठीक है तो अब मैं भी कठोरता बरतूंगा.'

'कठोरता नहीं, याद करो. वो अफसाना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन उसे एक खूबसूरत मोड़ देकर भूलना अच्छा...'

तभी शाम की आरती शुरू हुई. आरती की पवित्र ध्वनि से उसका मन कुछ शांत हुआ. कुछ स्त्रियाँ आसपास एकत्र हो गई थीं और नदी में दीप प्रवाहित कर रही थीं. नदी में जगमग तैरते सैकड़ों दिये, प्रवाह के साथ बहुत दूरी तक जाते और फिर एक एक कर दिखना बंद हो जाते थे. अचानक सौमित्र के मन में एक विचार आया. शर्मिष्ठा एक नीली लौ वाले दिये में तब्दील हो गई है. समय के प्रवाह में बहते वह उसके मन में प्रविष्ट हो गई है और वहाँ उसकी रोशनी सुरक्षित है. उस लौ की उदास रोशनी उसकी आंखों में प्रभासित है पर उसे और कोई नहीं देख पाता. अब वह उसके मन और आंखों में रह सकती थी. यह विचार उसे खूबसूरत लगा.

इसके बाद अगले बीस साल वह शर्मिष्ठा से कभी नहीं मिला. सुरेखा कभी कहती भी कि फोन पर शर्मिष्ठा तुम्हारी याद कर रही थी तो वह टाल जाता. एक आध बार वह इंदौर आई भी तो सौमित्र टूर पर चला गया और तब तक नहीं लौटा जब तक शर्मिष्ठा वापस नहीं चली गयी. सुरेखा कभी कभी ज्योतिर्मय से उसके अफेयर के बारे में बात भी करती पर आगे क्या हुआ यह कभी पता नहीं चल पाया.

धीरे धीरे मन में जलती उस नीली लौ की रोशनी मध्यम पड़ती गई थी और उदासी की एक गहराती छाया उसकी आँखों के नीचे छाती गई थी.

अब जब उनके विवाह को बीस साल हो चुके थे, राजकिशोर जी का परिवार जाने कब का शहर छोड़ चुका था और वह खुद उस शहर से बहुत दूर इंदौर में अपना डेरा बना चुका था तो अचानक उस छोटे से शहर की याद क्यों?

असल में वह किसी काम से कलकत्ता जा रहा था और एक दो दिन से सुरेखा लगातार अपने उस छोटे से शहर राजनगर को याद कर रही थी. फिर उसने कह ही दिया,

'सुनो, इस बार लौटते समय अपना राजनगर देखते आना. सुना है मिल बंद हो गई है, पता नहीं अपना घर कैसा दिखता है, बचा भी है या नहीं, मुझे उसे देखने की बहुत इच्छा हो रही है.'

'तो तुम भी चलो!'

'मेरा अभी जाना नहीं हो सकेगा. बच्चों की परीक्षाऐं हैं. तुम देख आओ, आकर मुझे खबर देना. फिर कभी साथ में चलेंगे.'

'ठीक है. मैं तो कलकत्ता जा ही रहा हूँ. लौटते समय एक-दो दिन राजनगर रूक जाऊँगा.'

सौमित्र ने कहा था और सोचने लगा था, कैसा होगा राजनगर? अपनी उसी पुरानी चहल पहल से भरपूर या उसके अपने शहर की टेक्सटाइल मिलों की तरह उजाड़? देश इस बीच बहुत तेजी से बदला था. कोर इंडस्ट्री का स्थान मनोरंजन उद्योग और आई.टी. इंडस्ट्री ने ले लिया था और वह खुद इसलिये बचा था कि उसने अपने शहर में एक सफल स्टूडियो की स्थापना कर ली थी. पर क्या राजनगर इस बदलाव को झेल पाया होगा?

और शर्मिष्ठा? अचानक आज बहुत तीव्रता से उसे शर्मिष्ठा की याद आई और पूरा घटना क्रम एक चलचित्र की तरह उसके दिमाग से गुजर गया. मन में पीड़ा की एक लहर सी उठी. उसे उसके साथ इस कदर बेरूखी नहीं बरतनी चाहिये थी. क्या वह अब भी वहाँ होगी? सुरेखा ने बीच में बताया तो था कि उसका परिवार राजनगर छोड़कर कहीं और चला गया है. तो शायद वह भी चली गई हो! बाद में तो उसके फोन आने भी बंद हो गये थे और ज्योतिर्मय, उसका क्या हुआ? अचानक बहुत से सवाल, बहुत सारी स्मृतियाँ, बहुत सारे चित्र उसके मन में घर करने लगे.

कलकत्ता से राजनगर जाते समय वह इन्हीं सवालों और स्मृतियों में डूबा रहा था.

इस बार जब वह स्टेशन पर उतरा तो रसायन की गंध उतनी तीखी नहीं थी. स्टेशन मास्टर के स्थान पर एक दुबला पतला अधेड़ सा व्यक्ति बैठा था जिसने एक क्षण उसे देखने के बाद कहा,

'ओ शौमित्रो बाबू? इतने साल बाद हमारे शहर में आया है.'

'अरे आप चैटर्जी बाबू हैं न! आप अभी तक यहीं हैं?'

'नइँ नईं, पूरा उड़ीसा घूम कर आया. झार सुगड़ा, राऊरकेला, टीटलागढ़, पुरी सब देख लिया है. अभी रिटायरमेंट नजदीक है न, तो इधर ही घर बना लिया. आप कैसा है?'

'ठीक हूँ चैटर्जी बाबू.'

सौमित्र को अच्छा लगा कि इतने दिन बाद भी किसी ने उसे यहाँ पहचाना.

'और सुरेखा. और बच्चा लोग...?'

'सब ठीक हैं. इंदौर में हैं.'

'ओह इंदौर, बहुत दूर है. हम एक बार गया था वहाँ. कभी सुरेखा बेटी के साथ आओ!'

'जी जरूर. अच्छा चलूं?'

सौमित्र उनसे हाथ मिलाकर बाहर आया और एक कप चाय के लिये नुक्कड़ की दुकान पर रूका. हमेशा गुलजार रहने वाले बाजार में अजब मुर्दनी छाई थी. सौमित्र ने चाय वाले से पूछा,

'क्या बात है भाई, क्या बाजार बंद है आज?'

'कहाँ बाबू, आजकल ऐसा ही रहता है, मील जो बंद हो गई.'

'क्यों?'

'ये तो सेठ जाने कि सरकार जाने!'

वे कारखाने को मील कहते थे. सौमित्र कंधे पर बैग लटकाये पैदल ही चल पड़ा. सड़कों पर वह चहल पहल नहीं थी. न साईकिल पर टिफिन टांगे आते-जाते मजदूरों के झुंड, न कच्चा माल ले जाते ट्रकों की कतारें, सब कुछ सूना सूना, सुनसान. देश में कागज की तो बहुत मांग है फिर मील क्यों बंद हुई? सौमित्र सोच रहा था. चलो कुछ लोगों से बात करूंगा तो मालूम पड़ेगा. पास के एकमात्र होटल में बैग छोड़कर, वह शाम के झुटपुटे में घूमने निकला.

उन कॉलोनियों को, जिन्हें वह आखिरी बार जीवन से भरपूर देख गया था, पूरी तरह उदास पाया. सुरेखा का घर पूरी तरह खंडहर हो गया था. दरवाजे उखड़े पड़े थे और कोई एक दो खिड़कियों के फ्रेम तक उखाड़ ले गया था. बाउंड्री जगह-जगह से टूट गई थी. अमरूद के पेड़ अपनी जगह से नदारद थे और जामुन भी निस्तेज सा खड़ा दिख रहा था. वह घर के भीतर, आंगन तक नहीं गया, क्योंकि अब घर का कोई 'भीतर' नहीं बचा था. पूरा घर खुला हुआ था.

मजदूर बस्ती की हालत तो और भी खराब थी. अधिकतर मजदूर अपने दो कमरे के मकान के सामने वाले वरांडे में हाथ पर हाथ धरे बैठे थे. इस बार घरों के पिछवाड़े से निकलता धुंआ उन्हें प्रसन्न नहीं उदास कर रहा था. घरों के सामने अलगनी पर टंगे कपड़े, गाढ़े रंग के पेटीकोट, साड़ियाँ और पैंट उस उदासी को और गहरा कर रहे थे.

सौमित्र ने कोने वाले घर में सामने बैठे एक परिचित से दिखने वाले व्यक्ति से बातचीत शुरू की,

'क्या हाल हैं भाई साहब?'

'बहुत खराब हैं. सालभर से मील बंद पड़ी है. पहले तो नदी में पानी नहीं रह गया. फिर बांस भी कम पड़ने लगा. मैनेजमेंट ने प्रॉडक्शन कम कर दिया तो कीमत और बढ़गई. हमारी मील का कागज मंहगा हो गया. फिर कागज विदेश से मंगवाया जाने लगा, वो सस्ता पड़ता था. इससे मांग और कम हो गई. इसको देखकर मैनेजमेंट ने मील बंद कर दी. एक साल से तनख्वाह नहीं मिली है. अब तक घरों से निकाले नहीं गये यही गनीमत है. पर वह भी जल्दी ही होगा. क्या करेंगे, कहाँ जायेंगे कुछ समझ नहीं आता.'

सौमित्र थोड़ा आगे बढ़ा कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा,

'आप राजकिशोर जी के दामाद हैं न, सौमित्र बाबू.'

'जी.'

'मैं भदौरिया. उनके पड़ोस में ही रहता था. आपको उनके यहाँ देखा है. अच्छा हुआ राजकिशोर जी समय पर मील छोड़कर चले गये. हम लोग तो यहाँ फंसकर रह गये हैं.'

'क्यों क्या मील अब नहीं खुलेगी?'

'मुझे नहीं लगता कि अब खुलेगी. हमारे कागज की मांग पूरी तरह गिर गई है. मील पुरानी हो गई है और मॉडर्नाइजेशन का खर्चा बहुत होगा. उसके बाद भी हमारा कागज विदेशी कागज से सस्ता होगा इसकी कोई गारंटी नहीं. जब तक नीति नहीं बदली जाती हमारी फैक्टरी का खुलना मुश्किल है. मैं मेंटेनेंस स्टाफ में हूँ, इसलिये बचा हुआ हूँ. बाकी सबकी छुट्टी कर दी गई है.'

'पर मील में तो हजारों लोग काम करते थे, उनका क्या होगा?'

'भगवान जाने.'

कहकर उन्होंने गहरी सांस ली. फिर कहा,

'भैया आप अच्छे मिल गये, आप तो मुझे अपना पता और फोन नंबर दो, मैं आपसे मिलने आऊंगा. आप बड़े शहर में रहते हैं. मुझे कोई न कोई काम दिलवा ही देना.'

सौमित्र ने अपना पता और फोन नं. उन्हें दिया और आश्वस्त करते हुये कहा,

'जी, आप आइये. मैं कोशिश करूंगा.'

जब सौमित्र ये कह रहा था तो उसे अपने बड़े शहर वाले अनेक दोस्तों से हुई, जाने कितनी मुलाकातें याद हो आईं. वे हर समय एक नकली उत्साह के साथ शुरू होती थीं. काफी गरमजोशी के साथ हाथ मिलाये जाते थे, फिर एक दूसरे के परिवार के हाल चाल पूछे जाते थे, कॉलेज के जमाने की याद की जाती थी, फिर कहीं खड़े होकर एक कप चाय या कॉफी हाउस में बैठकर कॉफी. किसी पार्टी या कार्यक्रम में हुये तो एक कोना तलाश लिया जाता था. और फिर जैसे अचानक मित्र कहता था,

'यार, हालत खराब है.'

बैंक में काम करने वाला कहता था हालत खराब है. सार्वजनिक संस्था में काम करने वाला कहता था यार नौकरी छोड़ना चाहता हूँ हालत बहुत खराब है, प्राइवेट इंडस्ट्री वाला निकाले जाने की कगार पर खड़ा कहता था, यार नौकरी देख मेरे लिये. दिन में दस लोग टकराते थे काम ढूंढ़ते हुये. आसपास के गांवों के कृषक मजदूरी ढूंढ़ते शहर में आते थे और कहते थे भैया खेती में कुछ निकल नहीं रहा, हालत खराब है.

पर वित्तमंत्री कहते थे सब ठीक हो जायेगा और फिर टैक्स लगाने की जुगत में भिड़ जाते थे. मुख्यमंत्री कहते थे मैं क्या करूं? और हंसने लगते थे. सरकार ने कारखाने बेचने के लिये एक मंत्री नियुक्त कर लिया था जैसे कोई दिवालिया होने की कगार पर हो और घर के बर्तन भांड़े बेच रहा हो. देश वैश्विक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने को उतावला था भले ही घर में हजारों लोग बेरोजगार हो जायें. सरकार विदेशी पूंजी को आमंत्रित करने में पलक पांवड़े बिछाये दे रही थी हालांकि वे हमारी बची खुची पूंजी को समेटने के लिये ही यहाँ आ रहे थे. सौमित्र को गांधी और शूमाकर याद आये. आदमी अर्थव्यवस्था के लिये था या अर्थ व्यवस्था आदमी के लिये?

सौमित्र का मन घबरा गया. वह गहरी निराशा से भर उठा. क्लब, अस्पताल. मील सब पर ताले पड़े थे. उसने सोचा एक बार लक्ष्मीनारायण मंदिर में दर्शन कर लूं. कम से कम उसके दरवाजे तो खुले होंगे. भगवान से ही पूछूंगा कि क्या आपको पता है कि मील क्यों बंद हुई और अब खुलेगी या नहीं?

मंदिर पहाड़ी पर बना था.

वहाँ जाने के लिये कोयले की राख और कचरे के ढेर के बीच बनी सड़क से होकर गुजरना पड़ता था, हालांकि पहाड़ी खुद मनोरम थी और मंदिर पहुंच कर मन धुला धुला सा हो जाता था. ऊपर से फैक्टरी एरिया, कॉलोनियाँ, दूर टिमटिमाते गांव और क्षीण नदी तथा उस पर बना पुल एक विहंगम .श्य का निर्माण करते थे.

दर्शन करने के बाद वह पीछे रेलिंग से घिरे दालान की ओर गया जहाँ पहले कभी वह और सुरेखा बैठा करते थे. कुछ देर वहाँ पड़ी बेंच पर बैठ लूं, सोचा था.

तभी उसे लगा सामने कोने वाली बेंच पर एक परिचित आकृति बैठी है. थोड़ा आगे बढ़ा. पहले उसे भ्रम हुआ कि वही है. फिर पास पहुंचा तो पक्का हुआ. उसने आश्चर्य से कहा,

'शर्मिष्ठा?'

आकृति चौंक कर खड़ी हुई,

'ओ बाबा रे बाबा. सौमित्र! तुम यहाँ? मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा. अकेले हो या सुरेखा भी आई है?'

'फिलहाल तो अकेला ही हूँ. कलकत्ता गया था. सोचा लौटते में अपना पुराना शहर देखता चलूं.'

अचानक मिलन का आश्चर्य अब थोड़ा कम हो चला था. सौमित्र ने पूछा,

'और तुम?'

'मैं तो यहीं बस गई हूँ. इस शहर में बस यही एक सुकून की जगह रह गई है. सो अक्सर यहाँ आ जाती हूँ.'

सौमित्र आगे कुछ पूछता उसके पहले ही उसने कहा,

'चलो घर चलो. बाकी बातें घर पहुंच कर करेंगे. ओवर अ कप ऑफ कॉफी.'

पुरानी जिंदादिली उसमें अभी भी बची थी. रास्ते भर ज्यादा बातचीत नहीं हुई. उसने बताया कि वह मील बंद होने के बाद प्रायवेट एरिया में रहने चली गई थी. पापा ने तो बहुत पहले ही नौकरी बदल ली थी पर उसने वहीं रहना तय किया. सौमित्र के मन में सवाल आते रहे थे कि ऐसा क्या था कि वह पापा के साथ नहीं गयी? वह यहाँ क्या कर रही है? और घर परिवार? पर उसे लगा यह सब एक

साथ पूछना असभ्यता होगी. वह साथ चलता रहा, सुरेखा तथा बच्चों के बारे में उसके सवालों का जवाब देते हुये.

उसका घर छोटा मगर सुंदर था. तीन कमरों वाला मकान. सामने छोटा सा लॉन. उदास रंगों की साज सज्जा वाले ड्राइंगरूम में सौमित्र को बिठाते हुये उसने कहा,

'तुम बैठो, मैं कॉफी बना कर लाती हूँ'.

कुछ देर बाद जब वह सलीके से ट्रे में कॉफी और कुछ नमकीन लेकर आई तो उसने कपड़े बदल लिये थे. मॉडर्न स्टाइल का शरारा और टॉप, जो इथनिक डिजाइन का था और जिसमें से उसकी देह यष्टि और खूबसूरती के साथ प्रगट हो रही थी. उसे लगा वह अभी भी सुंदर थी.

बातचीत का सिलसिला शुरू करते हुये सौमित्र ने कहा,

'मील और कॉलोनी एरिया देख कर आ रहा हूँ. वह सब देखकर बहुत दुख हुआ. कैसी वाइब्रेंट जगह थी. और अब कैसी मुर्दनी छाई है.'

शर्मिष्ठा ने कहा,

'लोगों ने तुम्हें अलग अलग कारण दिये होंगे पर मुझे लगता है कि चीजों को थोड़े वाइडर पर्सपेक्टिव में देखना चाहिये. सवाल ये है कि क्या आप 'ब्रिक और मोर्टार' कही जाने वाली 'ओल्ड इकॉनॉमी' को समाप्त करके, यानी उत्पादन की तमाम प्रक्रियाओं को मारते हुये, 'न्यू इकॉनॉमी' यानी 'इन्फर्मेशन टेक्नॉलॉजी' और मनोरंजन उद्योग के बल पर अर्थव्यवस्था को रिवाइव कर लेंगे? उन सबका क्या होगा जो अपने घरों और झुग्गियों के सामने बेरोजगार बैठे हैं काम का इंतजार करते हुये? या आप उन्हें अपनी 'स्कीम ऑफ थिंग्स' से पूरी तरह बाहर कर देंगे? क्या आप उन्हें मरने के लिये यूँ ही छोड़ देंगे?'

सौमित्र ने वातावरण को हल्का करने की गरज से कहा,

'वाह क्या बात है. बातें अभी भी बहुत समझदारी की कर लेती हो.'

उसने मुस्कुराते हुये कहा,

'कभी कभी मुझे लगता है कि मुझे इतना समझदार नहीं होना चाहिये था. फिर मैं भी आम लड़कियों की तरह जीवन गुजारती.'

अब वह खुलकर हंसने लगी थी,

'अच्छा एक बात बताओ. मेरे इंदौर से आने के बाद तुमने मुझे कभी फोन क्यों नहीं किया? कभी पत्र क्यों नहीं लिखा? कभी मिलने की कोशिश क्यों नहीं की?'

सौमित्र ने कुछ सोच कर जवाब दिया,

'तुमने उस दिन कह तो दिया था कि मैं तुम्हारे जीवन से बाहर रहूँ. इसी में समझदारी है. तब मैंने प्रण किया कि मैं पूरी तरह से तुम्हारे जीवन से बाहर चला जाऊंगा. मैंने अपना प्रण निभाया.'

इस बार शर्मिष्ठा ने अपनी गहरी काली आंखों से झांकते हुये सौमित्र की ओर देखा. उन आंखों में दुख था, वेदना थी और थी एक तरह की कातरता, फिर उसने कहा,

'मुझे क्या मालूम था कि तुम मेरी बात पर पूरा पूरा विश्वास कर लोगे!'

सौमित्र के मन में भी वेदना की एक लहर सी उठी. शर्मिष्ठा की आंखों ने उसके मन में प्रवेश कर लिया था. मन में जलती नीली लौ एक बार फिर उद्भासित हो उठी. उसे लगा कि न वह उसे पहले समझ पाया था और न आज. पर उसे महसूस हुआ कि उसकी वेदनापूर्ण मुस्कुराहट के पीछे जरूर कोई गहराता दुःख छुपा है.

अचानक उसने पूछा,

'और ज्योतिर्मय? उसका क्या हुआ?'

'ही वाज किल्ड. किल्ड बाई द मैनेजमेंट'

सौमित्र को गहरा धक्का लगा. ओह! तो ये था इसका गहराता दुःख. शर्मिष्ठा कह रही थी,

'मील को पहले तो मैनेजमेंट ने ही खोखला किया. फिर जब वह लगातार घाटे में चलने लगी तो उसे बेचने का मन बनाया. दिक्कत ये थी कि उन हजारों मजदूरों और कर्मचारियों का क्या किया जाये जो इसमें काम करते थे. जमीन और प्रॉपर्टी की तो अच्छी कीमत मिल जाती पर आदमी, इनका क्या किया जाये. ज्योतिर्मय मजदूरों की तरफ से लड़ रहा था. वह चाहता था कि अव्वल तो मील चालू रखी जाये. और अगर बेचने का निर्णय होता है तो सबसे पहले मजदूरों को मुआवजा मिले, कि उनका जीवन चल सके. मैनेजमेंट ने फेस आउट प्लान बनाया था, वे धीरे धीरे मजदूरों को बाहर कर रहे थे. ज्योतिर्मय वन टाइम सेटलमेंट की मांग कर रहा था. मील बेचने में सबसे बड़ा रोड ब्लॉक वही था और थी उसकी यूनियन. देन दे डिसाइडेड टू किल हिम.'

'कैसे?'

'शॉट. शॉट डैड इन ब्रॉड डे लाइट'.

'कहाँ?'

'वहीं चौराहे पर जहाँ वह सभाएं किया करता था.'

'किसने?'

'हायर्ड किलर्स थे. यू.पी. से बुलवाये गये थे. बाद में पकड़े गये. अभी मुकदमा चल रहा है.'

सौमित्र के मन में दुख गहराता चला जा रहा था. उसने पूछा,

'डिड यू मैरी ज्योतिर्मय? तुमने उससे विवाह कर लिया था?'

'नहीं. तुम लोगों के जाने के बाद मैंने एक दो बार उससे कहा पर वह कहता रहा कि आंदोलन खत्म हो जाये तब करेंगे. करीब पांच साल तक आंदोलन चलता रहा. इस बीच पापा ने दूसरी जगह जॉब कर ली. मुझसे साथ चलने को कहते भी रहे पर मैं ज्योतिर्मय का इंतजार कर रही थी. देन ही वाज मर्डर्ड. मैं पापा के पास जाना नहीं चाहती थी. आईटुक अप अ जॉब हियर, एंड स्टेड. फिर मुझे ज्योतिर्मय का केस भी तो लड़ना था.'

सौमित्र के मन में जो चल रहा था उसे दुःख, वेदना, कातरता और ग्लानि जैसा कुछ कहा जा सकता था. अब अगर वह वहाँ रूकता तो आंसुओं का बांध कभी भी टूट सकता था. उसे याद था कि शर्मिष्ठा को पुरुषों की आंख में आंसू अच्छे नहीं लगते.

वह उठा. शर्मिष्ठा के पास जाकर उसे धीरे से गले लगाया और कहा,

'आई थिंक यू शुड चेंज द प्लेस. तुम इंदौर आओ, शायद मैं तुम्हारी मदद कर सकूं.'

उसने अपनी उसी वेदनापूर्ण मुस्कुराहट को चेहरे पर लाते हुये कहा,

'मैं क्यों इंदौर आऊंगी? तुम लोग अपना जीवन, अच्छी तरह चला रहे हो. मैं उसमें क्यों विघ्न पैदा करूं?'

सौमित्र ने धीरे से उसका हाथ अपने हाथ में लिया, हल्के से दबाया और बाहर निकल आया.

स्टेशन का रास्ता पकड़ने से पहले उसने मुड़ कर देखा. वह सामने द्वार पर खड़ी थी अपनी उसी वेदनापूर्ण मुस्कुराहट के साथ.

पीछे कारखाने और कॉलोनी की तरफ गहरा अंधकार था.

एक तरफ मरता हुआ कारखाना था और दूसरी ओर हाथ से फिसलता जीवन! बीच में वह खड़ा था, बेबस, असहाय.

आसमान पर पीला उदास चांद निकल आया था. अचानक हवा ने दिशा बदली. नदी की तरफ से आती तीखी रासायनिक गंध ने उसके मन में प्रवेश किया. इस बार उसमें एक स्वाद भी था- कसैला.

बरसों से मन में गहराती उदासी अब सतह पर आ गई.

उसने देखा, वह फूट फूट कर रो रहा था। स

मो.98262-56733

रामकिशोर मेहता

पहाड़ी स्त्री

कमर पर लदा होता है
या फिर
पेट में पल रहा होता है
पहाड़
पहाड़ी स्त्री के।

संकट

मूल्यों के
संकट की घड़ी में
स्थापित बेईमान
कहीं अधिक
ईमानदार दिखाई पड़ते हैं।
कल कौन जीतेगा चुनाव
यह किसी
समाज की नब्ज़ पर हाथ रखे
पत्रकार से नहीं
सट्टेबाज से पूछिए।

निहितार्थ

वह कोई पेड़ नहीं
जो झुक जाए
अपने फलों के बोझ से
और तुम उचक कर
तोड़ लो।

या फिर तुम उस पर
पत्थर उछालो
और वह चुआता जाए
तुम्हारे लिए
रस भरे मीठे फल।
वह आदमी है
और
अच्छे से पहचानता है
उसकी तरफ उछाले गए
प्रश्नों का निहितार्थ।

असामान्य

वे बड़े करुण है
उन्हें दर्द होता है
यदि पिल्ला भी आ जाए
उनकी गाड़ी के नीचे।

गाय तो पूज्यनीय है
उनके लिए
जान लेने से भी नहीं हिचकते
धर्म की रक्षार्थ

राजनीति में
बहुत छोटी सी बात होती है
आठ साल की बच्ची के साथ
बलात्कार और फिर हत्या
यदा कदा।

सैनिक तो होते ही इसलिए
एक संख्या से अधिक
अर्थ नहीं रखता उनके लिए
सैनिकों का शहीद हो जाना। स

बी-11 शिवालय बंग्लाज
सरकारी ट्यूब वेल के पास
बोपल, अहमदाबाद 380058
मो.9408230881

ओम ठाकुर

बज रहा है सितार

सितार बज रहा है/कहीं
किसी घर में
सड़क से दूर/मगर
सड़क तक पहुँच रहा सितार।

कंधे पर बस्ता लटकाये
स्कूल-बस के इंतजार में
खड़ी लड़की
भूल गई/कि वह
बस के इंतजार में खड़ी है

भूल गई है/कि
माँ ने संगीत सीखने से मना किया है
कि/माँ के पास/फीस के
पैसे नहीं है।

भूल गई है/लड़की
कि/स्कूल के लिए चलने के ऐन पहले
क्या कहा था माँ ने

उसके सामने से
चली जा रही है बस
मगर/वह
नहीं देख रही कुछ
शायद/उसे
यह भी नहीं मालूम
कहाँ खड़ी है वह।
दूर/कहीं
किसी घर में
बज रहा है सितार।

गली के बच्चों के साथ

मुझे नहीं था मालूम/कि
बच्चों की खिलखिलाहट में
होती चिनगारी/जो
मन के बेपनाह कूड़े को
जला कर देती भस्म
कि/दलदली ज़मीन/देखते ही देखते
क्रिकेट के मैदान में
हो जाती तब्दील।

थके पैर
उचककर
तोड़ लेते अमरूद
लाँघ जाते पहाड़

मन
स्कूल के दिनों-सा
कालूडोम तो अब्दुल्ला के गले में
बाहें डाल निकल जाता/भेद के
तमाम परदों के पार।

पतझर में इठलाता बसंत।

हवा
मन के एकांत कोने में
रचती/एक और
भरापूरा/ताज़ातरीन मन।

उस दिन
पहली बार जाना मैंने
हँसते हुए
गली के छोटे-छोटे बच्चों के साथ।

तुम्हें देकर

तुम्हें देता हूँ
बिना पूछे घर में चली आई
ये/बाँकी-तिरछी
धूप।

बेझिझक

खिड़की का परदा ठेलकर
कमरे में नउचती
हवा।

चूल्हे पर उबल रही
चाय की
मनभीनी गंध/सब
देता हूँ तुम्हें।

तुम्हें देकर/ हर चीज़
हो जाती मेरे लिए
अनमोल।

और मैं
यह तुम जानो
मगर/अपने तईं तो
हो जाता मैं भी
खुद को तुम्हें देकर
तमाम चीजों के साथ। स

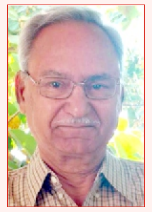

205, सुदामानगर, अन्नपूर्णा सेक्टर,
मो.99260-64604

मधु शुक्ला
गीत

मैं समय की धार में बहती अचानक
आ लगी हूँ रेत-सी तट से तुम्हारे।

रेत में कुछ शंख भी हैं सीपियाँ भी
कैद इसमें वक्त की अनुभूतियाँ भी
भूल कर अपनी धरा अस्तित्व अपना
आ टिकी हूँ बेल-सी वट से तुम्हारे।

भटकती फिरती तटों पर दिन-दुपहरी
लौट आयी प्यास की मारी टिटहरी
छोड़कर मेघों भरा आकाश सारा
चाह में दो बूँद की घट से तुम्हारे।

मौसमों का दूर तक आभास कब था?
हाथ में आठों प्रहर मधुमास कब था?
शब्द-लय-सुर-ताल-नव रस-छन्द लौटे
बाँसुरी में आज बँसवट से तुम्हारे।

ये महज संयोग है या लेख विधि का
टूटता यूँ ही नहीं घेरा परिधि का
मैं बनाती राह खुद पगडंडियों सी
आ मिली हूँ आज पनघट से तुम्हारे।

6-सांई हिल्स कोलार रोड
भोपाल - 462042 मो.98931-04204

बापू
शिव चौरसिया

मानो जी मानो बापू का उपदेस
सत्त-अहिंसा गले लगई लो, दई दो झूठ के ठेस
सत्त-अहिंसा...

गाँधीजी था सत का सूरज, कलजुग का अवतार
डरतो थो परताप-तेज से, धरती को इंधियार
फेलग्यो उजियारो संदेस
सत्त-अहिंसा...

बापूजी था असा महात्मा, जेसा संत कबीर
कथनी ने करनी में जिनने, जानी के पर-पीर
मिट्इद्या जग का नरा कलेस
सत्त-अहिंसा...

गाँधी में गोतम की करूना, थो ईसा को प्यार
सच्चई थी उनमें इतरी के, निरमल गंगा धार
मानग्या ई के देस-बिदेस
सत्त-अहिंसा...

डेढ़ पसली काया उनकी, आँधी सरखो जोर
काट गुलामी की जंजीरा लाया उजली भोर
बदलग्यो भारत को परिवेस
सत्त-अहिंसा... स

130, विद्यानगर, उज्जैन-456010
मो.9770078000

पेड़ की छाल पर लिखी पंक्तियाँ
रमेश दवे

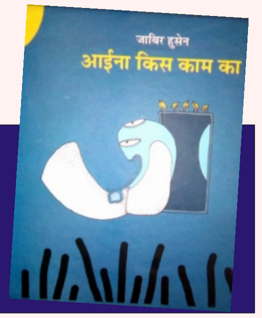

कविता संग्रह - आईना किस काम का
कवि- जाबिर हुसैन
प्रकाशक - दोआबा प्रकाशन
मूल्य - रू 499/-

'आईना किस काम का' वर्ष 2019 में प्रकाशित कविता-संग्रहों में एक प्रतिनिधि-संग्रह कहा जा सकता है। जाबिर हुसैन गत तेरह वर्षों से 'दोआबा' जैसी अत्यन्त साफ-सुथरी, विचारधाराओं के प्रतिबंधों से मुक्त स्वतंत्र एवं स्वायत्त चेतना की पत्रिका निकाल रहे हैं। उन्हें एक आला-दरजे के सम्पादक के रूप में तो हिन्दी-उर्दू अदब की दुनिया में पहचान और प्रतिष्ठा मिली, लेकिन एक कवि के रूप में उनके समकालीनों और आलोचकों ने उन्हें वह रूतबा नहीं बख्शा जिसके वे जायज हकदार रहे हैं।

अनेक व्यक्तित्व ऐसे होते हैं जो अपने अस्तित्व की स्थापना स्वयं ही करते हैं, बिना किसी वैचारिक या दलगत शोर-शराबे में शामिल हुए। जाबिर हुसैन वैसे तो एक राजनीतिज्ञ हैं, लेकिन कवि उनके राजनीतिक कद से बड़ा है। वे शब्दों में जीवन की जो धड़कन महसूस करते हैं, उस धड़कन को ही कविता कर देते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है जाबिर हुसेन केवल शब्दों के कवि न होकर जीवन की धड़कन के कवि हैं, मनुष्य की जीवंत उपस्थिति के कवि हैं। उनके पास ऐसी निर्मल भाषा है जिसमें संवेदन और सौन्दर्य का अद्‌भुत सौन्दर्य है। वे शब्दों का जखीरा कविता पर नहीं थोपते बल्कि उनके शब्द कविता में उतर कर अपने आप वजनदार हो जाते हैं एवं रूह की आवाज हो जाते हैं। 'आईना किस काम का' की कविताएँ जाबिर हुसैन के अध्ययन, अनुभव और प्रतिभा की ही नहीं बल्कि उनके जमीर की कविताएँ है।

जाबिर हुसैन की कविता के शिल्प की विशेषता यह है कि वे कविता में निरर्थक भावुकता नहीं रचते। वे कविता की आरायशी या सजावट श्रृंगार में बिम्बों, प्रतीकों, अलंकारों या तशबीहों की फिजूलखर्ची नहीं करते और न किसी रहस्यवादी की तरह कविता का कोई अज्ञात दर्शन रचते हैं। उनके पास जो भाषा है, वह जीवन की भाषा है, मनुष्य के मनुष्यपन की भाषा है, न थोथा अध्यात्म है, न नकली किस्म का रोमांस या रोमांच। उन्होंने अपनी सभी कविताओं में शब्द, विचार और शिल्प की सघनता का संयम और संतुलन साधा है।

इन प्रारंभिक कुछ अवलोकनों के बाद अब उनकी कविताओं में उतरा जाए और देखा जाए कि वे अपने समकाल में किस स्तर पर हैं। जाबिर हुसेन कविता में चौंकाने वाले चमत्कारिक प्रयोग नहीं करते, बल्कि सीधी-सरल जबान में जो कहते हैं, उससे उनके अन्दर के इंसान की आवाज सुनाई देती है। कभी कभी तो सरलता में कोई बड़ी बात भी कह देते हैं - जैसे -

मैंने कला रेखाओं को
केनवस की दरारों में
बदल दिया
इंसानी चेहरों को
खौफ का पर्याय बना दिया!
(एक मुजरिम का बयान पर)

जाबिर हुसैन के पास एक ऐसा जहीन सोच है जो इतिहास की इबादत रचता हुआ इंसान की इबादत सा लगता है क्योंकि फूल, कॉंटों की उदासी, बसंत, सूरज, चॉंद, धूप ये सब होते हुए भी जब कविता फसलों की अदालत में पहुँचती है तो कवि पर इल्जाम है कि यह फसलों की पहचान नहीं रखता। कितना बड़ा सच कह दिया कवि ने। हम गमलों में उगे केक्टस, फूल, कॉंटे शानदार प्राकृतिक मंजर सब पहचानते हैं मगर जो फसलें हमारे पेट की हिफाजत हैं, उनके बारे में कुछ नहीं जानते। यह एक दुखद व्यंग्य नहीं तो क्या है। अपनी जमीन में उगाई जा रही रोटी से पहचान रहित होकर इंसान रोटी मिटाने के वे तमाम हिंसक तरीके जानने लगा है जिन्हें एक बच्चा बड़ी मासूमियत के बीच खड़ा होकर कहता है।

"बीच सरहद गॉंव है/ वहॉं फूल नहीं होते/ फसलें नहीं उगतीं/ वहॉं आसमान में फौजी विमान उड़ते हैं/ जिनसे बमों की बारिश होती है।... मैं बमों के फटने की आवाज पहचानता हूँ..."

हिंसक हथियारों के खिलाफ, एक कमसिन बच्चे के इस बयान पर अदालत बरी तो कर देती है,मगर वह बच्चा अपने बयान से क्या सारी युद्धोन्मादी दुनिया को मुजरिम नहीं बना देता है? जाबिर हुसेन कहीं भी जज्बाती नहीं होते बल्कि हकीकत का बयान इस तरह पेश करते हैं जैसे हकीकत खुद अपना बयान दे रही है। वे इब्नबतूता को लेकर लगभग 15-16 कविताएँ रचते हैं और अल्बेरूनी भी कविता में आते हैं। इब्नबतूता हिन्दी कविता का एक रूहानी चरित्र बन गया है। इसीलिए चौथे सप्तक के कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शायर गुलजार साहब भी इब्नबतूता से जो रूपक रचते हैं उससे ऐसा लगता है जैसे इतिहास के पन्नों से निकल कर इब्नबतूता जाकिर हुसैन की कविताओं और हमारे कदीम और जदीद सोच के बीच खड़ा होकर यह पैगाम दे रहा हो कि सोच को तंग दीवारों में कैद न करो चाहे उसके लिए दीवारें ढहा देनी ही क्यों न पड़े जैसा कि शेख नसीरूद्दीन ने कर भी दिखाया। इब्नबतूता इसलिए जब दोबारा आता है तो एक बदली हुई दुनिया दिखाई देती है। हमारे पास यादों के इतने जखीरे हैं कि हम अपने अतीत से कितने भी मुक्त होना चाहें मगर कोई इब्नबतूता कोई अल्बेरूसनी, कोई चाणक्य, कोई सिकंदर तो चाणक्य का प्रतिद्वंदी राक्षस हमारे माजी से निकलकर वर्तमान में हमारे सामने चुनौती बनकर आ जाते हैं। ये सब सिर्फ चरित्र बनकर नहीं आते बल्कि विचार बनकर आते हैं और ऐसा लगता है इतिहास में मौजूद चरित्रों की एक लम्बी फेहरिस्त ऐसे हादसों और उन्हें पैदा करने वालों की है, जो हजारों सालों के बाद भी अपनी हिंसक वृत्ति से मुक्त नहीं हो पाई है।

अविश्वासों के प्रतिघातों ने जीती इस दुनिया का चरित्र कितना बदल गया है- *'थोड़े दिनों के लिए ही/मैंने अपनी हथेलियॉं/ उसे सौंपी थी/ उसने होले से/ हथेलियों पर/ कॉंटों की फसल उगा दी।*

हथेलियों पर कॉंटों की फसल की पंक्ति से हमारे समय में मनुष्य-मनुष्य के बीच जिस अविश्वास, संदेह और स्वार्थ ने जो चरित्रगत अराजकता रची है, उसे लेकर जाबिर क्षुब्ध है, नैतिक जीवन-मूल्यों के ध्वंस पर मायूस भी हैं। बावजूद इस उदासी के कवि की इच्छा-शक्ति प्रबल है। इसलिए वह कहता है -

अब भी बच रहे हैं/ कुछ सपने/ पुरानी दीवारों पर उगी/ व्यर्थ की झाड़ियों, और उन पर उगी काई की तरह/ सूखी पत्तियॉं/ और छायादार पेड़ की/ झुकी डाल की तरह/ जाबिर हुसेन कविता में जब ऐसा मिश्रित भाव रचते हैं तो वे मानव-प्रकृति को भी उजागर करते हैं। मनुष्य तरह-तरह के कष्ट, दुख,

दुर्घटना आदि मिलकर बार-बार खड़ा होता है लेकिन उसका मन सूखी पत्तियों और झुकी डाल सा इसलिए है कि अब जीवन-रस को किस कदर कुचल दिया है इसका प्रमाण है -

"मुझे याद है अच्छी तरह/ मुहाने पर ही/ पीपल के पेड़ के ठीक सामने थी/ वो पगडंडी/ जो मुझे पहुँचाती गाँव तक/ नामो-निशान नहीं था आज उसका।"

जाबिर हुसेन की चेतना में जो मानवीय एवं प्रकृति संवेदन है उसका नायाब मंजर इस कविता में रचा गया है -

"कवियों ने अंधेरे को अंधेरा/ कहना बंद कर दिया है/ झूठ को झूठ कहना भी/ बहुत साफ गोई से/ वो आकाश को आकाश और/ घटा को घटा नहीं कहते/ हमेशा क्षितिज के उस पार/ क्या यही सोचते हैं/ वो फूलों को फूल/ पत्तियों की दुनिया/ जैसे धरती बदलती है अपने ढंग/ जैसे आग बदलती है अपना ताप/ जैसे बर्फ बदलती है अपने रूप/ जैसे बदलते हैं मौसम/ हमारे समय के कवि हो गए हैं/ विज्ञानी, दार्शनिक और संत/ मानव विपत्तियाँ उन्हें सतयुगी/ गुरूओं से बाहर नहीं आने देतीं।"

कितनी विडंबना, कितना व्यंग्य, संवेदनहीनता पर कितना तीव्र प्रहार। यदि यह सब कविता में कवि पहचान रहा है तो यथार्थ हो, वाम हो, दक्षिण हो, जनवाद, प्रगतिवाद, कलावाद कुछ भी हो, कवि को दर्द है इस बात का कि कविता के सत्य की हत्या कर दी गई है, कवि सत्य के शब्द और शब्द के सत्य का प्रतिनिधि भी नहीं हैं। यदि कवि और कविता का यह हश्र है तो क्या मनुष्य में उगे विज्ञानी, दार्शनिक और बौद्धिक कविता को बचा पाएंगे? विचारधाराओं और कलाओं के रथ खींचने वाले भी आस्थाओं के झूठ का पाखण्ड कर रहे हैं। बौद्धिकों की तेजस्वी पीढ़ी ने अपना तेज गँवा कर केवल शब्दों के फटे कपड़े पहन लिए हैं ताकि गरीब और गरीबी के नाम पर, यथार्थ के संवेदन के नाम पर झूठा दर्द रचा जाए।

जाबिर हुसेन के पास अपने विचारों का एक बड़ा फलक है। उनकी कविता का रूख तो मनुष्य की तरफ ही है। वे देख रहे हैं एक कवि की जायज आँखों से कि कवि कितना बदल गया, कविता कितनी बदल गई' मनुष्य कितना बदल गया, इसीलिए शायद वे निःसंकोच होकर कह देते हैं *"मुझे आवाज मत देना, मेरी आत्मा गहरी नींद में है।"* दूसरी ओर उनकी राजनीतिक चेतना और चिन्ता अच्छे दिन, नागरिकता अतुल्य भारत और पिकासो, वॉन गॉग की खिंची रेखाओं के बीच की दूरी का अद्‌भुत रूपक यह बताता है कि ऐसा सोच किसी विधायक, सांसद, स्पीकर या राजनीतिक व्यक्ति का न होकर ऐसे मनुष्य का सोच है जो रोम-रोम से कवि है और कविता में शब्द शब्द से मनुष्य है। कई जगह जाबिर जब सीमित और आवश्यक इमेजेस लेते हैं तो लगता है अगर जाबिर इमेजिस्ट कवि होते तो अमूर्त्तवादियों को मात कर देते।

कविता की भाषा एकदम सीधी सादी तो नहीं होती। यदि उसमें वक्रता-विचलन नहीं है तो फिर वह कविता एक प्रकार की सपाट बयानी तो हो सकती है लेकिन काव्य की रसानुभूति, उसका आस्वाद और आनंद उत्पन्न नहीं कर सकती। इस संग्रह की अनेक कविताएँ ऐसी है जिनमें हम साधारण बयान देखते हैं, लेकिन जहाँ जाबिर साहब की अनुभूतियों से उपजा संवेदन हैं, वहाँ सौन्दर्य भी है और सादगी के शिल्प का सम्प्रेषण भी। 'शर्म करो कि' 'इस कविता में एक अदभुत इमेज उभरी है जब जाबिर कहते हैं -

पेड़ की छाल पर लिखी/ इन पंक्तियों ने/ अपनी ओर/ इतिहास का ध्यान खींचा/ शर्म करो कि जब तुम जन्मे/ पूरी तरह निर्वस्त्र थे/ लेकिन दुनिया ने/ तुम्हें कपड़ों से/ ढँक दिया।

'पेड़ की छाल पर लिखी' 'पंक्तियाँ' एक ऐसा अदभुत प्रयोग है जो पेड़ और इतिहास को एकाकार करता है, जो आदिम जीवन के खुरदुरेपन को सभ्यता की नकली पोशाकों से अलग कर निर्वस्त्रता के सत्य का उद्‌घाटन करता है। पेड़ की छाल से कितने ही बिम्ब बन सकते हैं - उसमें वर्णमाला के अक्षर भी हैं; चीनी, जापानी भाषा की तरह चित्राक्षर भी हैं, आदिम मनुष्य के भित्तिचित्र भी हैं, और खुरदुरेपन का ऐसा सौन्दर्य है जो गायन के खुरदुरेपन में बेगम अख्तर की गायकी में था। बेगम अख्तर, शोभा गुर्टू, और गंगूबाई हंगल खुरदुरेपन और कुछ मर्दानगी आवाज की ऐसी मिठास रचती थीं कि जिन्हें सुनकर लगता था जैसे संगीत की एक दुनिया ऐसी भी है जहाँ स्त्री-कण्ठ स्त्री आम कण्ठ से अलग होकर यह प्रतीति कराता है कि कण्ठ में स्वरों का कितना वैविध्य है जो स्त्री-पुरूष कण्ठका अन्तर ही मिटा देता है।

जाबिर हुसैन के पास भाषा की एक मुकम्मिल तहजीब है। वे भाषा की आबरू को व्याकरण और ? पृथक कर यह साबित करना वहीं चाहते कि कविता शब्द का ही खेल है। यहाँ तो कविता में विराम-चिह्न और रिक्त स्थान भी बोलते हैं। इस कविता में विराम शब्द का प्रयोग कितने सलीके से हुआ है -

"सोचता हूँ, जीवन के इस तूफानी मोड़ पर। एक मिटते हुए विराम चिह्न से/ ज्यादा हूँ क्या/"

अलंकारों, छंदों के वजन से लदी पदी कविता में कवि को सदिर्य का खालीपन दिखाई नहीं देता। इसलिए जाबिर कहते हैं -

निर्वस्त्र कविताएँ/ अधिक सुन्दर/ और साहसी होती है/ यहाँ 'सुन्दर' और 'साहसी' शब्दों को उनके गूढ़ार्थ में जानना होगा।

जाबिर हुसेन का पूरा विश्वास है कि *"कविता/ आज भी/ अन्याय से/ मुठभेड़ करने का/ साहस और दम/ रखती है/* इसीलिए आगे चलकर जाबिर कहते हैं -

आओ/ गुमनाम अंधरों/ से लड़ें/ आगे बढ़ें/ मौत की/ दीवार चढ़ें/

जाबिर हुसेन न तो वामवादी या यथार्थवादी होने का दावा करते हैं न कलावादी। वे शब्द की घटती रौशनी से बेचैन हैं। वे हौसलों की कमी से अपने वक्त के लोगों से खफा है। उनके लिए कविता एक निर्वस्त्र सत्य है, वे असत्य की विजय के खिलाफ कविता का सत्य खड़ा करना चाहते हैं। वे नैतिकता का कोई पैगाम नश्र नहीं करते बल्कि चाहते हैं, इंसान होना अगर किसी तहजीब की इंसानियत का नाम है तो चाहे राजनीति हो या साहित्य, हम हौसलों की मशाल थामे हुए आगे बढें।

अनेक कविताएँ सक्षिप्त तो हैं लेकिन वे सामान्य बयान या बातचीत के बीच बोले गए वाक्यों की तरह हैं। जाबिर हुसैन ने हिन्दी उर्दू का प्रयोग बहुत करीने से किया है और व्यर्थ का सांस्कृतिक विगुल बजाने की कोशिश नहीं की है। कविता को रेटरिक की तरह इस्तेमाल तो किया है पर रेटरिक भी कविता का स्वभाव है। इन कविताओं में जाबिर हुसैन कहीं भी स्प्रिचुअल होकर कोई रहस्यवाद भी नहीं रचते लेकिन अगर इतनी कविताओं के बजाय कुछ कम और अधिक गहरी विचारभूमि रची जाती तो जाबिर हुसैन की कविताओं का एक गंभीर केनवास ऐसा बनता जो पेड़ की छाल या केनवास की दरारों में रंगों की तरह होकर कविता का एक नया इंसानी माहौल रचता। खैर, ये कविता-संग्रह इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह मानवी चिन्ता और तहजीब की बेचैनी को अभिव्यक्त करता है। 'आईना किस काम का' यह शीर्षक इसलिए आकर्षक है कि इसमें कवि का जमीर और जिन्दगी की रूहानी कसक है और हमने आईना कितना झूठा कर दिया है, इसका दर्द भी है। स

सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड, भोपाल
मो.94065-23071

"हिन्दी उपन्यास को नया धरातल देता कुबेर"

बी.एल.आच्छा

उपन्यास : कुबेर
लेखिका : डॉ. हंसा दीप
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन,
सीहोर-466001 (म.प्र.)
मूल्य : रूपये 300/-

डॉ. हंसा दीप का उपन्यास कुबेर कुछ मायनों में विशिष्ट है। एक फ्लैश बैक, जो ग्रामीण अंचल की टपरी से निकलकर न्यूयॉर्क की झिलमिलाती जिंदगी तक ले जाता है। यह गरीबी में घर से भागे, ढाबे पर बर्तन माँजने वाले बालक की न्यूयॉर्क की कुबेर कंपनियों के मालिकाना वैभव तक ले जाता है। पर इन दो अलहदा छोरों को मिलाने वाला तार है, सेवा के मिशन का। इस मिशन की बीजविहीन जमीन है ग्रामीण टपरी में भूख से विचलित माँ का कथन - "कुबेर का खजाना नहीं है मेरे पास जो हर वक्त पैसे मांगते रहते हो।" और इस तपते मरूथल-सी भूख की जमीन से धन्नू का भागना, गुप्ता जी के ढाबे में रोटी के लिये बर्तन माँजने से लेकर 'जीवन-ज्योत' के मिशनरी दादा के माध्यम से न्यूयॉर्क तक पहुँचना। धरती यह भी, धरती वह भी, जीवन यह भी, जीवन वह भी। धरती और जीवन के इन दोनों छोरों के बीच की गहरी फाँक एक अंतहीन खाई है जिसे पाटने का मिशन ही गरीब माँ के कुबेर से न्यूयॉर्क के मल्टी कुबेर की जीवन यात्रा को उपन्यास बना देता है।

इस उपन्यास के कथाचक्र में जितनी वास्तविकताएँ हैं, उतने ही धन्नू के धनंजय प्रसाद और डीपी बन जाने के संयोग भी। अलग बात है कि ये संयोग दैवीय नहीं, उपन्यास के प्राणतत्व से जुड़े हुए हैं जिसमें गरीबी को दूर करने का अनथक मिशन ही कारणभूत बना है, जीवन-ज्योत के दादा के अंतरंग दर्शन-मिशन-सेवा से विदेशों में भी अपनी जमीन तैयार करता हुआ। संयोग तो गुप्ताजी जैसे उदार व्यवसायी से संतान-सा सुख प्राप्त करना, जीवन ज्योत के दादा की अस्वस्थता में न्यूयॉर्क तक साथ जाना और उनके प्राणांत के बाद छोटे दादा के रूप में उत्तरदायित्व का अनुयायियों के साथ निर्वाह है। यों इन सुखद संयोगों के बीच का दुखांत भी गहरे घाववाला है। धन्नू का माता-पिता के लिये वेतन के पैसे से खरीदे हुए कपड़े ले जाना मृत्यु की पीड़ा का समाचार ही बन जाता है। और जीवन-ज्योत की सेवा के दौरान दांपत्य की डोर से बंधनेवाली नैन का एक्सीडेंट में मर जाना। इन गहरे घावों के साथ दादा का एकाएक चले जाना भी आघातक ही रहा। पर लेखिका ने इन गहरे घावों के बीच ग्रामीण जमीन पर मैरी को बहन के रूप में सिरजा है और न्यूयॉर्क में जॉन भाई के साथ सारे उतार चढ़ावों में मिशनरी साथी के रूप में। इसीलिए संयोग-दुर्योग-संयोग के उतार-चढ़ावों में इस उपन्यास की कथा कई मोड़ों के साथ कभी रूकती हुई भी सहज ही बहने लगती है। यों भी मिशनरी जीवन-नदी बिना घाटियों-मोड़ों के कहाँ बह पाती है पर ये ही उतार-चढ़ाव इस उपन्यास में पठनीय प्रवाह बना देते हैं। एक दूरतर जमीन तक फैली इस औपन्यासिक कथा में दुनिया का अंधेरा भी है और गगनचुंबी इमारतों की रोशन दुनिया भी। पर इन दोनों दुनियाओं के अंतर में एक अंतःसूत्र समाया है और वह है झिलमिलाती दुनिया में धन कमाकर अंधेरी जमीन को उजाले में बदलने का। और यह आकस्मिक नहीं है कि विवेकानंद ने भी शिकागो सम्मेलन के बाद भाषणों से डॉलर कमाकर भारत में भेजने का संकल्प डेढ़सौ साल पहले लिया और आज की भारत की पीढ़ी भी उस मिशन से इन अंधेरी-उजली दुनियाओं को मानवीय पक्ष से जोड़ रही है।

भूख और माँ-बापू की मृत्यु का अन्तस्ताप जरा-सी पुरवाई के बहते ही कितना मूल्यपरक बनकर दिशा बदल देता है और मानवीय सहकार की भावभूमि को पूरी जिंदगी में उगा देता है। और यहीं से वह उदात्त मूल्य भी विकसित होता है जो मैरी, जोसेफ, धीरम, ताई सुखमनी और जीवन-ज्योत के ग्यारह बच्चों को अपना परिवार बना लेता है देश में भी, विदेश में भी। लेकिन इस उपन्यास की खूबी उसकी प्रवासी आँख में है जिसके सरोकार और मनोविज्ञान दोहरे हैं - "प्रवासियों की आत्मा भारत के अपने गाँव-शहर में अपनी बिछुड़ी यादों को खोजती रहती है और शरीर यहाँ अपने लिये नयी जमीन तलाश कर रहा होता है। ऐसा कटु सत्य था यह जो विदेश में बसे हर नागरिक को अपनी कटी जड़ों के लिये संघर्षरत ही पाता था।" लेखिका की प्रवासी आँख के बहाने हिन्दी उपन्यास को नया धरातल मिला है, आँगन के पार जाकर उस दुनिया के विकास की रंगत, नये जीवन मूल्य, नये संघर्ष, निरंतर नयी जद्दोजहद, बाजार की ताकत, बाजार में जगह बनाने के लिये टीम-पैसा-कंपनी-लोग और लिंक। और इसी में तकनीक और ह्यूमन टच की द्वंदात्मकता किसी अर्थ को तलाशती है। सच है कि तकनीक ने स्वर्ग रचा है पर "इस तकनीक के पीछे आदमी की दिमागी मैराथन की ही जीत है, समूची मानवता के बारे में सोचिए कितना बेहतर हुआ है जनजीवन।" इसीलिए जॉन भाई के साथ सहकार का एक बिंदु यदि ग्रामीण अंचल के जीवन-ज्योत से मानवीय स्तर पर पोषक बना है तो दूसरा अमेरिकी बाजार में अपने अस्तित्व और कामयाबी से नये कीर्तिमान रचता तकनीक की सीढ़ी से गुजरता डीपी सर का दिमाग। धन्नू, धनंजयप्रसाद, डीपी और डीपी सर। माँ का कुबेर का भूख से तड़पता उलाहना और अमेरिकी जमीन पर कुबेर का खजाना गढ़ती धन्नू से डीपी सर की आकाश की ऊँचाई। धन्नू से डीपी सर बना यह पात्र कभी नहीं भूलता कि "पेट की भूख के सामने हर भूख छोटी लगती है।" यही बात इस उपन्यास को दो जमीनों को, दो सभ्यताओं को, बाजार की गलाकाट स्पर्धाओं और मानवीय स्पर्शों को, गरीबी और अमीरी के स्तरों को किसी आंतरिक पीड़ा, कुछ बड़े संकल्प और तकनीक पर टिके निरंतर विकसित होते बाजार में अपनी जद्दोजहद को एकतान किये रहती है। यह बनावट यदि कथास्तर पर है तो बुनावट में पूर्व और पश्चिम की दुनिया का सोच भी इस उपन्यास को दृष्टिपरक बनाता है।

इस उपन्यास के उत्तरार्ध में अमेरिकी जीवन और बाजार सभ्यता के कितने ही दृश्य उभरे हैं, पर इनके भीतर सारे उतार-चढ़ावों के बीच रिश्तों का संसार और तकनीक की निरंतर अनथक दौड़ का मनोविज्ञान भी जगह पाता रहा है। इसीलिए आंतरिक स्पर्श, दार्शनिक मूल्य, निरंतर बदलते जीवन के साथ बदलाव का मनोविज्ञान, तकनीकी ज्ञान की ताकत, निरंतर चुनौतियाँ, एक बड़ा-सा कैनवास, टीम संस्कृति का बाजार वर्चस्व, भौतिक सुखों में भी मानवीय सरोकारों का सोच जैसे कई पक्ष व्यक्ति और समाज के स्तर पर खूब उतरे हैं। मसलन कसिनो का जुआ संसार भी अपनी हदों को पहचानता है। लोगों के आत्मनियंत्रण और बस्तियों के कल्याण की वांछा से पुष्ट है - "हर अमीर आदमी जब यहाँ आता है तो एक राशि तय करके आता है। उस बजट के अंदर ही वह रहेगा। इसके बाद जीता तो जीता, हारा तो हारा।" लेकिन कसिनो का सामाजिक सरोकार भी है - "कसिनो से प्राप्त राजस्व को यहाँ के

'नेटिव अमेरिकन्स' यानि 'एबओरिजिनल्स' के उत्थान के लिये लगाया जाता है। लास वेगस के आसपास के कई रिजर्व हैं जो कसिनो के राजस्व के हकदार हैं।'' और इसे महाभारत के 'जुआघर' के समानान्तर रखकर कहा गया है - ''ये किसी महाभारत को रचते या किसी द्रौपदी को दाँव पर लगाते नहीं थे बल्कि मन की पैसों की भूख मिटाने के लिये थे। ये शकुनि कभी नहीं कहलाते पर इतिहास को बदलने का माद्दा रखते।इनकी हर हाल में जीत ही होती। इनमें कोई शकुनि किसी को फँसाता नहीं ना ही कोई धर्मराज युधिष्ठिर इसमें फँसते चले जाते।'' दरअसल आनंद और हर दिन को उत्सव मानकर जीने का यह सोच इस झिलमिल विकास का मनोविज्ञान है।

ऐसा भी नहीं कि इस रंगीन धरती का उत्सवी मनोविज्ञान आहत नहीं है। निरंतर दौड़, बाजार लक्ष्यों की प्रतिस्पर्धा, तकनीक के निरंतर विकास से पुराने औजारों को पीछे छोड़ पैसा कूटने की मानसिकता के साथ इस झिलमिलाती सभ्यता का अंधेरा पास्कल साहब के पारिवारिक जीवन की नियति में देखा जा सकता है - ''दो बार शादी, दोनों बार तलाक, कड़वे तलाक, आरोपों-प्रत्यारोपों वाले तलाक। आर्थिक सेटलमेंट कमर तोड़ कर रख देते हैं। मासिक खर्च के साथ संपत्ति चली जाती है। संपत्ति ही नहीं मन की अच्छाइयाँ भी उसके साथ चली गयी थीं।'' और इसके विपरीत ध्रूव पर डीपी का परिवार। खून का रिश्ता नहीं फिर भी धीरम, ताई, जॉन, मैरी और परिवार जीवन-ज्योत के बच्चे। लेखिका ने इन समांतर कथाविन्यासों के दो ध्रुवों के साथ उनके परिदृश्यों के परिणामी मनोविज्ञान की तहों का भी स्पर्श किया है।

यों तो दुनिया के इन दोनों छोरों और सभ्यता के ध्रुवों के परिदृश्य ठीक से अंतर्ग्रंथित हैं जो कथाविन्यास को संक्रमित करते रहते हैं पर इनके भीतर तमाम संघर्षों के बीच जीवन की सच्चाइयाँ आंतरिक स्पर्श पाकर तरल-सी मूल्यवत्ता बन जाती हैं। कभी दार्शनिक फलसफे में, कभी सूक्ति के सोच में, कभी जीवन के मूल्यपरक अंदाज में, कभी समय के साथ आदमी के बदलाव की प्रकृति में, कभी रिश्तों की अनजानी दृष्टि में, कभी औरों की पीड़ा सहेजने में। कभी किसी संकल्प को अनासक्त होकर आनंद के साथ जीने में और कभी बाजार की सारी स्पर्धाओं के बीच इस सत्य को पाने में भी - ''कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता, ना ही किसी काम को करने से कोई आदमी छोटा होता है, बल्कि वह उदाहरण पेश करता है दुनिया के सामने अपनी मेहनत का अपनी खुद्दारी का।'' भारतीय जाति व्यवस्था और श्रेष्ठता को चुनौती देती पश्चिम के बाजार की यह सच्चाई अन्य बातों के बावजूद मनुष्यता और उसकी जीवट को सूत्र बनाती है। पूरे उपन्यास में बाजार सभ्यता की बीज शब्दावली, बाजार संस्कृति और उसकी हार-जीत की उखाड़-पछाड़ के अंदाज हिन्दी उपन्यास के कैनवास को बड़ा भी बनाते हैं और समानान्तरता में पाठकीय सोच के धरातल को नये सोच से संक्रमित भी करते हैं। परन्तु दादा और डीपी के भाषणों की जितनी प्रशंसा और उनके प्रभावों की सफलता के जश्नों का नरेटिव इस उपन्यास की दार्शनिक या वैचारिक संपदा की शब्दावली में नहीं उतर पाया है। अलबत्ता कहीं-कहीं संवादों में उनकी मूल प्रेरणा की झलक मिल जाती है पर उद्बोधन एवं उद्बोधन शैली की झलक नहीं मिलती। अलबत्ता जीवन-ज्योत का क्रियापरक, सेवापरक मानवीय सोच न्यूयॉर्क की जमीन पर मानवीय सरोकार को तकनीक के माध्यम से साधने की जद्दोजहद तक ले जाता है - ''क्या हम दिव्यांग लोगों के लिये ऐसे प्रोग्राम तैयार कर सकते हैं जिसमें एक दृष्टिहीन अपने हाथ में उस यंत्र को लेकर अपने दिमाग में सब देख सके, एक बधिर उसके माध्यम से सब कुछ सुन सके और एक मूक उसके द्वारा बात करके निर्देश दे सके।'' निश्चय ही यह दो सभ्यताओं की सोच को अपनी पूरक साध्यता में प्रस्तुत करता निरपेक्ष सोच है, बेहतर मानवता के लिए।

'कुबेर' का युवा होता धीरम, धनंजय उर्फ डीपी के मूल्यबोध और तकनीकी विकास को अगला सोपान देते हुए मानवीय प्रगति के नवोन्मेषी सिलसिले को अनथक अंदाज देता है। यहाँ डीपी सर का अध्याय साँसें गिनता है पर इन्हीं टूटती साँसों के बीच धीरम के भाषण पर बजती तालियाँ इस नवोन्मेषी मानवीय सोच को नया प्रतिमान देती है द ''यहाँ एक नहीं, कई कुबेर खड़े हैं।'' सरल सी प्रवाही भाषा, उलझावहीन कथानक, देश-विदेश की सभ्यता-संस्कृति के अंतरूसंक्रमित परिदृश्य, बाजार सभ्यता का अंतरंग और घटनाचक्र से फूटता तरल सोच निश्चय ही इस उपन्यास को पठनीय बनाते हैं। प्रवासी आँख में बसा भारत और अमेरिकी जीवन से जुड़ता जीवन उस अनुभव को उतार लाता है जो नरेटिव नहीं अनुभवपरक है और लेखिका का सधा हुआ अनुभव धाराप्रवाह होकर तरल स्पर्शों से भरा-पूरा है। स

36 क्लीमेंट्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे
पुरूषवाकम, चेन्नई (तमिलनाडु), पिन द 600007
मो द 9425083335

देसी स्वभाव के दोहे

भालचन्द्र जोशी

यह मुकाम कुछ और - (दोहा संग्रह)
कुँअर उदयसिंह अनुज
प्रकाशक - सुभद्रा पब्लिशर्स, दिल्ली
मूल्य रू 200 /-

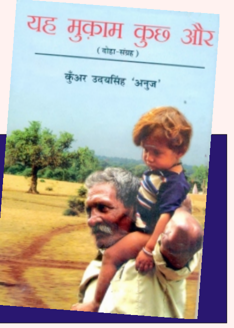

कुँअर उदयसिंह अनुज लोक चेतना के गहरे और गम्भीर कवि हैं। उनकी काव्य दृष्टि आगे चलकर भारतीय सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना से जुड़ती है। भाषा, व्यंजना और काव्य ध्येय को अपनी विशिष्ट शैली में देसी रंग के साथ प्रस्तुत करना उन्हें प्रिय है। उन्होंने भारतीय समाज को जैसा देखा और महसूस किया, वैसा निर्भिक होकर लिखा।

''कैसा सींचा आपने, कैसी करी सँवार।
उपजाऊ इस खेत की, फसलें हैं बीमार ।।
हे दिल्ली के देवता, पूछूँ एक सवाल।
कीचड़ लिपटे पाँव के, कब बदलेंगे हाल।।''

दुख में कवि हताशा की ओर जाता है या व्यंग्य की ओर। अनुज के पास व्यंग्य है। लेकिन व्यंग्य को काव्य में साधने के लिए वे वस्तु सत्य को अदेखा नहीं करते हैं। चूँकि अनुज की भाषा निमाड़ी लोक बोली और संस्कृति से प्रभावित है इसलिए एक भली बात यह है कि इसमें अपरिचित रंग दाखिल नहीं हो पाते हैं। अनुज के इन दोहों में आज के सामाजिक यथार्थ की एक स्पष्ट छवि है। इसलिए वे कवि के आशय को स्पष्ट भी करते हैं।

''सत्य दबाकर चोंच में, उड़ी झूठ की चील।
ढूँढरहा हूँ मैं जला, शब्दों की कंदील।।''

अनुज के दोहों में प्रेम, प्रतीक्षा, दुख, संघर्ष, किसान-व्यथा से लेकर सामाजिक सरोकार की मार्मिक व्याख्याएँ हैं। लेकिन ये तमाम पद दोहों में जिस सहजता से जगह बनाते हैं, उससे कवि के दीर्घ अनुभव का भास स्पष्ट हो जाता है। पाठक को दोहों के आशय तक पहुँचने के लिए किसी बीहड़-यात्रा का यात्री नहीं बनना पड़ता है। इस सहजता के हासिल के पीछे गहरा अनुभव और सूक्ष्म काव्य दृष्टि है जो एक जरूरी रचनात्मक साहस के साथ दोहों में मौजूद है। दोहों में ठेठ स्थानीयता की उपस्थिति के उपरांत समाज और देश-दुनिया में आ रहे बदलावों से कवि अनभिज्ञता की मुद्रा में नहीं है। दोहों में जो मासूमियत है, वह भाषा के श्रम से उपजी है लेकिन विजन की उपेक्षा के साथ नहीं।

अनुज के दोहे लोक जीवन के सबसे मूल्यवान और महत्वपूर्ण पक्ष मानवीय मार्मिकता के प्रति सचेत हैं। भूण्डलीकरण के इस दौर में गाँव भी बाजार के चपेट में आ रहे हैं। गाँव के जीवन में वैसी पूर्व की आत्मीयता के लिए स्पेस तंग हो रहा है। लेकिन इन दोहों में उल्लेखनीय यही है कि इस गुम होती जा रही ग्रामीण संवेदना के लिए कवि चिंतित है और उसे फिर से पाना चाहता है। उसे गाँव में फिर से देखना चाहता है। इन दोहों में घर की उपस्थिति पूरी मार्मिकता से मौजूद है। माँ, पिता, वृद्ध परिजन या ग्रामीणों की बहुत सघन स्मृतियाँ पूरी मानवीय मार्मिकता के साथ मौजूद है।

''पिता झेलते जेठ में, विपदाओं का घाम।
उनकी बरगद छाँह में, घर करता विश्राम।।''
या फिर
पिता पाणिनी व्याकरण, जीवन अगर किताब।
सिखा गए हर प्रश्न का, लिखना सही जवाब।।''

पिता की स्मृतियों से गुँथे दोहे बहुत प्रभावी हैं। इन दोहों की सबसे बड़ी शक्ति है सीमित शब्दों की बाध्यता में आशय को पूरी तरह उपस्थित कर देना, उसकी जगह बना देना। एक भारतीय किसान या पिता के श्रम और समर्पण के मौन भाव-बोध के ये दोहे मर्मस्पर्शी हैं। ये दोहे भावुकता की अपेक्षा करूणा पैदा करते हैं। एक ग्रामीण परिवेश के सजीव दृश्य और गहरी संवेदन दृष्टि से साक्ष्य होता है। अनुज के दोहों में निरर्थक अध्यापकीय प्रश्नाकूलता नहीं है, बल्कि वह तड़प है जो सवाल में ही जवाब धर देती है। इन दोहों में पुराने फिल्मी गीतों की मेलोडी के असर को बहुत सहज काव्यात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। रफी-लता के गीत आज भी क्यों अमर हैं, इसकी विस्तृत व्याख्या न करके महज दो पंक्तियों में उसकी अमरता के रस उसकी मेलोडी के महत्व को रेखांकित किया है।

''गौर करें इस बात पर, नए दौर के मीत।
अब तक क्यों रस घोलते, लता-रफी के गीत।।''

यह भावुक प्रलाप नहीं है। एक किस्म का नास्टेल्जिया है जो कानफोड़ू संगीत की नश्वरता के विस्तार में न जाते हुए उसकी निरर्थकता को पुराने गीत-संगीत के प्रभाव से पुष्ट करते हैं। इन दोहों में मौजूद प्रतीक-विधान में टूटते जाने की करूण गाथा छिपी है। यह तो स्पष्ट है कि इधर तेजी से बाजार का फैलाव हुआ है। बाजार का दबाव सिर्फ शहरों में ही नहीं, गाँव में भी बढ़ा है। बाजार में दबाव ने गाँव की सहजता नष्ट की है। उसके सही और निश्चित विकास को बाधित किया है।

अनुज के इस संग्रह के दोहों में लोक संस्कृति का गहरा आस्वाद है। बाजार के फैलाव के वे संकेत भी हैं जो लोक संस्कृति को नष्ट करने पर आमादा है।

''लुभा-लुभा कर खींचती, बाजारू मुस्कान।
पगडंडी की प्रीत का, नहीं रहा अब मान।।

भूमण्डलीकरण के दौर में गाँव में जो (अप) संस्कृति दाखिल हुई है उसने ग्रामीण जीवन की सहजता को हड़प लिया है। एक ऐसी क्रूर वक्रता आ गई है जो नागर संस्कृति की प्रमुख पहचान है। अनुज के दोहों में या कहें काव्यात्मकता में सामाजिक जीवन खासकर ग्रामीण जीवन के यथार्थ के पीछे आर्थिक कारणों की लम्बी फेहरिस्त मिलती है। वे आर्थिक द्वन्द्व को ही ग्रामीण जीवन के सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के नष्ट होते जाने का कारण मानते हैं। वे दमन, शोषण, भ्रष्टाचार आदि के आदी स्रोत पूँजी के बदलते चेहरे को मानते हैं। विश्व बाजार के बढ़ते दखल को मानते हैं।

''पंख पसारे उड़ रही, यह सड़क की चील।
मेरे सिर पर ठोंकती, शोरो-गुल की कील।।
या
रंग-बिरंगा तैरता, आँखों में बाजार।
भूख जागती नित नई, करती है लाचार।।

अनुज ऐसे कवि हैं जो अपनी जिद में लोक के प्रेम में आकंठ डूबे हैं। ठेठ स्थानीयता का आग्रह और अनुराग उनकी काव्य-विशेषता है। दरअस्ल अनुज उन थोड़े से कवियों में हैं जो आज भी कविता में लय-संगीत और गीतात्मकता के हामीदार हैं। उनकी गजलों में, गीतों में, दोहों में पारम्परिक छांदिक अनुशासन का अद्भुत उदाहरण मिलेगा। इस परम्परागत अनुशासन में उन्होंने समाज और राजनीति की एक विकसित और आधुनिक समझ को जगह दी है। हालांकि ये सूक्ष्म संकेतों के कवि नहीं हैं लेकिन ब्यौरों पर उनका नियंत्रण है। वे विवरणों और वैचारिक आग्रह के कवि हैं। उनकी रचनाएँ गेय हैं लेकिन वाचाल नहीं हैं। ये जीवन के प्रेम और उम्मीद में रची-बसी तरल मानवीय संवेदना की नमी की रचनाएँ हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि जब अनुज मानवीय संस्पर्श और करूणा की रचनाएँ लिखते हैं तो व्यवस्था या पूँजी के खिलाफ लिखी जा रही कविताओं वाली आक्रामकता खत्म हो जाती है। भाषा एकदम जलीय हो जाती है। शब्दों में एक गेय लय पैदा हो जाती है।

दरअस्ल ये रचनाएँ मौजूदा जटिल समय में एक मानवीय और रचनात्मक हस्तक्षेप है। शब्दों का जो जनपद वे बसाते हैं, उसमें जीवन की धड़कनें मौजूद है। अपने समय की करूण उपस्थिति है। इन दोहों में सहज अभिव्यक्ति ने उन्हें ज्यादा अर्थवान बनाया है। बस इतना करना होगा कि जैसे उन्होंने निमाड़ी में बोली को अपने ढँग से तोड़कर एक काव्य-भाषा निर्मित की है, वैसा ही हिन्दी रचनाओं में करना होगा।

ऐसा होता है तो यह एक बड़ा काम होगा, कविता का अपना मुहावरा तैयार करना। स

13 एच.आई.जी. ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,
जेतापुर, खरगोन 451001 (म.प्र.)
मोबा. 89897 32087

तैरती हैं पत्तियाँ : संवादों की छैनी से तराशी लघुकथाएँ

पुरूषोत्तम दुबे

पुस्तक : तैरती हैं पत्तियाँ
कथाकार : बलराम अग्रवाल
प्रकाशक : अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली-110032
मूल्य रू-175- (पेपरबैक)

साहित्यिक एक्टिविस्ट की बेजोड़ संज्ञा से जिन्हें नवाजा जा सकता है, ऐसे बलराम अग्रवाल लघुकथा रचना में बहुत दिनों से निष्ठापूर्वक संलग्न हैं। उनके संबंध में ऐसे विचार के प्रदेता श्री विश्वनाथ त्रिपाठी की इस बात से भी सहमत हुआ जा सकता है कि 'बलराम अग्रवाल जीवन को व्यापक दृष्टि से देखने वाले लघुकथाकार हैं।' 'तैरती हैं पत्तियाँ' पर कोई समीक्षात्मक मन्तव्य प्रसारित करने से पूर्व प्रस्तुत लघुकथा संग्रह पर स्वयं बलराम अग्रवाल द्वारा कहे गये विचार को समझ लेना जरूरी है। उनका कहना है कि- 'तैरती हैं पत्तियाँ' की सभी रचनाएँ हवा की हथेली या पानी के पल्लू पर उन्मुक्त भाव से तैरती जीवित रश्मियाँ और चिंगारियाँ हैं। ये पेड़ की ही नहीं, फूल की भी पत्तियाँ हैं और चाकू-छुरी का फाल कहलाने वाली लोहा-स्टील की भी। लोक की गोद में जाकर ये ही तो 'पाती' में भी तब्दील होती हैं, प्यार को किताब के पन्नों के बीच सूख चुके फूल-सी अमर कर जाती हैं।' बलराम अग्रवाल के यही सब विचार 'तैरती हैं पत्तियाँ' में संग्रहीत लघुकथाओं का ताना-बाना बुनते नजर आते हैं। जीवन के दो छोर होते हैं- मुलायम और कठोर। लेकिन मुलायम भी ऐसा मुलायम जो भीतरी कठोरता पर पड़ा आवरण मात्र है। आधुनिक जीवन-शैली से जो खारिज हो चुका है, वह मुलायम। सूखी पत्तियों का मर्मर स्वर अब जीवन की आकुलता बन चुका है। ये स्वर अब स्वर नहीं, जीवन की चौखट पर पड़े जाने वाले मर्सिया बन चुके हैं। लाज-शर्म के रंगीन परदे अब इतने स्याह हो चुके हैं कि शर्मोहया की चिंता जमाने में कहीं दिखायी नहीं पड़ती। 'मुर्दे के महारथी' लघुकथा में बलराम अग्रवाल ने एक संवाद पिरोया है- 'शऊर की फिक्र नहीं की, तो जनाब 'मुर्दा समूचे शहर को खा जायेगा कब्र से निकलकर।' सुई की नोंक से जैसे हथेली पर पक चुका छाला फोड़ दिया जाता है, बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं में छाले की पीव का रिसाव 'पाकिस्तान' शीर्षक लघुकथा में संवादों की गहमा-गहमी के मध्य से बह रहा होता है -

"पाकिस्तान किन्होंने माँगा था?"
"सियासतदारों ने।"
"वो मुसलमान नहीं थे?"
"थे, नहीं थे - मुझे क्या पता?"
"किसे पता है, फिर?"
"जिन्होंने दिया था, उन्हीं से पूछ लो।"

हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के विभाजन की यही 'पीव' आज भी ज्यों की त्यों हैं।

लगता है, आधुनिक समय में आज का हर व्यक्ति अपना सलीब अपने ही काँधे पर ढोते हुए चल रहा है। आज हिंसा का पत्थर हर किसी के हाथ में है। कब, कहाँ सिर पर आ पड़े और काँच की देह चूर-चूर हो जाये। 'बकरा और बादाम' लघुकथा में बलराम अग्रवाल ने आधुनिक बोध से घिरे हालात से पस्त ऐसा ही एक संवाद गढ़ा है-अजीब ही रोग से घिर गया हूँ, सर। जिससे भी मिलता हूँ, ऐसा लगता है, उसके सींग उग आये हैं, और मैं अगर आसपास बना रहा तो पता नहीं कब, उन्हें वह मेरे पेट में घुसेड़ देगा।"

संवादों के पहरावे से ही लघुकथा की सजधज बढ़ती है यानी लघुकथा में सक्रियता पैदा हो जाती है। कुरुक्षेत्र में संवादों की बानगी ने ही 'भगवद्गीता' को जन्म दिया है। संवाद कभी निष्प्राण नहीं होते हैं। संवादों की अनुशासित अभिव्यंजना में ही लघुकथा के 'प्राण' पुलकित हुए मिलते हैं। संवादों के पार्श्व से लघुकथा का कथ्य, परिवेश, घटना, चरित्र, भाषा आदि लघुकथा के सभी आवश्यक कारक झाँकते प्रतीत होते हैं। बलराम अग्रवाल की लघुकथाओं में ज्यादातर संवादों का आगमन इसी मुहावरे को पकड़कर हुआ प्रतीत होता है।

पूरा समाज मुखौटों से वासित हो चुका है। सबके चेहरे नकाब से ढके हैं। भेदाभेद का कोई सवाल ही नहीं। लेकिन जो आदमी को खँगालकर उसमें से मुखौटाविहीन इंसान निकाल दे, उसी की तलाश में बलराम अग्रवाल की अद्भुत संवादों से सुशोभित 'हरामखोर' लघुकथा इस अनूठे संदर्भ का दर्पण बनकर सामने आती हैक्

"यार, अपने उस दोस्त से मिलवा कभी।"
"किस दोस्त से?"
"वही, जो बिना गालियाँ दिए तुझसे बात नहीं करता है।"
"क्या करोगे उस हरामखोर दोस्त से मिलकर!"
"मिन्नतें करूँगा भाई! एक दोस्त तो मुझे भी चाहिए ऐसा, जो जब भी मिले, बिना नकाब के मिले।"

संवादों के बूते लघुकथा गढ़ना बड़ा परिश्रम माँगता है। शब्दों की ढपली बजा-बजाकर ही संवाद नटी को कथ्य के महीन तार पर चलाना पड़ता है, तब कहीं जाकर संवादी लघुकथा का जन्म होता है। जहाँ सृजन है वहाँ पीड़ा है। यह वेदना लघुकथाकार को भुगतनी होती है, तब कहीं जाकर लघुकथा में वह 'महाकरूणा' पैदा होती है जिसका उत्स मानव जाति को एक सूत्र में पिरो देता है। अस्मिता अथवा वजूद को जगाने में ही एक बड़े संवाद की जरूरत है। परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ी औरत जाति को मुक्त बनाने में खुद औरत को देहरी लाँघकर मैदान में आना होगा वरना औरत विषयक आजादी का सवाल निरूत्तरित ही रहेगा। लघुकथा 'सुनो बेटियो' में ऐसा ही अलार्म समय की घड़ी में बलराम अग्रवाल ने लगाया है-

"चुप न बैठो मेरी बेटियो, ऊपर वाली उस आवाज को सुनो जो 'औरत' की 'औरत' के लिए हो। गुलामी से तुम तभी बाहर आ पाओगी, जब 'औरत' की आवाज सुनने और लिखने लायक खुद को बना लोगी।"

'तैरती हैं पत्तियाँ' संग्रह की अधिकांश लघुकथाएँ संवादों के बूते रची गयी हैं। ये लघुकथाएँ बलराम अग्रवाल को प्रयोगधर्मी लघुकथाकार सिद्ध करती हैं। इस संग्रह में उनकी लघुकथाएँ संवादात्मक और विचारपरक होने के बावजूद लघुकथा विधा की देहरी पर मुस्तैदी से खड़ी प्रतीत होती हैं।

बलराम अग्रवाल 'लघुकथा आश्रम' को जो भी देते हैं या दे रहे हैं, वह दान है, कर्ज नहीं। उनका यह साहित्यिक इन्वेस्टमेंट है, भौतिक नहीं। संवादात्मक लघुकथा गढ़ने में हिम्मत और समर्पण चाहिए जो बलराम अग्रवाल के व्यक्तित्व और कृतित्व में स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है।

बलराम अग्रवाल का लघुकथा संग्रह 'तैरती हैं पत्तियाँ' गुलाब के नन्हें-नन्हें अनेक गुलदस्तों की मानिंद हैं। उन्होंने अपनी लघुकथाओं के गुलदस्ते को एक-एक खिली-अधखिली कली को उसकी लम्बी टहनी से जटिलता के काँटे तराशकर हरी पत्तियों समेत पारदर्शी पन्नी में शंक्वाकार रूप दिया है जो देखने में संवादात्मक होकर इसके बरअक्स पढ़ने में विचारात्मक हैं। स

शशीपुष्प, 74 जे-ए, स्कीम नं० 71, इन्दौर-452009

भारतीय साहित्य में पर्यावरण विमर्श

कोडुंगल्लूर। भारतीय साहित्य में पर्यावरण की चेतना पर विचार-विमर्श के लिए केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के आर्थिक सहयोग से गत दिनों केरल के त्रिश्शूर जिले स्थित एम.ई.एस. अस्माबी कॉलेज में दो दिवसीय अंतराष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित हुई। एम.ई.एस. अस्माबी कॉलेज के प्राचार्य डॉ.अजिम्स पी.मुहम्मद की अध्यक्षता में एथोपिया के अरबा मिंच विश्वविद्यालय के अंग्रेजी प्रोफेसर एवं विख्यात हिन्दी लेखक डॉ.गोपाल शर्मा ने संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के लिए साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति तथा समीक्षा के द्वारा उसकी पड़ताल जरूरी है जिसके लिए पर्यावरण चेतना से आगे जाकर और प्रकृति चित्रण से बेहतरीन पर्यावरण विमर्श के माध्यम से एकोक्रिटिम्स को एक स्वतंत्र विधा के रूप में अपनाना होगा। बीज भाषण कोच्चिन विश्वविद्यालय के मानविकी संकाय अध्यक्ष एवं हिन्दी विभाग की आचार्या डॉ.के वनजा ने कहा कि जनसरोकारों से जुड़े ऐसे सामाजिक विषयों पर विमर्श होने पर जो अमृत की बूंद निकलेगी वह आने वाली मानव पीढ़ी तथा वर्तमान पीढ़ी को गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करने में सहायक होगी।

इस अवसर पर केंद्रीय हिन्दी संस्थान, मैसूर के क्षेत्रीय निदेशक परमान सिंह जी सलीम अरक्कल, श्रीमती रीना मुहम्मद, डॉ.के.पी.सुमेधन, डॉ.के.संजीव कुमार, डॉ.रजित एम. आदि ने सम्बोधित किया। इस संगोष्ठी में पर्यावरण विमर्श संबंधी प्रमुख मुद्दों पर कुल आठ सत्रों में विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के शिक्षकों, शोधार्थियों ने अपने शोध-पत्रों का वाचन किया। क्रमशः सत्रों की अध्यक्षता कालिकट विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ.प्रमोद कोवप्रत, डॉ.वी.के.सुब्रह्मण्यम, डॉ.परमन सिंह, डॉ.पी.गीता, डॉ.मोळी जोसफ, नार्थ बंगाल विश्वविद्यालय की आचार्या डॉ.मनीषा झा, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय के डॉ.सी. जय शंकर बाबू ने की। इस संगोष्ठी में छत्तीसगढ़के डॉ.राजेश कुमार मानस डॉ.आर.पी.टंडन, चेन्नई की डॉ.सुनीता जजोदिया, केरल के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के शिक्षकों और शोधार्थियों ने अपने प्रपत्र प्रस्तुत किये। इस संगोष्ठी में महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर केंद्रित कुल चालीस प्रपत्र प्रस्तुत किये गये साथ ही पर्यावरण की समस्याओं के लिए कई समाधान भी सुझाए गए।

युगेश शर्मा की 'गाँधीपथ' लोकार्पित

भोपाल। स्थानीय गाँधी भवन में गाँधी भवन न्यास और जनहित प्रकाशन

के संयुक्त तत्वावधान में पिछले दिनों तुलसी मानस प्रतिष्ठान के कार्याध्यक्ष रमाकांत दुबे की अध्यक्षता एवं प्रख्यात गाँधीवादी चिंतक और युवा शक्ति के प्रेरणा पुरुष डॉ.एस.एन.सुब्बाराव के मुख्य आतिथ्य में हुए लोकार्पण समारोह में कथाकार, पत्रकार एवं स्तंभकार युगेश शर्मा की दसवीं कृति 'गाँधीपथ' का लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री संचालक कैलाशचन्द्र पन्त ने अपने विचार रखे। विशिष्ट अतिथि न्यायमूर्ति एन.के.मोदी, समाजवादी चिंतक रघु ठाकुर और सामाजिक विचारक भूपेन्द्र गुप्ता ने लोकार्पित कृति पर अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी दी। डॉ. सुब्बाराव ने कृति के लिए लेखक को बधाई देते हुए कहा कि गाँधी ने जीत और परिवर्तन के लिए बंदूक और संदूक की बजाय मन के परिवर्तन के तरीके को चुना था। अध्यक्षीय उद्बोधन में रमाकांत दुबे ने कहा पुस्तक के हर पृष्ठ पर गाँधी के विचारों को इस तरह रखा है कि पाठक उससे काफी कुछ पा सकते हैं। गाँधी को 150वें जन्म वर्ष पर लेखक ने सार्थक श्रद्धांजलि अर्पित की है।

प्रस्तुति : सरिता अरगरे, भोपाल

श्री कौतुक मॉरीशस में सम्मानित

गाँधीजी की 150वीं जयंती पर्व पर गत दिनों मॉरीशस की राजधानी पोर्टलुई के ऋषि दयानंद संस्था सभागृह में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन मॉरीशस द्वारा हिन्दी संगठन संस्कृति मंत्रालय मॉरीशस, ऋषि दयानंद संस्थान

आर्य सभा व आधारशीला, नैनीताल द्वारा आयोजित समारोह में श्री कौतुक को हिन्दी में रचनात्मक योगदान के लिए 'हिन्दी गौरव सम्मान' से मुख्य अतिथि सुमील भोला, उद्योग मंत्री मारीशस सरकार, सुरेश रामबरन हिन्दी संगठन संस्कृति मंत्रालय मॉरीशस सरकार, इं.डी.सी.सिंह, निदेशक विश्व हिन्दी सचिवालय हिन्दी भवन, उदयनारायण गंगू, डीन एकेडमिक, ऋषि दयानंद संस्थान (डीएवी कॉलेज) मॉरीशस, डॉ.रामदेव धुरंधर, साहित्यकार, मॉरीशस एवं डॉ.दिवाकर भट्ट सम्मेलन समन्वयक, भारत के करकमलों से मॉरीशस,

अफ्रीका, भारत एवं अन्य देशों से आये साहित्यकारों की उपस्थिति में सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री कौतुक की कृति 'देखते ही देखते' (गज़ल संग्रह) का अतिथियों द्वारा लोकार्पण किया गया। मॉरीशस के वरिष्ठ लेखक रामदेव धुरंधर के मुख्य आतिथ्य में आयोजित कवि सम्मेलन में श्री कौतुक ने भारतीय प्रतिनिधि के रूप में चुनिंदा कविताओं का पाठ किया।

प्रस्तुति - हरेराम वाजपेयी

बूलाकार की दो पुस्तकों का लोकार्पण

इन्दौर। गत दिनों श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति तथा हिन्दी परिवार इन्दौर की सदस्या बूलाकार की दो पुस्तकों 'समीक्षा के आईने से तथा 'मेरी रचनाएं- विभिन्न दृष्टिकोण से' का लोकार्पण संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार सूर्यकांत नागर ने किया तथा मुख्य अतिथि थी देवी अहिल्या विमानपत्तन की निदेशक श्रीमती आर्यमा सान्याल। दोनों पुस्तकों पर क्रमशः विचार वक्तव्य दिया डॉ.नीरज दीक्षित (खण्डवा) तथा गरिमा दुबे इन्दौर ने। अध्यक्षीय उद्बोधन में सूर्यकांत नागर ने एक समीक्षक की भूमिका तथा उसमें निहित विभिन्न आवश्यक तत्वों पर विस्तार से प्रकाश डाला। आभार प्रदीप नवीन ने प्रकट किया तथा समारोह का संचालन संतोष मोहन्ती द्वारा किया गया। इस अवसर पर शहर के साहित्यकार तथा सुधिजन उपस्थित थे।

प्रस्तुति : संतोष मोहन्ती

स्वयं प्रकाश को श्रद्धांजलि

उदयपुर। राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर में आयोजित श्रद्धांजलि

सभा में प्रो.नवल किशोर ने कहा कि स्वयंप्रकाश केवल साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का चित्रण ही नहीं करते बल्कि उन परिस्थितियों का चित्रण भी करते हैं जो साम्प्रदायिकता से उपजती हैं। उनकी कहानियाँ वाचिकता का श्रेष्ठ उदाहरण है और इस लिहाज से वे हिन्दी के अपनी पीढ़ी के सबसे दुर्लभ कहानीकार थे। जीवन के अनुभव के साथ सूक्ष्म पर्यवेक्षण की क्षमता उन्हें बड़ा कहानीकार बनाती है। कवि सदाशिव श्रोत्रिय ने कहा कि कविता से लेखन की शुरूआत करने वाले स्वयंप्रकाश जी अच्छे गायक भी थे। शैली विज्ञान के विद्वान आचार्य के.के.शर्मा ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए जमीन पर खड़ा रहकर लिखने वाला व्यक्ति बताया। राजस्थान विद्यापीठ हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो.मलय पानेरी कहा कि कहानी आन्दोलनों की अराजकता के बाद कहानी से पाठकों को जोड़ने वाले कथाकारों में स्वयं प्रकाश अग्रणी है। राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व सचिव लक्ष्मीनारायण नन्दवाना ने भी अपने विचार व्यक्त किये। इस श्रद्धांजलि सभा में राजेश शर्मा, ज्योति पुंज पण्ड्या, बालमुकुन्द नन्दवाना, मुक्त व्यास सहित नगर के साहित्यकार और लेखक सम्मिलित हुए। सभा का संयोजन कर रहे ललित श्रीमाली ने स्वयं प्रकाश जी के कृतित्व पर प्रकाश डाला। अंत में सभी ने दो मिनट का मौन रखकर दिवंगत के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

प्रस्तुति : ललित श्रीमाली

चिट्ठी-पत्री

महोदय,

'समावर्तन' का 141वाँ अंक मिला। मैं 'गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर' अंक से अभिभूत था और सुकून की बयार लेकर प्रदीपजी पर केंद्रित अंक पाकर अपार खुशी हुई। साथ ही श्री जगदीश कौशलजी की सामग्री ने समां बांध दिया।

कविवर प्रदीप जी, न केवल मालवा के रत्न थे वरन उनकी आभा समग्र देश (अखण्ड भारत) में भी थी। प्रदीप जी हमारे स्वातंत्र संघर्ष, उसके नैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों के व्याख्याकार भी थे। वे भारतीय साहित्य, उसकी गीत-परंपरा के शानदार अविस्मरणीय शलाका पुरुष थे।

साहित्यकार, उसकी रचनाएं, उसका चिंतन, उसकी भूमिका हमेशा रहती है। कभी लगा ही नहीं कि प्रदीपजी सशरीर अब हमारे बीच नहीं है, वे सदैव अनुभव होते हैं-महसूस होते हैं यही उनकी अमरता है। श्री प्रमोद त्रिवेदी जी ने प्रदीपजी के ठेठ व्यक्तित्व पर सटीक रोशनी डाली है। परिजनों ने बारीकी से उनके कर्म को उनके रचनाकर्म को याद किया है। श्री आच्छा जी ने साक्षात्कार में प्रदीपजी से उनके मन-मस्तिष्क के दर्शन कराये हैं।

यह अंक वाकई बेहद आत्मीय, पठनीय और ऐतिहासिक है।

बधाई स्वीकारें।

जीवनसिंह ठाकुर, देवास

मो.94240-29724

पुस्तकें मिलीं

लिखो हमारे विरूद्ध (आलेख)
लेखक - कांति दा
प्रकाशक - जनहित शिक्षण समिति, उज्जैन
मूल्य रू.150/-

जाँच अभी जारी है (उपन्यास)
दिलीप जैन
बोधि प्रकाशन जयपुर-302006
मूल्य रू.120/-

कवि कपूत (कविता संकलन)
बलराम गुमाश्ता
आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, भोपाल
मूल्य रू.200/-

गांधीपथ (नाटक तथा आलेख)
युगेश शर्मा
पहले पहल प्रकाशन- भोपाल
मूल्य रू.300/-

भूल सुधार - समावर्तन के दिसम्बर 2019 अंक के पृष्ठ 32 पर एक चित्र में पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जेलसिंह का नाम ज्ञानी गोपालसिंह हो गया है तथा पृष्ठ 33 पर स्व.सुमित्रानंदन पंत के नाम के स्थान पर श्री ज्ञानी गोपालसिंह हो गया है। इस भूल के लिए क्षमाप्रार्थी हैं। - संपादक

विश्वरंग की अंतर्राष्ट्रीय समिति का गठन

भोपाल। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला महोत्सव 'विश्वरंग' के भोपाल में सफल आयोजन के बाद इसके विस्तार एवं देश-विदेश में विभिन्न कार्यक्रमों के बीच संयोजन के लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे की अध्यक्षता में एक अंतर्राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया है। इसमें लगभग 20 देशों के प्रतिनिधि शामिल होंगे जो सभी महादेशों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इसमें मॉस्को (रूस) से इंदिरा गाजिएवा और ल्यूदमिला खखलोवा, जर्मनी से प्रो. डॉ. तत्याना ओरान्स्काया, (हैम्बर्ग), उज्बेकिस्तान से डॉ. सिराजुद्दीन नुर्मातोव (ताशकंद), कजाकिस्तान से डॉ. दरीगा कोकोएवा (अल्माटी), यूक्रेन से यूरी बोत्वींकिन (कीव), अर्मेनिया से ऋपसिमे नेर्सिस्यान (येरेवान) इजराइल से डॉ. गेनेदी श्लोम्पेर (तेल अबीब), श्रीलंका से प्रो. उपुल रंजीत (कलवीय), फीजी से प्रो. सुब्रमनी (सूवा), इंग्लैण्ड से तेजेन्द्र शर्मा (लंदन), दिव्या माथुर (लंदन), ऊषा राजे सक्सेना (लंदन), ललित मोहन जोशी (लंदन), डॉ. वंदना मुकेश (नाटिंघम), जय वर्मा (बर्मिंघम), अमेरिका से डॉ. सुषम बेदी (न्यूयार्क), कविता वाचक्नवी (डलास), रेखा मैत्र (कैलिफोर्निया), उमेश ताम्बी (फिलाडेल्फिया), अशोक सिंह (न्यूयार्क), अनूप भार्गव (न्यूजर्सी), मनीष गुप्ता (सिएटल), कनाडा से महेन्द्र धर्मपाल (टोरंटो), ऑस्ट्रेलिया से भावना कुँवर (सिडनी), रेखा राजवंशी (सिडनी), संजय अग्निहोत्री (सिडनी), सिंगापुर से संध्या सिंह (सिंगापुर), डेनमार्क से डॉ. अर्चना पैन्युली (कोपेनहैगेन), नीदरलैंड से डॉ. पुष्पिता अवस्थी (एम्सटर्डम), डॉ. रामा तक्षक, (एम्सटर्डम), कुवैत से जितेन्द्र चौधरी (कुवैत सिटी), को शामिल किया गया है।

उपरोक्त अंतर्राष्ट्रीय समिति से सहयोग के लिए भारत से भी एक 27 सदस्यीय समूह का गठन किया गया है, जो साहित्य, संस्कृति, शिक्षा एवं प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करता है। इस समूह में संतोष चौबे (भोपाल), मुकेश वर्मा (भोपाल), बलराम गुमास्ता (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), डॉ. अनुराग सीठा (भोपाल), आत्माराम शर्मा (भोपाल) लीलाधर मंडलोई (नई दिल्ली), डॉ. कमल किशोर गोयनका (नई दिल्ली), विनय उपाध्याय (भोपाल), डॉ. सच्चिदानंद जोशी (नई दिल्ली), डॉ. ऊषा गांगुली (कोलकाता), देवेन्द्रराज अंकुर (नई दिल्ली), अशोक भौमिक (नई दिल्ली), डॉ. रमेश चंद्र शाह (भोपाल), प्रभु जोशी (इंदौर), सिद्धार्थ चतुर्वेदी, अदिति चतुर्वेदी, पल्लवी राव चतुर्वेदी, नितिन वत्स, डॉ. विजय सिंह, नुसरत मेंहदी (सभी भोपाल), अरविंद चतुर्वेदी, अभिषेक पंडित (नई दिल्ली), विनीता चौबे, पुष्पा असिवाल, शशांक एवं मेजर जनरल (रिटा.) श्याम श्रीवास्तव (भोपाल) को शामिल किया गया गया है। आईसेक्ट समूह के सभी विश्वविद्यालयों के कुलपति एवं रजिस्ट्रार इसमें विशेष आमंत्रित सदस्य होंगे।

विश्वरंग की समाप्ति के ठीक एक महीने बाद हुई आयोजन समिति की बैठक में उपरोक्त समिति का गठन किया गया। समिति ने अपने लिए कुछ कार्य भी तय किये हैं जैसे - अपने देश/शहर में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के प्रचार प्रसार के लिए कार्य करना, भारतीयता/भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना एवं संबंधित गतिविधियाँ आयोजित करना, हिंदी और भारतीय भाषाओं के पठन-पाठन में कार्यरत स्थानीय विश्वविद्यालयों से गहरा संबंध स्थापित करना तथा उनकी यथा संभव मदद करना, भाषा के प्रचार प्रसार में टेक्नॉलॉजी के उपयोग को बढ़ावा देना और टेक्नोलॉजी समूहों के साथ जीवंत संपर्क स्थापित करना, अपने-अपने देशों/महादेशों में हिंदी तथा भारतीय भाषाओं पर केंद्रित समन्वित कार्यक्रम करना तथा उसमें भारतीय साहित्यकारों को शामिल करना, स्थानीय संस्कृति और भाषा के साथ परस्पर सम्मान तथा समन्वय का (अनुवाद को शामिल करते हुए) रिश्ता कायम करना और भारत के साथ उनका रचनात्मक संबंध बनाने का प्रयास करना।

विश्वरंग की गतिविधियों को समन्वित गति प्रदान करने के लिए कुछ ठोस कार्यक्रम भी निर्धारित किये गए हैं, जिनमें - कथा देश की तरह प्रवासी भारतीय साहित्य के कथा, कविता तथा आलोचना कोश प्रकाशित करना, देशों पर केंद्रित कोश प्रकाशित करना जिसमें उस देश के आधुनिक साहित्य के अनुवाद प्रकाशित हों, भारतीय साहित्य के विदेशी भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित करना, चयनित देशों में स्वतः स्फूर्त 'विश्वरंग' जैसे कार्यक्रम आयोजित करना जो संयुक्त बैनर पर हो सकते हैं, 'विश्वरंग' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन करना जो अधिकतम लोगों को जोड़ने का प्रयास करेगी, समानधर्मी व्यक्तियों, संस्थाओं, पत्र-पत्रिकाओं का डाटाबेस बनाना तथा 'विश्व रंग' का आयोजन एक निश्चित अवधि में करते हुए उसकी गतिविधियों का विस्तार करना।

इस 'विश्वरंग' अंतर्राष्ट्रीय समिति का सचिवालय रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल स्थित टैगोर अंतर्राष्ट्रीय साहित्य एवं कला केन्द्र में स्थित होगा और इसमें 'गर्भनाल' पत्रिका की सहयोगी भूमिका रहेगी।

प्रस्तुति **सिद्धार्थ चतुर्वेदी**

विद्वान लेखकों से अनुरोध

जैसा विदित ही है कि यह वर्ष छायावाद का शताब्दी वर्ष है। अतः 'समावर्तन' अपने प्रकाशन की निरन्तरता के बारह वर्ष पूर्ण होने तथा तेरहवें वर्ष के प्रारंभ में अप्रैल-2020 का अंक छायावाद के साहित्य पर केन्द्रित कर रहा है। विद्वान लेखकों से अनुरोध है कि छायावाद की प्रवृत्तियों/रचनात्मकता तथा छायावाद के कवियों पर अपने आलेख (अधिकतम 2500 शब्द) 25 फरवरी-2020 तक (कृतिदेव-010 फोन्ट में) डाक से अथवा ई-मेल से भेजने का कष्ट करें। - संपादक

समावर्तन
माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन-456010
E-mail : samavartan@yahoo.com
संपर्क - 94259-15010

अनंतिम

चर्चित उपन्यासकार संतोष चौबे के संगीत और शोर के अद्वैत पर विचार-केन्द्रित उपन्यास 'जलतरंग' पर हम लगातार हिन्दी साहित्य के अनन्य और मूर्धन्य लेखकों और कवियों के विचारों को इस स्तंभ में पढ़ते चले आ रहे हैं। पिछले अंक में अपने समय के महत्वपूर्ण कवि एवं प्रख्यात आलोचक श्री प्रभात त्रिपाठी की उपन्यास पर रसचर्चा अंतर्गत प्रामाणिक भाव-तत्व और इतिहास-बोध को समझा। अब उसी विचार-श्रंखला की अगली और अंतिम कड़ी प्रस्तुत है।

''......मुझे एक बात और भी लगती है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए और यहाँ मुझे इस बात को कहते हुए संकोच नहीं है कि हिन्दू धार्मिकता का या हिन्दू धर्म-तत्त्व का जो सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है वह संगीत है। एक वेद ही संगीत का वेद माना जाता है। रान और भारत के सांगीतिक सम्बन्ध और सम्पर्क की चर्चा उन्होंने किताब में ही की है। इसी किताब में देखने को मिलती है और इसके अलावा कलाओं के अन्तर्सम्बन्ध पर भी लगातार बात की ग है इस उपन्यास में।

अब इसके बाद एक और भी चीज देखने की है कि शास्त्र और लोक का सम्बन्ध बताते हुए उन्होंने 'गम्मत' का जिक्र किया है इस उपन्यास में। ये गम्मत हमारे यहाँ छत्तीसगढ़में तो बड़े मशहूर तरीके से होता है- भले ही वह छत्तीसगढ़ी रूप हो। हमारे यहाँ आज भी गम्मत किये जाते हैं।

तो यह जो कन्टीन्युटी है कला की या संगीत की, वह इस उपन्यास में है। पर इस उपन्यास का जो सृजन है कि इसमें कथा की शैली में इसको जो कहने की कोशिश की है, उसका कारण क्या हो सकता है' वो किन आन्तरिक दबावों के कारण, किस रचनात्मक अर्ज के कारण, किस बेचैनी के कारण' क्योंकि शुरूआत तो बड़ी मासूमियत से होती है, जिसको बोलते हैं कि एक प्रकार की निर्मल पारदर्शिता से होती है, लेकिन उसके बाद जब वो अंत को पहुँचते हैं तो बिल्कुल बदल जाती है। ऐसा लगता है कि जो साभ्येतिक दंश है, आज की व्यवस्था के जो कष्ट हैं, उन कष्टों से निजी तौर पर उभरने की कोशिश और- चूँकि वह एक अकादमिक व्यक्ति हैं तो हो सकता है कि यह भी एक प्रयोजन रहा हो- उसको एक अकादमिक स्थिति में लाने की कोशिश, उसको एक अकादमिक गरिमा देने की कोशिश में यह उपन्यास लिखा गया हो।

यह भी हो सकता है, पर मुझे इस बात की सबसे ज्यादा खुशी होती है कि ऐसा करते हुए उन्होंने अपने को बोझिल कहीं नहीं होने दिया है। उनके पूरे उपन्यास में तथ्यात्मक ऐतिहासिकता के बावजूद एक प्रकार की सहजता है, जिसको कभी-कभी अंग्रेजी के 'ना विटी' शब्द से ज्यादा अच्छे ढंग से बताया जा सकता है। एक ऐसी सहजता है कि अपनी बात कहो, कुछ बनाओ मत, उसमें कुछ ज्यादा जोड़ो मत, जो सरल ढंग से आ रही है वो कहो। इसका कारण शायद यह है कि इस उपन्यास की दो मूलभूत प्रेरणाएँ रही होंगी।

मुझे लगता है कि एक तो उनका अपना निजी स्तर पर सक्रिय अनुराग, राग के पीछे जाना- अनुराग। एक उनका अनुराग है, उनका प्रेम है, उनका लगाव और उनका कन्सर्न है म्यूजिक के प्रति और कलाओं के प्रति और दूसरा उनकी साभ्यतिक आलोचना। अनुराग और आलोचना, इन दो छोरों पर एक साथ आवाजाही करते हुए उन्होंने यह कथा लिखी है। लेकिन एक बहुत ही गहरा प्रयोजन है जिसका जिक्र मैंने किया कि ऐसा न हो कि उनकी जटिलता में पाठक उलझ कर रह जाए। इसलिए उन्होंने बहुत कोशिश की है कि अपनी तथ्यात्मक सूचनात्मकता को और अपनी कथा को वो घुमावदार और पेंचदार बनाने के बजाय कुछ ऐसे प्रसंगों से जोड़े रखें, जिनके साथ एक सामान्य पढ़ा लिखा आदमी साझा कर सके।

तो यह एक साझेदारी को आमंत्रित करती हु कृति है, एक हिस्सेदारी को आमंत्रित करती हु कृति है और इस हिसाब से कहना चाहिए कि यह उपन्यास उन सभी लोगों से बातचीत करने की कोशिश है, जो इस कठिन समय में संस्कृति को, हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं को और संगीत को विशेषकर जो बचाये रखना चाहते हैं, वो देखें कि अपने अन्दर और बाहर छा जाते इस शोर से आत्मसंघर्ष करने के लिए वे कौन-सी दिशाएँ चुन रहे हैं' जाहिर है कि दिशाएँ शोर की उपेक्षा या उसको नकारने में नहीं है, शोर से दुस्साहसी की तरह भिड़ने में भी नहीं है, सबसे पहले तो इस शोर को समझने में है। तो जो शोर को समझते हैं और उस शोर की समझ को जानते हुए एक बहुत बड़ी ताकत की तरह संगीत के संस्कार को और इतिहास को सामने रखते हैं, तो वो अपने आप इस लड़ा के लिए लैस हो जाते हैं।

जाहिर है कि ऐसा एक संघर्ष नायक का ही नहीं है कि वह उधर जाकर गुरूकुल बना लेता है या भाग जाता है या नहीं भागता है- वो मन का संघर्ष है। अन्दर चलने वाला संघर्ष है और यह दो मन के हिस्से हैं। एक हिस्सा जिसमें संस्कार के रूप में संगीत को जानते हैं। सूचनाएँ न जानें, व्याकरण न समझें, लेकिन प्राकृतिक रूप में संगीत से हम जुड़े हुए हैं उसके बिना नहीं। और एक हिस्सा जहाँ हम शोर के सामने आ गये हैं। उसे अगर हम एक मन के संघर्ष के रूप में देखें- एक संवेदनशील, एक सेन्सेटिव व्यक्ति के मन के संघर्ष के रूप में- तब हम इस उपन्यास को एक आत्मशोध की प्रक्रिया का उपन्यास कह सकते हैं।

और, यह आत्मशोध आत्मकथात्मक उपन्यास नहीं है। यह आत्मशोध हर आत्म-सजग- सेल्फ कॉनशियस- व्यक्ति के लिए आत्मशोध के लिए प्रेरित करने वाला उपन्यास साबित हो सकता है। बशर्ते कि हमारी अकादमियाँ, हमारे विश्वविद्यालय इस बात को समझें कि इस तरह की चीजों का भी अध्ययन, अध्यापन, व्याख्या, निर्वचन बहुत जरूरी है। केवल साइंटिज्म और टेक्नॉलॉजिज्म से मनुष्य के मानवीय पहलुओं का विकास नहीं हो सकता।....''

इस विमर्श के अंत में सुख्यात कवि और कथाकार श्री सतीश जायसवाल ने बहुत अनुपम और मनोहारी बात कही कि ''....इस उपन्यास की शुरूआत में मैं बड़ा परेशान रहा कि एक बड़ा रचनाकार शुरूआत में कितना सरल लिख रहा है कि उपन्यास हो भी रहा है या नहीं हो रहा है और उसके बाद इतनी जटिलता में चला जाता है - संगीत शास्त्र में, पूरा का पूरा - ऐसा लगने लगता है कि ये शोध-प्रबंध तो नहीं है और उसके आगे हम चलते हैं तो फिर एक और चीज होती है, वह केवल संगीत शास्त्र में नहीं जा रहा है, हमको जोड़ रहा है, साहित्य और संगीत के रिश्ते जोड़ रहा है और वो रिश्ते केवल साहित्य और संगीत के नहीं हैं - चित्रकला से भी जोड़ रहा है, वह यात्राओं से भी जोड़ रहा है। कलाओं के जितने रूप हम जानते हैं, लगभग उन सारे के सारे रूपों से, यहाँ तक कि लोककलाओं से भी हमें जोड़ रहा है।.......''

एक महान उपन्यास की गति और नियति ऐसी ही होती है।

संतोष जी को बहुत बहुत बधाई एवं आपको और उन्हें नववर्ष की शुभ कामनाएँ भी। स

मुकेश वर्मा

मोबाइलः 94250-14166

www.rntu.ac.in Follow on us

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL
AN AISECT GROUP UNIVERSITY

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, MP PARAMEDICAL COUNCIL, DEB (UGC) I Recognized by : UGC I Member of : AIU, ACU

PROUDLY ANNOUNCES THE APPROVAL OF ITS

मुक्त एवं दूरवर्ती शिक्षा संस्थान
INSTITUTE OF OPEN & DISTANCE EDUCATION
BY DISTANCE EDUCATION BUREAU (DEB), UGC, Govt of India

ADMISSIONS OPEN-SESSION JAN. 2020 I प्रवेश प्रारंभ सत्र–जनवरी 2020

PG/UG DEGREE PROGRAMS

FACULTY OF ARTS
B.A.
M.A. (Economics)
M.A. (English)
M.A. (Hindi)
M.A. (History)
M.A. (Political Science)
M.S.W.

FACULTY OF COMMERCE & BUSINESS STUDIES
B.Com.
M.Com.

FACULTY OF MANAGEMENT
B.B.A.

DIPLOMA & CERTIFICATE PROGRAMMES

DCA Diploma in Computer Application
PGDCA Post Graduate Diploma in Computer Applications

INDUSTRY LINKED DIPLOMA PROGRAMMES
Diploma in IT Application Development
Diploma in Automobile Servicing
Diploma in Renewable Energy
Diploma in Electronics Manufacturing Services
Diploma in Computer Hardware and Networking
Diploma in Retail Management
Diploma in Banking, Financial Services and Insurance
Diploma in Electrical & Electronics Assembly
and Certificate Programmes of Various Academies through Pradhan Mantri Kaushal Kendra

Last Date for Application 31st Dec. 2019

Features of RNTU-IODE : « All Procedures through ONLINE PORTAL « Quality STUDY MATERIALS & Online Lectures « Timely Conduct of Exams followed by Quick Results « Remedial Classes

Admission Helpline : 9893350135, 9131797517, 8878852348

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-2700400, 2700413
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email: info@rntu.ac.in

मेरा नमन...

संकल्पो से भरा नया साल : 2020

सुबह, दोपहर, शाम आज वैसे ही गुजरे जैसे हमेशा गुज़रते हैं। मगर जो रात आयी तो अपने साथ एक थरथराहट ले आयी। घड़ी की टिकटिक के साथ दिल की धड़कनें ताल मिलाने लगीं। मगर मन की उत्तेजना कह रही थी कि घड़ी रूक-रूककर चल रही है। मन की बनावटी आशंकाओं के बावजूद रात गहरा रही थी।

आखिर रात थी 31 दिसम्बर 2019 की।

मौसम सरकार के तेवर बदले महसूस हो रहे थे। हवा में ठण्डक घुल रही थी। इधर सूरत (गुजरात) की ठण्डक चुभती नहीं है। मगर ठण्डक की ठिठुरन से कँपकँपी झेलनी हो तो मेरे प्यारे शहर उज्जैन में आइए। मगर मेरी लाचारी कि मेरा कार्यक्षेत्र सूरत है।

और आखिर रात के 12 बजकर एक मिनट पर Happy New Year का शोर चरम पर पहुँच गया। हम मित्रों के और परिवारजनों के गले लग रहे थे, केक कट रहा था और टुकड़ों में बंटकर हर एक मुँह में पहुँच रहा था।

माँ-बाबा और अभिलाष दादा और कृष्ण दीदी मुम्बई में हैं। उन्हें फोन पर एंजाय कर रहे हैं। समावर्तन के सम्पादकों के प्रभा मंडल को प्रणाम कर रहा हूँ। हज़ारों पाठकों और सम्मान्य लेखकों को आभार प्रकट कर रहा हूँ।

सबको-सबको नववर्ष मंगलमय हो।

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'